भूमिका

ग्रामों के घर-घर और कोने-कोने में साक्षरता के साथ जीवन-जाग्रति की ज्योतिः पहुँचाने की भावना लेकर शिक्षा के दृष्टिकोण से हमने साक्षरता का पहला प्रयोग सन् १९२५ ई० में नागपुर सेन्ट्रल जेल में किया था और उस अनुभव के बल पर 'स्कीम आफ़ मास एज्यूकेशन' *Scheme of Mass Education* नाम की किताब उक्त सन् में ही छपाई थी। युक्तप्रान्त में सहकारी-विभाग से सन् १९२८ ई० में प्रौढ़-शिक्षा के निरीक्षण के लिये प्रौढ़-शिक्षा के इन्स्पेक्टर के पद पर हमारी नियुक्ति हुई। युक्तप्रान्त में किये हुये अनुभव के अनुसार हमने सन् १९३८ ई० में 'स्कीम आफ़ अडल्ट एज्यूकेशन' *Scheme of Adult Education* नामक किताब प्रकाशित की थी। यह विशेषतया युक्तप्रान्त की प्रौढ़-पाठशालाओं के संचालकों के लाभार्थ लिखी थी। उसका हिन्दी भाषान्तर एक सज्जन से करवाकर 'प्रौढ़-शिक्षा की योजना' नाम से छपवाई थी। पर इस भाषान्तर में बहुत-सी त्रुटियाँ रह गईं। इस भाषान्तर में संशोधन करके दूसरी पुस्तक छपवाने की आवश्यकता दो-तीन वर्ष तक प्रतीत नहीं हुई, किन्तु अब युक्तप्रान्त के ४८ ज़िलों में तथा अन्य प्रान्तों और देशी राज्यों में हमारी योजना प्रचलित हो रही है। अतः अध्यापकों के लाभार्थ शिक्षा-शैली का मन्तव्य, पाठ्यक्रम तथा पाठशाला का प्रबन्ध इत्यादि के सम्बन्ध में सविस्तार सूचनाएँ देने की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हो रही है। इसी कारण से हम यह वर्तमान संस्करण छपा रहे हैं।

खेद की बात है कि इस पुस्तक के संशोधन-काल में अस्वस्थ्य रहने के कारण तथा कार्य-बाहुल्य से इसकी रचना में हम यथेष्ट ध्यान दे नहीं सके, तद्यपि इस पुस्तक में हमारी योजना के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण यथेष्ट हो चुका है। हमें पूर्णाशा है कि प्रौढ़-पाठशालाओं के अध्यापक इस पुस्तक से समुचित लाभ उठायेंगे और अपने कार्य में सफल होंगे।

गोरखपुर
ता० १२-८-४० ई०

अनन्त बापूजी माण्डे

विषय-सूची

(प्रथम खण्ड)

(तृतीय खण्ड)

प्रथम खण्ड

विषय-प्रवेश

ग्रामीण सामाजिक तथा आर्थिक जीवन
का
विवेचन

शान्तिपुर

प्रौढ़-शिक्षा की योजना

पहला अध्याय

शिक्षा, शिक्षालय और शिक्षा की व्याख्या

संसार भर की सभ्य जातियों में असभ्य कही जानेवाली जातियों की अपेक्षा यह एक विशेषता पाई जाती है कि उनमें मुख्यकर शिक्षा, और शिक्षा-प्रसारार्थ शिक्षा-संस्थाओं की सुव्यवस्था होती है।

कल्पना कीजिये कि चन्द्रलोक से कोई समाज-शास्त्रज्ञ पुरुष भूतल पर अवतरित हुआ और वह इस लोक के मानव जाति की सभ्य तथा असभ्य जातियों की स्थिति एवं उनकी समाज-रचना का निरीक्षण करने लगा। भिन्न-भिन्न स्थितियों पर दृक्पात कर पुङ्खानुपुङ्ख रूप से देखने के अनन्तर उसने दोनों जातियों की स्थिति में बृहदन्तर देखा। वह उनकी समाज-रचना, प्रगति और रहन-सहन में अधिकांश विचित्र अन्तर पा विस्मित होने लगा। उसे इन दोनों जातियों में एक प्रधान बात मिली कि एक समाज में शिक्षा-प्रदान का ध्येय और उसकी प्रचार-व्यवस्था विशेष रूप से की जाती है—वह है सभ्य जाति। और, अत्यन्त

पिछड़ी हुई या असभ्य कही जानेवाली जाति में पाठशालाओं और शिक्षा-दान का नितान्त अभाव है, तो भी इस असभ्य समाज में जितने कार्य किये जाते हैं, उनके सम्बन्ध में उपयुक्त शिक्षा उस जाति के बालक अपने माता-पिता आदि बड़ों के साथ-साथ काम करते-करते और देखते-देखते अनुकरण से प्राप्त कर लेते हैं। जैसे; वृक्ष के ऊपर चढ़ना, शिकार खेलना आदि अनुकरण से ही सीख लेते हैं और समाज की जिस बहुमूल्य सम्पत्ति—संस्कृति—की, जिसको सभ्यता कहते हैं, उसकी परम्परागत सजीवता, रक्षा और प्रचार सामाजिक गीतों एवं नृत्य-वाद्य से कराते हैं। इस समाज के बालक चार-चार पाँच-पाँच घंटों तक संकुचित पाठशाला-भवन के भीतर बलात् दबाकर बिठाये नहीं जाते, अतः वे स्वतन्त्रता से खुली वायु में हँसते-खेलते हैं। उनकी शारीरिक स्थिति बहुत अच्छी होती है। इस समाज-शास्त्रज्ञ की परिभाषा में सन्ध्या-समय समाज के व्यक्ति एकत्र होकर जो जातीय नृत्य-गान-वाद्य करते हैं, वही उस समाज की सभ्यता-वृद्धि का विद्यालय समझा जाता है। इसके विपरीत, सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँचे हुए, कला-कौशल में सर्वाधिक श्रेष्ठ मनुष्यों में, सर्व प्रकार की शिक्षा के लिये बड़े-बड़े स्कूल कालेज आदि शिक्षा संस्थाएँ बड़े-बड़े नगरों में, जहाँ का वातावरण वैसे ही दूषित रहता है, पाई जाती हैं। सामान्यतः ६ से १२ वर्ष तक के बालक-बालिकाओं को एक साथ अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। विविध विद्याओं की शिक्षा के लिये पृथक्-पृथक् विद्यालय देख पड़ते हैं। कहीं चिकित्सा और कहीं शिल्प-कला आदि की विभिन्न-विभिन्न संस्थाएँ अपना-अपना कार्य बड़ी ही तत्परता से करती देख पड़ती हैं। मतलब यह कि सभ्य जातियों में शिक्षा-प्रचार में तथा शिक्षा-संस्थाओं में अपरिमित व्यय और अथक परिश्रम किया जाता है। सभ्य जातियों के बालक बालकाल से ही विद्यालयों में बन्दीगृह की भाँति बैठे रहने से असभ्य जातियों के बालकों की तुलना

में बौने, उदास और दुर्बल दिखाई देते हैं। उनका मुखचर्या प्रफुल्ल दिखाई नहीं देती। उनको विविध विद्यालयों में यथेष्ट ज्ञान देने पर भी उनमें वह स्फूर्ति, शारीरिक स्वस्थता और मानसिक सतेजता नहीं पाई जाती है। इन दोनों उच्च-निम्न श्रेणियों की मध्यवर्ती जातियों में भी उनकी स्थिति के अनुसार कुछ-कुछ शिक्षा-संस्थाएँ पाई जाती हैं। जो हो, यह समाज-शास्त्रज्ञ एक स्थान पर शिक्षा-संस्था का अभाव पाता है और दूसरे स्थान पर सभ्य जातियों में शिक्षा-प्रदान में अविश्रान्त सतत परिश्रम की पराकाष्ठा देखता है। शिक्षा-प्रदान में सभ्य समाज अपनी सामुहिक आय का कभी अर्द्धांश और कभी और भी अधिक व्यय करता है, तब कहीं सभ्य समाज के २५-३० प्रति शतक व्यक्ति पाठशालाओं में पढ़ पाते हैं। यह दृश्य इन जातियों के महान् अन्तर का प्रकट स्वरूप है। इसे देखकर वह इसका कारण खोजने लगता वा अनुसन्धान करना चाहता है।

समाज-शास्त्रज्ञ के सम्मुख यह प्रश्न उत्थापित होता है कि सभ्य-जातियाँ अपने लड़के और लड़कियों को कभी-कभी शिक्षा-संस्थाओं में जो २५-२५ वर्ष तक शिक्षा देती और अविश्रान्त परिश्रम करती हैं सो क्यों? और, उनके ऊपर इतना अधिक धन व्यय क्यों करती हैं? इसके अतिरिक्त शिक्षा-संस्थाओं में इतना अधिक व्यय और अतुल परिश्रम होने के अनन्तर भी हम देखते हैं कि बालकों की शारीरिक स्थिति कुछ अच्छी नहीं रहती। तब स्वभावतः यह प्रश्न बार-बार उठता है कि क्यों सभ्य जातियाँ इतना अपरिमित व्यय और अथक परिश्रम शिक्षा के लिये करती हैं?

वह अपने निरीक्षण में देखता है कि सभ्य जातियों में कला-कौशल और शिल्प आदि बहुत अधिक वृद्धिंगत हो रहे हैं, पर इसके विपरीत असभ्य जातियों में कला-कौशल अत्यन्त ही सामान्य स्थिति में हैं, और कहें तो यों भी कह सकते हैं कि नहीं के तुल्य हैं। उनके रहन-सहन के ढंग बड़े सीधे-सादे हैं। साधारण-सा रहने भर को

झोंपड़ा बना लेना, खेती-बारी और शिकार आदि से अपनी उपजीविका करना इत्यादि अत्यन्त सरल रहन-सहन है। इसकी अपेक्षा सभ्य जातियों में रहन-सहन के ढंग, गृह-निर्माण की सुचारुता, सुन्दर-सुन्दर सड़कों के विस्तृत मार्ग, भाँति-भाँति की अनुपम सवारियाँ आदि अत्यन्त उन्नतावस्था में देख पड़ते हैं। जहाँ ईंट, चूना, पत्थर और सीमेंट के योग से विविध शिल्प-कला-पूरित अनोखे प्रकार के विशाला-कार भव्य भवन बनाये जाते हैं, सभ्यताभिमानी जन अच्छे-अच्छे पौष्टिक भोजन करते और सुमनोहर बहुमूल्य वस्त्राभरण धारण करते हैं वहाँ पिछड़ी जाति के जन मोटे कपड़े और कभी-कभी वृक्षों की छालों को शीतातप-निवारण के लिये पहनते हैं। जहाँ सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँचे हुए लोग अनेक प्रकार के तीव्रगामी यानों—घोड़ागाड़ियों, मोटरों और वायुयानों में बैठकर क्षणभर ही में महीनों की यात्रा समापन करते हैं, वहाँ असभ्य जाति के लोग अपने घर के बैल, गधे और घोड़ों आदि पर धीरे-धीरे एक स्थान से दूसरे स्थान को यातायात करते हैं। जहाँ असभ्य-जन अपने अवकाश का समय सामान्य बाजे—ढोलक, मजीरा और थाली बजाकर वा स्वेच्छाचारिता से नृत्य-गीत कर प्रसन्न होते हैं, वहाँ सभ्य जातियों के जन विविध भाँति के वाद्य-यन्त्रों और विविध प्रकार के नाच-गान से अपना मनोरञ्जन करते हैं।

सभ्य समुदाय को हम, भिन्न-भिन्न प्रकार के स्कूल-कालेजों के द्वारा अहर्निश अपने बालकों को विविध प्रकार की विद्या उपार्जन कराने और सुशिक्षित बनाने के समयोचित साधनों में अग्रसर देखते हैं।

हमने ऊपर जो लिखा है कि सभ्य समाज में अविश्रान्त परिश्रम भावी-पीढ़ी को शिक्षा देने के लिये किया जाता और राष्ट्रीय-कोश में से बड़ी रक़म व्यय की जाती है, इसका कारण यही है कि समाज के कला-कौशल और ज्ञान की रक्षा हो अर्थात् भावी-पीढ़ी अन्धकार में पड़कर समाज के नेताओं द्वारा किये गये आविष्कारों को भूल न जाय।

समाज-शास्त्रज्ञ मानव जाति को सभ्यता की भिन्न-भिन्न श्रेणी पर पहुँची हुई देखकर शिक्षा-प्रदान के प्रति निम्नलिखित तीन निष्कर्ष निकालता है:—

(१) भले ही सभ्य जातियों में संकुचित पाठशाला-भवनों में भावी-पीढ़ी को संस्कृति की रक्षा के लिये सुयोग्य शिक्षा दी जाती हो या असभ्य जातियों में सामुहिक नृत्य-गान और वाद्य के द्वारा उनकी जाति के अमूल्य सभ्यता के रहस्य भरे गीत गाये जाते हों, दोनों में अन्तर केवल इतना ही पाया जाता है कि एक जगह पर सुव्यवस्थित शिक्षा दी जाती है और दूसरे स्थान पर हँसते-खेलते, नाचते-गाते अपनी सभ्यता की रक्षा की चेष्टा की जाती है। असभ्य जातियों में अग्नि के चारों ओर घूम-घामकर जो नृत्य और गीत होते हैं वही उनके विश्व-विद्यालय हैं।

असभ्य जातियों में पिता के साथ शिकार खेलते समय तीर और कमान लेकर जो पुत्र जाता है वही मानों उसका टेकनीकल स्कूल है। वह अनुकरण और देखा-देखी से ही सब कुछ सीख जाता है। इसके विपरीत, सभ्य लोग अपने बालकों को एक स्थान पर बिठाकर विविध भाँति के कला-कौशल सिखाते हैं।

(२) चाहे पिछड़ी हुई असभ्य जाति हो अथवा सभ्यता के शिखर पर पहुँची हुई सभ्य जाति हो, उन सबके हृदयों में भरी हुई एक उत्सुकता ज्ञात होती है। वह यह कि अपनी-अपनी जाति की सभ्यता और कला-कौशल की परम्परा प्रचलित रहे। अवश्य ही असभ्य जाति में शिक्षा की परिभाषा अस्पष्ट होगी और सभ्य जातियों में शिक्षा की परिभाषा अधिक स्पष्ट होगी। पर दोनों में ही यह बात मिलेगी कि सामाजिक सभ्यता की रक्षा और वृद्धि के उपाय किये जायँ।

(३) चाहे जाति सभ्यता के सोपान की नीचे की अथवा ऊपर की सीढ़ी पर हो और चाहे मध्य की सीढ़ी पर हो, शिक्षा-प्रदान की प्रणाली सभ्यता के माप से उसके अनुकूल ही रहती है।

गत पृष्ठों में हमने जो चन्द्रलोक से अवतरित समाज-शास्त्रज्ञ के विचारों का काल्पनिक चित्र रखा है उसका मतलब केवल यही है कि शिक्षा और पाठशाला आदि के सम्बन्ध में अपनी परिभाषा स्पष्ट करालें। शिक्षा के सम्बन्ध में यही परिभाषा हो सकती है कि सामाजिक ज्ञान, सामाजिक संस्कृति, सामाजिक कला-कौशल की रक्षा, धारणा और वृद्धि के लिये समाज में जो चेष्टा की जाती है उसको ही शिक्षा कहते हैं, और पाठशाला एक सामाजिक संस्था है, जिसमें इन ध्येयों की पूर्त्ति करने की चेष्टा की जाती है।

दूसरा अध्याय

भारतवर्ष में शिक्षा की भूमिका

जो शिक्षा-प्रणाली समाज की रचना, स्थिति, रूढ़ि, संस्कृति आदि का विचार करके नहीं निर्माण की जाती, वह देश के पुनरुद्धार के लिये सर्वथा निरर्थक सिद्ध होती है। निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि वर्त्तमान प्रचलित शिक्षा-प्रणाली सामाजिक उत्थान के लिये यथेष्ट नहीं है। इस स्थल पर अब हमें यही देखना है कि आज से सौ-डेढ़-सौ वर्ष पहले हमारे देश में शिक्षा-प्रदान की पद्धति क्या थी और उसमें उस समय के भारतीय-समाज की समस्याओं के हल करने की क्षमता थी अथवा नहीं।

उस काल में तीन प्रकार की शिक्षा-प्रदान की व्यवस्थाएँ थीं:—

(१) बड़े-बड़े नगरों और तीर्थ-स्थानों, जैसे; काशी, मथुरा, हरिद्वार, पाटलिपुत्र (पटना) और तक्षशिला आदि में अनेक बड़ी-बड़ी संस्कृत पाठशालाएँ थीं, जिन्हें विश्वविद्यालय कहना चाहिये। उन महान् विद्यालयों में उच्च जाति के, विशेषकर, ब्राह्मण विद्वान् और दूसरे उत्साही नवयुवक शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाते थे। वे वहाँ से व्याकरण, दर्शन, साहित्य, न्याय, काव्य आदि शास्त्रों में निपुण होकर आते थे। वे विद्यालय किसी राजा अथवा शिक्षा-विभाग के अधीन न थे। उनमें पठन-पाठन के प्रेमीजन धनोपार्जन के लिये पढ़ने नहीं जाते थे, किन्तु ज्ञानार्जन के लिये ही जाते थे। वे वहाँ २५ वर्ष की आयु तक विविध विद्याओं का अध्ययन करते थे।

(२) छोटे-छोटे ग्रामों और नगरों में धर्म-सम्बन्धी साधारण पाठशालाएँ होती थीं, जिनमें ब्राह्मणों के बालक संस्कृत और वेद-संहिता पढ़कर कर्मकाण्ड की आवश्यक शिक्षा प्राप्त करते थे। इसी प्रकार

मुसलमान लड़के प्रायः मकतबों और मसजिदों में क़ुरान आदि की अपनी धार्मिक शिक्षा प्राप्त करते थे। यह पाठशालाएँ और मकतब वर्तमान मिडिल स्कूलों और हाई स्कूलों के समान होते थे। इनके सञ्चालक मन्दिरों के पुजारी अथवा मसजिदों के मुल्ला होते थे। इन विद्यालयों का मुख्य ध्येय अपने-अपने धर्मानुयायियों को धर्म-पथ पर आरूढ़ रखना मात्र होता था। इसलिये उन्हें वहाँ केवल धर्म की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार के शिक्षालयों को पुरोहितों और मुल्ला-मौलवियों की ट्रेनिङ्ग संस्थाएँ कह सकते हैं।

(३) तीसरे प्रकार की जो शिक्षा-प्रणाली ग्रामों और नगरों में प्रचलित थी वह आजकल के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्यूनिसिपैलिटी की शिक्षा-प्रणाली के सदृश थी, अन्तर केवल इतना ही था कि उस समय की वे पाठशालाएँ किसी प्रकार की राजकीय सहायता के विना भी भली-भाँति चलती थीं, परन्तु आजकल डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के शिक्षालय सर्व प्रकार राजाश्रित हैं। उस समय राज्य-शासन में शिक्षा का कोई विशेष विभाग न था और न पाठ्य-क्रम निश्चित करने का कोई राजकीय विधान था, परन्तु यह बात बड़े गौरव की थी कि निरीक्षकों के बिना भी समयोचित शिक्षा अच्छी दी जाती थी।

उस समय गाँव के ज़मींदार अथवा अन्य धनीजन अपने बालकों को पढ़ाने के लिये योग्य अध्यापक खोजकर बुलाते थे और उनके रहने के लिये स्थान और भोजन आदि का सब प्रबन्ध करते थे। वे पाठशालाएँ उन्हीं की बैठक या चौपाल अथवा ग्राम के मन्दिर में लगा करती थीं और कभी-कभी बरगद, पाकर या इमली के वृक्षों की छाया में। उनमें केवल ज़मींदार वा महाजन बनियों के ही बालक नहीं पढ़ते थे, किन्तु अपने ग्राम और समीपस्थ छोटे-छोटे ग्रामों के बालक और बालिकाएँ भी पढ़ती थीं। बालकों के माता-पिता निश्चित अनाज शुल्क (फ़ीस) के रूप में अध्यापकों को देते थे। इन पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकें भी निश्चित-सी रहती थीं। जो पुस्तकें समीप की पाठशालाओं में प्रचलित रहती थीं, वही यहाँ पर भी पढ़ाई जाती थीं।

इन पाठशालाओं में साधारणतया लिखना-पढ़ना और सामान्य हिसाब पढ़ाया जाता था। इन पाठशालाओं की शिक्षा का उद्देश्य केवल इतना ही था कि विद्यार्थियों को देश-भाषा में चिट्ठी-पत्री लिखने का साधारण ज्ञान होना, रामायण तथा महाभारत का पढ़ लेना और वैश्यों के बालकों को मुड़िया अक्षरों में हिसाब लिखना आजाय। पिछड़ी हुई जातियों को पढ़ने से किसी प्रकार के आर्थिक लाभ की सम्भावना न रहने से उनमें उदासीनता थी।

इन पाठशालाओं के सम्बन्ध में हम तीन विशेषताएँ पाठकों के सम्मुख उपस्थित करना चाहते हैं:—

(१) निरीक्षण करने के लिये कोई बाहरी अधिकारी न रहता था, तब भी इनकी दशा सन्तोषजनक थी। इसका प्रधान कारण यह था कि विद्यालय चलाने का उत्तरदायित्व ग्राम के जमींदार अथवा महाजन वा पञ्चायत पर रहता था। यदि वे किसी अध्यापक से असन्तुष्ट रहते तो दूसरा अध्यापक बुला लेते थे। अध्यापक के आचार और चरित्र पर ग्राम के जमींदार, महाजन अथवा पञ्चों का यथेष्ट नियन्त्रण रहता था।

(२) दूसरी बात यह थी कि वे अपने बालकों के लिए शिक्षा की उपयोगिता समझकर बहुत कुछ देते थे।

(३) उस समय ग्राम की पञ्चायती पाठशालाओं को, किसी प्रकार का राजाश्रय न रहने से, ग्राम-निवासियों के आश्रय के ऊपर ही अवलम्बित रहना पड़ता था। मिस्टर विलियम अडैम साहब का कहना है कि अध्यापकों को कभी-कभी दो या तीन रुपया मासिक तक वेतन मिलता था। इन साहब महोदय के विचार से अध्यापकों की आर्थिक दशा शोचनीय थी। आजकल भी, जहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यापकों को २०), २५) और ४०) तक मासिक वेतन मिलता है, इन अध्यापकों की शोचनीय आर्थिक दशा के सम्बन्ध में शिकायतें सुनने में आती हैं। पञ्चायती शासन में भी देहात के अध्यापकों के वेतन निश्चित करने की चेष्टा की गई थी। वह यह कि गाँव के

अध्यापक का रहन-सहन, उसका आर्थिक जीवन उसी प्रकार का रहे जैसाकि दो हल की खेती करनेवाले कृषक का रहता है।

उपर्युक्त तीन श्रेणियों के अतिरिक्त शिक्षा-प्रदान की एक और प्रथा भी थी। वह भी राजाश्रय के बिना लोकाश्रय पर ही निर्भर रहती थी। उसका कार्य सामाजिक संस्कृति या सभ्यता की रक्षा करना था।

यह बात विचारणीय है कि जिस समय हिन्दुस्थान में रेलवे, तार आदि आधुनिक शीघ्र से शीघ्र सन्देश पहुँचाने के साधन नहीं थे, उस समय में भी भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक—काश्मीर से कन्याकुमारी तक, सौराष्ट्र से वङ्ग देश तक, रुद्री एक ही कण्ठ से गाई जाती थी। भाषा की विभिन्नता रहते हुए भी आचार-विचार और भावों की समानता और एकता थी। जिस काल में समाचारपत्र, तार-यन्त्र, वायुयान तथा रेलवे आदि आधुनिक शीघ्रातिशीघ्र सन्देश-वाहक साधन उपलब्ध हैं, विचारों और भावों की एकता लाना कठिन नहीं है, किन्तु बहुत ही सुगम है। उस समय, इन साधनों के अभाव में, समस्त देश-वासियों के आचार-विचार और भावों में एकता और समानता लाने का श्रेय उस समय के साधु-सन्तों को ही प्राप्त था। जो विद्वान् ब्राह्मण संन्यास लेकर चतुर्थाश्रम में पहुँचते, वे ही सर्वत्र भ्रमणकर ग्रामीण अपठित जनता को भी विविध ज्ञानोपदेश देकर, बहुश्रुत और बहुज्ञ बनाते थे, मानों यही उस समय प्रौढ़ों की शिक्षा का विधान था, जिसका इस काल में प्रायः लोप-सा होगया है।

आगेवाले अध्यायों से पाठकों को विदित होगा, कि प्रौढ़-शिक्षा का जो कार्य साधु-सन्त करते थे वही हमें भी प्रौढ़ों के लिये करना होगा। अन्तर केवल यही होगा कि वे केवल आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार करते थे और हम प्रौढ़ों को आधिभौतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ज्ञान-प्रदान के ऊपर अधिक ज़ोर देंगे।

तीसरा अध्याय

अर्वाचीन शिक्षा-पद्धति, उसका उद्भव, उसका देहात में प्रसार और फल

गत अध्याय में हम ब्रिटिश शासन के पूर्व भारतवर्ष में जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित थी, उसके भिन्न-भिन्न पहलुओं और श्रेणियों पर प्रकाश डाल चुके हैं। भारतीय पंचायत शासन-पद्धति की शिक्षा-प्रणाली की झाँकी दिखलाने में पाठकों के सामने हम दो-तीन बातें लाना चाहते हैं:—

(१) समाज की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था के अनुसार ही शिक्षा-प्रणाली प्रचलित थी अर्थात् सामाजिक कला-कौशल, पठित विषयों का ज्ञान तथा संस्कृति, इन सबकी रक्षा के लिये समयानुकूल प्रथा थी।

(२) उस समय में ज्ञान प्रदान के लिये तीन-चार प्रकार की शिक्षा-श्रेणियाँ अवश्य थीं, परन्तु प्रत्येक श्रेणी का मन्तव्य निश्चित-सा था; जैसे, पंचायती ग्रामीण पाठशाला का मन्तव्य कृषकों के लड़कों को लिखना-पढ़ना और सामान्य हिसाब पढ़ाना और सिखाना। छोटे-छोटे नगरों की पाठशालाओं और मकतबों का उद्देश्य पुरोहित और मुल्लाओं को तैयार करना और बड़े-बड़े विद्यालयों तथा मकतबों का उद्देश्य विद्वान् पण्डितों और आलिम मौलवियों का तैयार करना था। इस प्रकार अन्तिम श्रेणी का, जो अनियंत्रित थी और जिसके प्रचारक साधु-सन्त और संन्यासी रहते थे, मन्तव्य समाज को बहुश्रुत और सभ्य बनाना था। सारांश, हरएक श्रेणी का मन्तव्य भिन्न-भिन्न और निश्चित-सा था चाहे वह संकुचित ही हो। किन्तु, जैसे उसका मन्तव्य संकुचित था वैसे ही उसमें महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि अपने मन्तव्य को पूरा करने की क्षमता थी।

आजकल के समय में शिक्षा-प्रसार का भारत में बोलबाला है, पर विद्वान् और वैसे ही सामान्य लोग और यहाँतक कि शिक्षा से पराङ्मुख रहनेवाले भी वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली से असंतोष प्रकट कर रहे हैं। अनेक लोगों का कहना है कि आजकल की शिक्षा-प्रणाली शिक्षितों में बेकारी बढ़ा रही है। किसी-किसी का कहना है कि वह केवल साहित्यिक शब्द-जाल बढ़ा रही है, और किन्हीं—शिक्षा से लाभ न उठा लेनेवालों—का यह निश्चय है कि वह उन्हें उनके पूर्वजों के धन्धों से वञ्चित करने की योजना है, ऐसे ही प्रकारों से लोग उसे घोषित करते हैं। अतएव इस स्थल पर प्रचलित शिक्षा-पद्धति का उद्भव, उसका प्रसार और उसके फल के सम्बन्ध में कुछ कहना अप्रासङ्गिक न होगा।

पंचायत-शासन-पद्धति-काल में कृषकों के बालकों को साक्षर बनाने के लिए हिन्दुस्थान के कोने-कोने में किस प्रकार पाठशालाएँ प्रचलित थीं इसका विवरण हम यहाँ ब्रटिश-शासन काल में अँगरेज़-जाँच-कमेटियों और अँगरेज़-ग्रन्थकारों के आधार पर ही देने का प्रयत्न करते हैं।

सन् १८१३ में ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी को पार्लामेण्ट से भारत में शासन-सम्बन्धी जो चार्टर (अधिकार-पत्र) दूसरी बार मिला था, उसमें एक प्रतिबन्ध (शर्त) यह भी था कि ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी प्रति वर्ष एक लाख रुपया भारतवर्ष में शिक्षा-प्रसार और साहित्य-प्रचार में व्यय करे। यह व्यय किस प्रकार सुचारु रूप से किया जाय, इसके लिये भारतभर में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का अनुसन्धान कराया गया। मद्रास प्रान्त में जो कमेटी इस कार्य के लिये बनी, उसने सन् १८२२ से १८२६ तक अनुसन्धान किया। बम्बई प्रान्त में नियुक्त कमेटी ने सन् १८२३ से १८२८ तक अनुसन्धान किया। इन दोनों कमेटियों के विवरण उपलब्ध हैं। किन्तु, सबसे उत्कृष्ट, विस्तार-पूर्वक और विचारणीय रिपोर्ट श्री विलियम अडैम साहब की बंगाल की ग्रामीण पाठशालाओं के सम्बन्ध में है। श्री अडैम साहब को लार्ड विलियम बेंटिङ्क साहब ने

बंगाल की प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का अनुसन्धान करने के लिये नियुक्त किया था। आपने सन् १८३५ से लेकर १८३८ तक बङ्गाल के ग्राम-ग्राम में घूमकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण करके अनुसन्धान किया था।

श्री अडैम साहब का कहना है कि "बड़े-बड़े गाँवों और शहरों में प्राथमिक पाठशालाएँ थीं। इन पाठशालाओं में १२ से २० तक विद्यार्थी पढ़ते थे। पाठशालाएँ कभी किसी की बैठक में और कभी वृक्षकी छाया में लगी हुई मिलीं और कभी-कभी मन्दिर में भी। इन पाठशालाओं के अध्यापक अधिकतर कायस्थ मिले। बङ्गाल-प्रान्तीय सामाजिक स्थिति उस समय ऐसी ही थी। ब्राह्मण और क्षत्रिय ग्रामीण पाठशाला में पढ़ाने के काम को घृणास्पद समझते थे। परन्तु, श्री अडैम साहब को कुछ ब्राह्मण अध्यापक भी मिले। विद्यार्थियों से फ़ीस लेना निश्चित नहीं था, तब भी अध्यापक को ४-५ रुपया मासिक किसी न किसी रूप से मिल ही जाता था। पाठशालाओं में सब जाति के बालक और कहीं-कहीं अछूत बालक भी सवर्णों के साथ पढ़ते हुए मिले। अधिकतर ब्राह्मणों और कायस्थों के बालक पढ़ते थे। पाठशाला में पढ़नेवाले छात्रों की आयु ५ से १६ वर्ष तक थी। पाठशाला का उद्देश्य व्यावहारिक ज्ञान देना था। पाठ्यक्रम में पढ़ना-लिखना और पत्र-लेखन, प्राथमिक-गणित और व्यावहारिक-हिसाब पढ़ाया जाता था। पढ़ने के लिये बहुत कम किताबें निश्चित थीं। पाठ्य-क्रम चार श्रेणियों में विभाजित था—प्रथम श्रेणी में धरती पर अक्षरों की रूप-रेखा निकालना अर्थात् अक्षर लिखना सीखना। यह क्रम १० दिन तक चलता था। दूसरी श्रेणी में ताड़ के पत्र पर क़लम से लिखना सिखाया जाता था। विद्यार्थी कोयले की स्याही और सेंठों की क़लम से लिखते थे कि जिससे लिखे हुए चिह्न शीघ्रता से मिटाये जा सकते थे। एक ताड़-पत्र पर एक बालक लिखता था। पहला पत्र ख़राब हो जाने पर ही दूसरा पत्र लेता था। बालकों को इस श्रेणी में संयुक्त अक्षरों का स्पष्ट उच्चारण करना और लिखना सिखाया जाता था। इसके पीछे व्यक्तियों और ग्रामों के नाम लिखना सिखाया जाता था। तृतीय श्रेणी

में बालक केले के पत्ते पर पत्र लिखना प्रारम्भ करते थे। इस कक्षा में ग्राम्य शब्द और सभ्य शब्दों का भेद बताया जाता था। पत्रादि में ग्राम्य शब्दों के प्रयोग का निषेध किया जाता था। इसी श्रेणी में जोड़, बाक़ी पढ़ाये जाते थे। गुणा, भाग अलग-अलग नहीं पढ़ाते थे; वरन् पहाड़े रटवाकर गुणा, भाग एक साथ पढ़ाने की परिपाटी थी। पहाड़े सब विद्यार्थी एक साथ बोलकर याद करते थे। चतुर्थ श्रेणी में व्यापार सम्बन्धी हिसाब, व्यापारी पत्र-लेखन, अर्ज़ी लिखना इत्यादि सिखाते थे। इस श्रेणी में विद्यार्थी काग़ज़ का प्रयोग करते थे। एक वर्ष तक इस ढंग से अभ्यास कर लेने के पश्चात् बंगाली में रामायण और मानस-मंगल पढ़ने के योग्य समझे जाते थे। पाठशालाओं के अधिक पढ़े वा कुशल विद्यार्थी पढ़ाने में शिक्षक की सहायता करते थे। उन्हें अंगरेज़ी में मानीटर कहते थे। पाठशाला से अनुपस्थित छात्र को दण्ड देने के उद्देश्य से दोनों हाथों में ईंटों के टुकड़े देकर एक पैर पर खड़ा किया जाता था, और कभी-कभी विद्यार्थी के हाथ टाँगों के नीचे से निकलवा, कान पकड़वाकर मुर्गे की शकल में खड़ा करते थे।"

इस प्रकार ग्रामों में साक्षरता प्रचार के लिये व्यावहारिक रूप से चलनेवाली पाठशालाएँ सर्वत्र थीं।

बङ्गाल में इन पाठशालाओं के अध्यापकों को 'गुरु महाशय', महाराष्ट्र में 'तांत्या पन्तोजी', और युक्त प्रान्त में 'गुरुजी' या 'भैयाजी' कहते थे।

मद्रास प्रान्त की जाँच-कमेटी का कहना है कि पाठशाला जाने योग्य लड़कों में से $\frac{१}{६}$ पढ़ते थे। बम्बई की जाँच-कमेटी का कहना है कि ८ लड़कों में १ पढ़ता था। श्री अडैम साहब का कहना है कि बंगाल में १३·०२ प्रतिशतक बालक पाठशालाओं में पढ़ते थे। श्री विलियम वार्ड का कहना है कि बंगाल के पुरुषों में $\frac{१}{५}$ जनता पढ़ना लिखना जानती थी अर्थात् पुरुषों में साक्षरता का प्रसार २० प्रतिशतक था। आज ब्रिटिश शासन-काल में, जहाँ प्राथमिक शिक्षा के लिये इतना अधिक व्यय किया जाता है, वहाँ केवल ८·०२ प्रतिशतक साक्षर हैं।

विद्वानों का कहना है कि उस काल में शिक्षा-विभाग न रहते हुए भी साक्षरता का प्रसार आज से अधिक था।

जो हो, हमें यह समीचीन प्रतीत होता है कि उस समय देश, काल के अनुसार प्रचलित प्रणाली बुरी न थी। और यह भी कहना आवश्यक है कि यदि इसी शिक्षा-प्रणाली को सुसंगठित रूप दिया जाता तो भारतवर्ष में अँगरेजी शिक्षा-प्रचार से जो आपत्ति आई मालूम होती है उससे वह बच जाता। परन्तु सन् १८३५ से इसके विपरीत अँगरेज़ी शिक्षा-पद्धति भारत में जारी की गई। इसका संक्षिप्त इतिहास यहाँ दिया जाता है :—

सन् १८३५ में एक कमेटी नियत हुई जिसका काम यह निर्णय करना था कि ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के कोश से जो एक लाख रुपया प्रतिवर्ष शिक्षा-प्रचार के लिए व्यय करना निश्चित हुआ था, वह किस प्रकार व्यय किया जाय। इसके अध्यक्ष लार्ड मेकाले साहब थे। कमेटी में दो दल प्रत्यक्ष-रूप से हो गये थे— एक दल का कहना था कि हिन्दुस्थान की शिक्षा-विषयक जो संस्थाएं विद्यमान हैं उनका पुनरुत्थान किया जाय और बिगड़ी हुई शिक्षा-प्रणाली सुधारकर सुचारु रूप से चलाई जाय। इस दल का यह भी कहना था कि पुरानी प्रथा की भित्ति, समाज के विचार से, गहरी और पुष्ट है, उसमें केवल सुधार करना है; उसे सुचारु रूप से चलाना है। इस दल के विपरीत, लार्ड मेकाले साहब का दल था। इस दल का कहना था कि पौरात्य शास्त्रों का ज्ञान अधूरा है, जीर्ण है और मृतवत् है। उसके पुनरुत्थान में व्यय करना व्यर्थ है। लार्ड मेकाले साहब अँगरेज़ी भाषा के समर्थक और बड़े भारी लेखक थे। विचारों में प्रतिगामी थे। उनके सामने मानों एक दिव्य स्वप्न खड़ा था कि अँगरेज़ी भाषा ही भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषा-भाषियों के लिये एक राष्ट्र भाषा (Lingua Franca) हो जायगी। साथ ही अँगरेज़ी शासन चलाने के लिये अँगरेज़ी भाषा जाननेवाले कर्म्मचारियों की परमावश्यकता प्रतीत हो रही थी। अन्त

में विलायत में कम्पनी के बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स को जो रिपोर्ट भेजी गई, उसमें लिखा गया कि अँगरेज़ी शिक्षा-प्रणाली भारत में प्रचलित की जाय। यही स्वीकृत हुआ। अतः भारत में अँगरेज़ी शिक्षा उसी समय से आरम्भ हो गई। ब्रिटिश शासन में सहायता देनेवाले राजभाषज्ञ कर्मचारी प्रस्तुत करने के लिये सर्वत्र स्कूल, कालेज़ जारी किये गये। इन स्कूलों से पहले-पहल पढ़कर निकलनेवालों को आर्थिक लाभ भी अच्छा हुआ। अतः सवर्ण जाति के बहुत लोग अपनी उपज़ीविका के लिये अँगरेज़ी पढ़ना सीखने लगे।

इधर पाश्चात्य देशों में नये-नये आविष्कार जैसे रेल, तार आदि, आधिभौतिक आविष्कार और व्रण (फोड़ों) को चीर-फाड़ कर चिकित्सा करने की उपयोगी प्रणाली आदि को देखकर, भारतवर्ष के तत्कालीन राजा राममोहनराय बड़े से बड़े नेता भी आश्चर्य-चकित रह गये। धीरे-धीरे सब लोग अंगरेज़ी शिक्षा के प्रेमी बन गये। इधर जब सर्वत्र जारी हुए सरकारी मिडिल स्कूल, हाई स्कूल, कालेज और यूनीवर्सिटियों से उत्तीर्ण छात्रों की संख्या पर्याप्त न होसकी तब नेताओं ने देश भर में चंदा करके स्वकीय अंगरेज़ी हाई स्कूल और कालेज खोले।

इसका परिणाम यह हुआ कि जब यहाँ अँगरेज़ी-पठितों की वृद्धि होने लगी—वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, इंजिनियर आदि आवश्यकता से अधिक संख्या में प्रस्तुत होने लगे, तब बहुत से सुशिक्षित भी बेकार रहने लगे। यही अँगरेज़ी शिक्षा के प्रति इनके असंतोष फैलने का मुख्य कारण हुआ।

लार्ड मेकाले साहब की अँगरेज़ी शिक्षा-पद्धति जारी करने का प्रस्ताव पास होने के पश्चात् सन् १९०४ तक शिक्षा-विभाग का लगभग समस्त व्यय अँगरेज़ी हाई स्कूल, कालेज और यूनीवर्सिटियों पर ही होनेलगा। यद्यपि सन् १८८० में जो शिक्षा-कमीशन की रिपोर्ट निकली उसमें प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करने की सिफ़ारिश हो चुकी थी, तथापि सुशिक्षितवर्ग, नेताओं और सरकार की ओर से उसकी उपेक्षा

ही रही। १९०४ में लार्ड कर्ज़न साहब ने प्राथमिक शिक्षा के विषय में अपनी योजना प्रचलित की। इसी के आधार पर आजकल के डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की शिक्षा-संस्थाएँ चल रही हैं।

पोषक-पाठशालाएँ (Feeder Schools)—देहात में जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है वह पहले से ही दोष-मूलक रही। प्राथमिक कक्षाएँ केवल अँगरेज़ी स्कूल में विद्यार्थियों को भर्ती करने के लिए ट्रेनिङ्ग ग्राउंड अर्थात् भूमिका मात्र हैं। इनमें व्याकरण, भूगोल, गणित आदि इसी विचार से पढ़ाये जाते हैं कि वे लड़के हाई स्कूल में जाकर वहाँ की शिक्षा-प्रणाली को सँभाल सकेंगे। ग्रामीण प्राथमिक शिक्षा-संस्थाएँ इस व्यावहारिक विचार से क़तई नहीं जारी की गई थीं कि ग्रामों के स्कूलों में पढ़नेवाले लड़के सुयोग्य कृषक और नागरिक हों। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्राथमिक शिक्षा संस्थाओं का अभिप्राय अधिकतर यही था कि उनके लड़के हाई स्कूल की शिक्षा-पद्धति को सँभालने योग्य हों।

जो अँगरेज़ी शिक्षा-प्रणाली भारतवर्ष में जारी है वह इस विचार से दोषपूर्ण है कि यहाँ क्रमशः जो शिक्षा-श्रेणियाँ बनी हैं वे सब एक ही सोपान के अङ्ग हैं अर्थात् प्राथमिक कक्षा में पढ़नेवाले लड़के अँगरेज़ी स्कूल के पाठ्य-क्रम को सँभालने के लिये तैयार किये जायँ, इसी प्रकार मिडिल स्कूल के लड़के हाई स्कूल और हाई स्कूल के लड़के कालेज, और कालेज के यूनीवर्सिटी के पाठ्य-क्रम को सँभालने के लिये हों। जो लड़के प्राथमिक शिक्षा से इस सोपान की उच्च कोटि तक पहुँच जाते हैं वे ही पूरा लाभ उठाते हैं। परन्तु, जो विद्यार्थी आर्थिक अव्यवस्था और मानसिक दुर्बलता से इस शिक्षा को बीच ही में छोड़ देते हैं वे किसी भी काम के नहीं रहते। न तो उन्हें योग्य शिक्षा ही मिली, न वे घर के काम-काज के ही रहे। इनपर यह लोकोक्ति चरितार्थ होती है कि "घर के रहे न घाट के"। ऐसी स्थिति होने पर बेकार इधर-उधर घूमना पड़ता है। यही कारण है कि जिन लोगों को अँगरेज़ी शिक्षा से असंतोष हुआ है, उनमें ऐसे अर्द्ध-शिक्षितों की संख्या ही अधिक है।

यह शिक्षा-प्रणाली एकसूत्री है और सत्य बात तो यह है कि यह उस अल्प समाज के लड़कों के लिये है जिनकी आर्थिक दशा अच्छी है और जो मानसिक बल से आदि से अन्त तक पहुँच सकते हैं। यह शिक्षा-प्रणाली साधारण जनता के लिये नहीं है। इस शिक्षा-प्रणाली का कार्य-क्रम कम से कम १६ वर्ष का है। धनी लड़कों के लिये, जिनको मानसिक बल भी प्राप्त है, यह बहुत अच्छी प्रणाली है। इस शिक्षा-प्रणाली में थोड़ा अन्तर करने के बाद भावी-समाज के नेताओं का निर्माण करने के लिये यह अच्छी ट्रेनिङ्ग भूमिका हो सकेगी।

देहात में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली निम्नलिखित बातों में दोषपूर्ण प्रतीत होती है:—

(१) इस प्रणाली में यह विचार तनिक भी नहीं किया गया कि इस में उत्तीर्ण छात्र अधिकतर कृषक ही रहेंगे। जबतक देहात की शिक्षा-प्रणाली छात्रों को सुयोग्य नागरिक तथा कार्यक्षम कृषक बनाये जाने के विचार से न निर्माण होगी, तबतक वह असफल ही रहेगी। इस शिक्षा-प्रणाली के विषय में खेद की बात यह है कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली देश के उद्धार के लिये क्षमताशालिनी नहीं हो सकी। इस शिक्षा-प्रणाली की असफलता के अनेक कारण हैं। विशेषतः यह शिक्षा-प्रणाली समाज की रचना, उस की विचार-धारा तथा संस्कृति की परम्परा देखकर निर्माण नहीं की गई। प्रचलित शिक्षा-प्रणाली पाश्चात्य विचारों के आधार पर है। कदाचित् जिस देश से यह शिक्षा-प्रचार का बिरवा भारत में लाया गया है, वह उक्त राष्ट्र के लिये भले ही अच्छे मधुर फल देनेवाला हो, किन्तु देश, काल और पात्र के विचार से भारत के वातावरण में भी उतना ही फलप्रद होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

(२) अँगरेज़ी शिक्षा-प्रणाली अधिकतर बौद्धिक तथा तार्किक विचारों को उत्तेजन देनेवाली है। इसमें उन्नत भावों की तथा सभ्यता के प्रति प्रेमवर्द्धन की शिक्षा तनिक भी नहीं दी जाती है। इस प्रणाली

से ज्ञान की ज्योति भले ही चतुर्दिक् फैल गई हो, मनुष्य चतुर चालाक भले ही बन गया हो, अपने मतलब का हिसाब किताब भले ही लगा लेता हो और संसार के सम्पूर्ण शास्त्रों को तर्क-दृष्टि से भले ही समझ लेता हो, परन्तु सच बात तो यह है कि इस शिक्षा-प्रणाली से संसार से विश्वास, श्रद्धा, सामाजिक-प्रेम और सद्भाव उठ-सा गया है और बचा-खुचा भी लुप्त होता जा रहा है। आज तो मनुष्य अपने आपको इतना विवेकी समझने लगा है कि अब उसे जगन्नियन्ता और समाज की आवश्यकता ही नहीं रही। वह चतुर है तो अपने लाभ के लिये, ज्ञानी है तो दूसरों को मूर्ख बनाकर पैसा हड़पने के लिये, दुनियादार है तो भोले-भालों को चक्कर में डालने के लिये। यह सब केवल भौतिक शिक्षा-प्रणाली से मिले हुए ज्ञान का फल है।

इस शिक्षा-प्रणाली का देहात में जितना कुछ प्रचार हुआ है उसमें ज्ञान और साक्षरता यथा-तथा ही फैली है। परन्तु, इस शिक्षा-प्रणाली, के साँचे में ढले हुए जो अल्पाधिक व्यक्ति गाँव में मिल जाते हैं उनमें से कोई चतुर पटवारी है, तो कोई वकील का दलाल है। कोई थाने से मिलकर इधर-उधर सोलह-बत्तीस आना कमाने की चिन्ता में रहता है, तो कोई समाज में अशान्ति और उत्पात कराने में अपनी योग्यता समझता है। देहात में लिखे-पढ़ों में से ऐसे व्यक्ति हमारे देखने में कम आये हैं, जो अपने गाँव में शान्ति-स्थापना करने के लिये प्रयत्न करते हों; जो ईमानदारी पर स्थिर हों और जो दीन दुखियों की सेवा में तत्पर हों। इसी त्रुटि को दूर करने के लिए हमने अपनी शिक्षा का आधार सत्य, ईमानदारी और सद्भाव पर रखा है।

(३) इस शिक्षा-प्रणाली का और एक कटु फल मिला है, वह यह कि देश में बहुतसी जातियाँ और धर्म पहले से ही थे, जिनमें आपस में सद्भाव तो रहता था, पर इस शिक्षा-प्रणाली से सुशिक्षित और अशिक्षित दो जातियाँ और पैदा होगईं। यह बात सही है कि गत दो-चार वर्ष से सुशिक्षितों के अशिक्षितों के प्रति विचार बदल रहे हैं। लेकिन,

प्रस्तुत लेखक ने वह दिन भी देखे हैं जबकि सुशिक्षितों के विचार से, देहाती गँवार और असभ्य समझे जाते थे और वे इनके प्रति घृणाजनक व्यवहार करते थे। कभी-कभी लेखक को अब भी यह शंका होती है कि कहीं सुशिक्षितों के परिवर्तित विचार दिखाने भर के स्वार्थसाधनार्थ तो नहीं हैं।

(४) अँगरेज़ी शिक्षा-प्रणाली, हम लिख चुके हैं, छोटे-मोटे कर्मचारियों के प्रस्तुत करने के लिये भारत में आई। पढ़नेवालों में एक ही भाव जमा रहा है और अब भी है, कि पढ़ने के बाद कहीं-न-कहीं नौकरी करेंगे। इस भाव का प्रतिबिम्ब प्राथमिक कक्षाओं पर भी पड़ चुका। क्योंकि प्राथमिक पाठशालाएँ भी उसी विचार को लेकर चलने लगी हैं। इन पाठशालाओं में पढ़नेवालों के मन में यही भाव रहता है कि या तो पटवारी होंगे या अध्यापक अथवा कहीं कोई और ऐसी-वैसी नौकरी करेंगे। अभिप्राय यह है कि न तो पाठशाला सुयोग्य कृषक बनाने के लिये है और न पढ़नेवालों के ही मन में कभी पढ़कर सुयोग नागरिक बनने की बात आती है। ऐसी शिक्षा-प्रणाली देहात के उत्थान के लिए कभी सफल न हो सकेगी।

चौथा अध्याय

सामाजिक परिवर्त्तन—(पूर्वार्द्ध)

(ब्रिटिश-शासन के पूर्व देहात का सामाजिक तथा आर्थिक जीवन)

गत अध्याय में ब्रिटिश-शासन के पूर्व जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित थी तथा भारत में ब्रिटिश-शासन स्थापित होने के अनन्तर सन् १८३५ से जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की गई, हमने इन दोनों प्रणालियों की तुलनात्मक झाँकी दिखाई है। गत् १५० वर्ष के भीतर नये-नये शास्त्रीय आविष्कार, परकीय शासन तथा पाश्चात्य संस्कृति से सम्बन्ध होने के कारण भारत में, अनेक सामाजिक परिवर्त्तन हो गये हैं और हो रहे हैं। अतः इस अध्याय में इन सामाजिक परिवर्त्तनों के सम्बन्ध में कुछ समालोचना करने का आयोजन किया है, जिससे पाठकों के विचार में परिवर्त्तित स्थिति में यथोचित शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकता प्रतीत हो।

भारत में पंचायती शासन की समाज-रचना

हम ऊपर लिख चुके हैं कि गत् १५० वर्ष के भीतर बहुत से सामाजिक परिवर्त्तन हो चुके हैं। ब्रिटिश शासन के पूर्व देहात की समाज-रचना और शासन बहुत ही भिन्न था, उसकी पूरी कल्पना आधुनिक पीढ़ी को कदाचित् कम ही होगी। किन्तु, उस समय की सामाजिक रचना और प्रथाओं की कल्पना के चिह्न जहाँ-तहाँ पाठकों को मिलेंगे।

वह युग ही दूसरा था। उस समय के ग्राम छोटे-छोटे प्रजा-सत्तात्मक राज्य थे। वहाँ जमींदार और कृषक के अतिरिक्त बढ़ई, लोहार, कोली, जुलाहा, कुम्भकार, नाई आदि सेवा के लिये बसते थे। गाँव की व्यवस्था पंचायत के हाथ में रहती थी। नाई, धोबी आदि

ग्राम्यभृत्य वृत्ति के अधिकारी समझे जाते थे। काश्तकार उन्हें अनाज की उपज का कुछ हिस्सा देते थे। जिसे पूर्व की ओर 'फरवार', दक्षिण में 'वलूता' तथा पश्चिम में 'हक़' कहते थे।

उस समय गाँव की समस्त बातों का शासन गाँव की पंचायत के अधिकार में था। उसका विवरण निम्नलिखित है:—

(१) बालक बालिकाओं को पढ़ाने के लिये "भैयाजी" और "गुरुजी" को बुलाकर 'बसाते' थे। उनके भोजनादि का प्रवन्ध पंचायत से होता था। किसानों तथा अन्य पेशेवालों के बालक पढ़ते थे।

(२) पेशेवालों और किसानों के बालक अपने बाप दादों के साथ काम करते-करते जातीय व्यवसाय में दक्ष होजाते थे। उनको किसी बढ़ईगीरी (कारपेंटरी), कताई-बुनाई के स्कूलों तथा कृषि विद्यालयों की आवश्यकता ही न प्रतीत होती थी। सब लोग अनुकरण से ही वंशजात औद्योगिक ज्ञान को प्राप्त कर लेते थे। इसे अप्रेंटिसशिप (Apprenticeship) कहते हैं। इस प्रकार उन दिनों की प्रचलित प्राचीन शिक्षा-प्रणाली आधिभौतिक कला-कौशल की रक्षा के लिये पर्याप्त थी।

(३) उस समय आध्यात्मिक विचारों के विषय में साधु-महात्माओं द्वारा निम्न से निम्न और उच्च से उच्च लोग भी यथेष्ट ज्ञान रखते थे। हाँ, अन्तर था तो केवल इतना ही कि आध्यात्मिक ज्ञान के अगाध सागर में विद्वत्समुदाय अधिक गहराई तक और सामान्य जन-समाज कम गहराई तक पहुँचता था। ब्रह्म, जीव, प्रकृति और माया आदि जैसे गहन विषयों तक का पूर्ण ज्ञान जन-साधारण में था। यहाँतक कि यहाँके भिखारी भी इन विषयों की विशद व्याख्या करके लोगों को चकित कर देते थे। धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान से भारत का अखिल वातावरण भरा हुआ था। हाँ, यह बात भी माननी पड़ेगी कि इसके साथ अन्धश्रद्धा पर आश्रित प्रथाएँ भी प्रचलित थीं जिसका फल यह हुआ कि जन-समाज धर्मभीरु, श्रद्धालु और सच्चा बन गया था।

यहाँपर यह कहना अनुचित न होगा कि इन विचारों का प्रभाव उनके आचरण के ऊपर बहुत अच्छा पड़ता था। शास्त्रोक्त ज्ञान के अभाव में अज्ञान के होते हुए भी सबके हृदय में सबके लिये सद्भाव था। जैसा; 'छूताछूत का विचार करना', यह एक अन्ध-परम्परा थी। परन्तु, यह सब मानते हुए भी सवर्णों के हृदय में अछूतों के प्रति प्रेम-भाव मौजूद था। आजकल का-सा "मुख में राम बगल में छुरी" वाला युग न था। ग्राम के उच्च से उच्च जाति के बालक वयोवृद्ध चमार आदि अछूतों को 'बाबा', 'काका' आदि कहकर सम्बोधन करते थे। चमार की बिटिया को प्रत्येक अपनी बिटिया सदृश मानते थे। यहाँतक कि जिस ग्राम में अपने ग्राम की बिटिया विवाही जाती, उस गाँव में जाकर कोई भी उस ग्राम का पानी तक न पीता था। वह युग हार्दिक-प्रेम, श्रद्धा और सद्भाव का था।

उस काल में पारस्परिक व्यवहार एक अटल सिद्धान्त पर चलते थे कि, जिसको धर्म कहते थे। 'धर्म' शब्द का अर्थ मज़हब, मत या सम्प्रदाय नहीं था, वरन् यह था कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के प्रति तथा अपने समाज के प्रति न्याय से वर्ताव करे।

ग्रामोत्सव तथा त्यौहार

प्रत्येक ग्राम में समय-समय पर एकता, प्रेम, उत्साह और स्वास्थ्य-वर्द्धक उत्सव और त्यौहार बड़ी ही उमंग से एकत्र हो मनाये जाते थे। जैसे, होली में सब मिलकर फगुआ गाकर हृदय विकसित करते तथा मित्र ही नहीं, शत्रु तक से बहुत दिनों से चला आया हुआ भी वैर त्याग सप्रेम आलिङ्गन करते और एक दूसरे के अपराधों को होली में जला स्वाहा कर देते। नागपंचमी के दिन गाँव के युवकों का दंगल जुटाकर, उत्साही युवकों की कुश्तियाँ (मल्लयुद्ध) कराकर पुरस्कृत करते थे। फ़सल तैयार होने पर पुरोहित से शुभ घड़ी पूछकर भगवान् के दिये हुये नवान्नों से नवा-नवा अर्थात् नवान्नेष्टी-यज्ञ कर धन्यवाद दे कृतज्ञता प्रकट करते। दशहरे के दिन वीर-पूजार्थ सीमोल्लंघन कर अस्त्र-

शस्त्रों को साफ़ कर वीरतापूर्ण कौतुक दिखाते थे। कार्तिक की अमावस को घर लीप-पोत, शुद्ध कर रात्रि को देसी तेल के दीपकों से दीपावली करते, जिससे नगर भर की वायु स्वच्छ होती थी। देवोत्थानी एकादशी को भी घर लीप-पोत चित्रादि अङ्कित कर नवीन उत्साह से सामुहिक उत्सव मनाते थे। रात्रि के पिछले प्रहर में फटे-टूटे सूप को गन्ने (ईख) से पीटकर दरिद्रता भगाते थे। अब इन सबका भी सच्चा भाव तो लुप्त हो चुका है केवल बाह्य आडम्बर भर शेष रह गया है। यह सब त्यौहार और उत्सव भी पंचायत के द्वारा मनाये जाते थे। यह उस समय के सामाजिक भावों और विचारों के बाह्य दृश्य थे।

गाँव के झगड़े

भारत में पंचायती शासन-पद्धति की प्रथा बहुत ही प्राचीन काल से चली आ रही है। कहा जाता है कि सूर्य्यवंश के राजा पृथु ने गंगा-यमुना मध्यवर्त्ती दुआवा—ब्रह्मावर्त में बसकर ग्रामवासियों के सुभीते के लिये यह प्रथा प्रचलित की थी। ईसवी सन् से ३०० वर्ष पहले यूनान के बादशाह अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) ने भारत पर आक्रमण किया था, उस समय भारत में ग्राम्य पंचायतें धूमधाम से चल रही थीं। मेगास्थनीज़ नाम के एक यूनानी यात्री ने भारत में भ्रमण किया था। उसने यहाँ की ग्रामीण पंचायतों को 'पिंटाड' नाम से घोषित किया था। ईसवी सन् के लगभग २०० वर्ष पूर्व बंगाल की ओर मौर्य्यवंश के राजा राज्य करते थे। उनके कुलगुरु प्रसिद्ध विद्वान् चाणक्य ने अपने विख्यात ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में पंचायत के नियम लिखे हैं।

उस समय देश के कोने-कोने में ग्राम्य-पंचायतें स्थापित थीं। देश में कभी-कभी राजाओं और सरदारों में लड़ाइयाँ भी होती थीं, पर ग्रामोन्नति और अन्न-समृद्धि पर इनका कुछ प्रभाव न पड़ता था। कहा जाता है कि जब किसी द्वीप पर से किसी राजा का आक्रमण होता था, तब ग्रामवासी अपने बाल-बच्चों और गोरुओं को लेकर जंगल में चले जाते थे, और आक्रमण समाप्त होने पर पुनः अपने ही घरों में

आ बसते थे। मानों वह सैनिक आक्रमण आँधी की भाँति आता और चला जाता था। उससे ग्राम-वासियों की कोई विशेष क्षति नहीं होती थी। कदाचित् २—४ व्यक्ति मर गये तो भी उनके ही बाल-बच्चे अपने पूर्वजों की धरती और मकान पर आ बसते थे। बलात् निर्बलों की सम्पत्ति हड़प करने की अथवा लूट-मार करने की किसी की शक्ति न थी, क्योंकि इस विषय में निर्णय देने का उत्तरदायित्व ग्राम की पंचायत पर निर्भर था। लार्ड मेटकाफ़ साहब ने सन् १८३० ई० में इस सम्बन्ध में ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी को जो खरीता भेजा था उसमें से एक अंश का अनुवाद यहाँ दिया जाता है:—

"ग्राम पंचायतें छोटे-छोटे प्रजासत्तात्मक राज्य ही हैं, जो अपनी जीवनोपयोगी समस्त वस्तुएँ अपने ही यहाँ उत्पन्न करती हैं, दूसरों से बहुत कम सम्बन्ध रखती हैं। भारत में और बातें तो क्षणस्थायी हैं पर यह चिरस्थायी प्रतीत होती हैं। राज-कर्त्ताओं के घराने के पीछे दूसरे वंश के राज्याधिकारी होते हैं और वे भी चले जाते हैं। समाज में क्रान्ति होती है और चली जाती है। हिन्दू, मराठा, मुग़ल, पठान, अङ्गरेज एक दूसरे के पीछे राज्य करते हैं पर ग्राम पंचायतें ज्यों की त्यों स्थापित हैं। आपत्काल में ग्राम-निवासी अपने-अपने शस्त्र लेजाते और क़िले बनाकर रहते हैं। अपने पशुओं को भी साथ ले जाते हैं। शत्रु के दल उनके ग्रामों पर से होकर आते और जाते हैं, पर वे उनकी प्रतिक्रियाओं में दख़ल नहीं देते अर्थात् उन्हें कोई कष्ट नहीं पहुँचाते। इन ग्राम पंचायतों का संघ एक छोटा सा राज्य बनाता है। मेरा विचार यह है कि इन ग्राम पंचायतों के संघों ने देहात की समाज-रक्षा पर्य्याप्त रूप से की है।"

सर चार्ल्स ट्रेवलिल अपनी पुस्तक में लिखते हैं, कि "पर-राष्ट्रों से हिन्दुस्थान में एक के पीछे एक कितने ही विजेता आये और गये। अनेक क्रान्तियाँ हुईं और गईं, पर हिन्दुस्थान की ग्राम म्युनिस्पल्टियाँ (ग्राम-पंचायतें) कुश घास की भाँति भूमि को दृढ़ता से पकड़े स्थिर रहती हैं।"

इस ढङ्ग से प्रत्येक गाँव का शासन होता था। सामान्यतः साधारण खेत, मेंड़, चारागाह के विषय में जो झगड़े हो पड़ते थे वह यों ही पंचायत में तै हो जाते थे। यही नहीं, आपत्काल के समय में समाज में होनेवाली हलचल में तथा अनियंत्रितता के दिनों में भी वे उसकी रक्षा करती थीं। विशेषतः उस समय के झगड़े पेचीदा नहीं रहते थे। कर्मचारी नाई, धोबी, कुम्हार, पुजारी आदि को मिलनेवाले 'वलूते' वा 'फरवार' अथवा 'हक़' के सम्बंध में यदि कोई अभियोग रहता अथवा समाज की प्रचलित रीति-रिवाज के विरुद्ध आचरण करने के झगड़े होते तो उनका निर्णय ग्राम के वयोवृद्ध, ईमानदार, जिनमें अछूत जाति के भी लोग रहते थे, तै करते थे। निर्णयदाता या पंचायत के अधिकारियों का चुनाव धन या दल के बल पर वोट द्वारा नहीं किया जाता था, वरन् उनकी अवस्था, उनकी ईमानदारी और उनके अनुभव के ऊपर रहता था। चुनाव में न जाति का, न धर्म का और न दल का ख्याल किया जाता था, वरन् ईमानदारी, सचाई, अधिक अनुभव और पाप-भीरुता आदि ही उनके गुण समझे जाते थे।

दूसरे प्रकार के झगड़े लेनदेन के सम्बन्ध के थे जो पंचायत के द्वारा निर्णीत होते थे, पर अब उस प्रथा के लोप हो जाने से देहात में दारिद्र फैला है और कष्ट बढ़ गये हैं। गाँव की पंचायत अथवा गाँव के पंच गाँव के लिये महाजन और अन्न तोलने के लिये बया या बनिया कहीं न कहीं से लाकर बसाते थे। इससे ज़मींदार भी अपना हक़ लेते थे। साधारणतः महाजन लगाई हुई रक़म का ब्याज २५-३० रुपये सैकड़े सालाना और कभी-कभी अधिक भी लेते थे। पर किसानों की फ़सल अच्छी न होने पर उनका रुपया मारा भी जाता था। महाजन का रुपया न वसूल होने और अदालत न रहने से यह सब मामले पंचायत के सामने ही आते थे। न्याय करने या निर्णय देने के समय पंचायत दो बातों पर विचार करती थी, महाजन का रुपया सही है या नहीं; यदि सही है तो उसको मिलना चाहिये, क्योंकि महाजन का रुपया इस तरह हर समय मारा जायेगा तो वह अवश्य ही ग्राम छोड़कर भाग जायेगा

और इसके बाद ग्राम के लिये महाजन मिलना भी दुष्कर होगा। इसलिये पंचायत उसके रुपये वसूल कराने के लिए अपना उत्तरदायित्व समझती थी। इसके साथ ही उसका यह भी विचार रहता था कि यदि विवशता से कोई कृषक रुपया न दे सकता हो तो उसकी झोंपड़ी छीन कर उसको उजाड़ ही न दिया जाय। पंचायत दोनों ही को ग्राम में बसाये रखने का प्रयत्न करती थी। यदि रुपये का सूद बहुत दिन से न देने से बहुत बढ़गया हो तो वहाँ "दाम दुप्पट" (अधिक से अधिक असल का दूना तक) मुहलत देकर शनैः शनैः दिलाया जाता था।

फ़ौजदारी और दीवानी मुक़द्दमे गाँव के ही रहने के कारण पंचायत उनकी समस्त भीतरी बातें जानती थी। वकील, दलाल आदि की झूठी-मूठी साक्षियों आदि बाहरी बातों पर उनका निर्णय निर्भर न था। पंचायत का निर्णय साधारणतः दोनों दलों का समझौता, ईमानदारी, सारासार, विवेक-बुद्धि और सद्भाव के ऊपर निर्भर रहता था, क़ानून की तीव्र धारा पर नहीं। यही मुख्य कारण था कि पंचायत में शान्ति-वृद्धि और समाज की रक्षा करने की क्षमता थी।

जब से भारत में दीवानी तथा फ़ौजदारी अदालतें (कचहरी) स्थापित हुईं और उनका निर्णय साक्षियों के ऊपर निर्भर रहने लगा तब से बेईमानी को सहारा मिल गया है। अदालत दर अदालत मुक़द्दमे लड़ाते हुए ज़मींदार और काश्तकार चौपट हो गये।

अदालत का निर्णय सत्य होता है, यह बात योंही न मानी जायगी; क्योंकि यदि सत्य रहता तो एक अदालत का निर्णय उसके ऊपर की अदालत क्यों पलट देती है? और उससे ऊपर की अदालत उसे भी रद क्यों कर देती है? अर्थात् कोई निर्णय अटल सत्य ही होता है यह कहा नहीं जा सकता। इसका फल यह होता है कि लड़नेवाले दलों को मुक़द्दमेबाज़ी का नशा चढ़ जाता और अन्तमें अपना सर्वस्व गँवा बैठते हैं। इसका दूसरा फल यह हुआ है कि जहाँ दोनों दल खुले दिल से अपनी दलीलें पंचायत के सामने पेश कर सकते थे

वहाँ अदालतों में बिना वकील और दलाल के उनका काम नहीं चल सकता, क्योंकि क़ानून के शब्द और क़ायदे उनकी समझ में आते ही नहीं, न्याय-प्रदान-प्रथा में परिवर्त्तन होने के कारण एक न्याय प्राप्त करने में जो व्यक्त और खुला सम्बन्ध था वह अव्यक्त अथवा अदृष्ट हो गया है।

समाज की आर्थिक रचना

उस समय कृषक अपनी घर गृहस्थी की आवश्यक वस्तुएँ अपने ही खेत में उत्पन्न कर लेता था; जैसे, प्रत्येक किसान कपड़ों के लिये कपास पैदा करता था। प्रकाश के लिये रेंडी (अरंडी), सरसों और दुँआँ आदि तिलहन बोता था। प्रत्येक अपने गार्हस्थ्य जीवन के लिये गेहूँ, दाल, ईख आदि सब प्रकार की आवश्यक वस्तुएँ थोड़ी-थोड़ी उत्पन्न करता था। गाय भैंस पालकर दूध-घी प्राप्त करता था। मतलब यह कि वह कौटुम्बिक जीवन में आर्थिक स्वावलम्बी होता था। ग्राम की आर्थिक रचना भी ऐसी थी कि अपने ग्राम की आवश्यकताएँ ग्राम में ही पूर्ण हो जाती थीं, बहुत हुआ तो ८-१० ग्रामों के संघ के भीतर तो सब ही आवश्यकताएँ सुखेन पूर्ण हो जाती थीं जैसे, किसान कपास से सूत अपने घर में कतवा कर अपने ग्राम के अथवा पड़ोस के दूसरे ग्राम के कोली या जुलाहे से तिहाई सूत बुनाई का देकर कपड़ा प्रस्तुत करा लेता था। वैसे ही सरसों का एक तिहाई तेली को देकर तेल निकलवा लेता था। गाँव के वा समीपस्थ गाँव के गड़रिया को कुछ अनाज देकर उसकी भेड़ें अपने खेतों में बिठवा कर उनकी मैंगनी वा लेंडी की पुष्ट खाद प्राप्त करता था। कहीं-कहीं नमक आदि और भी आवश्यक वस्तुएँ गाँव में ही पैदा की जाती थीं। अभिप्राय यह कि प्रयत्न यह होता था कि घर का पैसा घर ही में रहे और गाँव का पैसा गाँव ही में रहे। यह बात ठीक है कि उनको भी उन दिनों भूमिकर वा चौथ अथवा लगान ऐसे ही देना पड़ता था जैसे आजकल देना पड़ता है। बस, जो कुछ रुपया गाँव से बाहर जाता था इसी

रूप में जाता था। कहा जाता है कि उस समय में २-३ वर्ष तक भी अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि होने पर कृषक के घर में अन्नादि की कमी न रहती थी, धन-धान्य की समृद्धि रहती थी, दूध-घी की वृद्धि थी। यह भी कहा जाता है कि "एक कमाय और ४ बैठे खायँ"। किसान आजकल अन्ध-श्रद्धा से कहते हैं कि उस समय धरती अधिक अन्नोत्पादन करती थी। अतएव हमें यहाँ इस बात की खोज करनी है कि ऐसे समृद्ध देहात के समाज में आर्थिक कंगाली क्यों आई? हमारे विचार से इसके कारण निम्नलिखित हैं:—

कृषकों के इस कथन में कि आजकल धरती कम उपज देती है तथ्य बहुत थोड़ा है। आजकल के समय की भाँति उन दिनों में भी अनावृष्टि और अतिवृष्टि होती थी और किसान पर विपत्ति आती थी। उन दिनों में सम्भव है कुछ अधिक उपज होती हो; क्योंकि उस काल में भेड़-बकरी और गाय-भैंस आदि पशु अधिक संख्या में रहने से धरती को पर्याप्त खाद मिलती थी। दूसरे, जङ्गल अधिक रहने से धरती में तरी अधिक रहती थी और वर्षा ठीक होती थी। किन्तु आजकल अधिक भूमि में खेती होने से अनाज की उपज बहुत बढ़ गई है। इसके साथ-साथ यह बात भी सही है कि जन-संख्या भी बढ़ गई है। आर्थिक हीनता का मुख्य कारण देहातियों की आर्थिक स्वायत्तता का लोप होना है।

मान लीजिये कि एक ग्राम की भूमि में ५०० मनुष्यों को खिलाने-पिलाने की वस्तुएँ देने की क्षमता है। ग्राम में सब ६० घर हैं और प्रत्येक घर में कम से कम २०) वार्षिक के कपड़े बाहर से ख़रीदे जाने से १२००) का कपड़ा आता है; मिट्टी का तेल, लालटैन आदि कम से कम ५) वार्षिक के आने से ३००) वार्षिक इस निमित्त से भी बाहर चले जाते हैं। शौक़ की नई-नई चीजें, जो नित्य गाँव में आती रहती हैं, अलग रहीं। मोटी रीति से १५००) साल उस ग्राम से बाहर चले जाते हैं। पर, पहले समय में केवल "चौथ" या "लगान" का ही रुपया बाहर जाता था और अब एक छोटे से गाँव से ही १५००) के

लगभग या इतने मूल्य का अनाज तो अवश्य ही बाहर चला जाता है, जो पहले उस ग्रामवासियों को ही खाने के लिए मिलता था। यह बाहर जानेवाला रुपया फिर गाँव में वापस नहीं आता। इसी कारण से कङ्गाली प्रति वर्ष बढ़ती जाती है। पहले गाँव का रुपया या वस्तु गाँव में ही रहती थी। परस्पर कार्य करा लेने के लिए जो पारिश्रमक दिया जाता वह भी ग्राम में ही रहता था। अर्थ-शास्त्र की परिभाषा में इस परिवर्त्तन को ग्रामीण आर्थिक-रचना का नष्ट होना और उसके स्थान पर राष्ट्रीय वा अन्तर्राष्ट्रीय-रचना का आना कहते हैं। ऐसी परिवर्त्तित स्थिति में कृषक निम्नलिखित प्रकार से हानि उठाते हैं:—

(१) मान लो एक गज़ कपड़ा ख़रीदने के लिए कृषक को चार आने देने पड़ते हैं अर्थात् ऽ२॥ सेर गेहूँ देने पड़ते हैं। हिसाब तो यह बैठता है कि उस एक गज कपड़े में दो पैसे की रुई और अधिक हुई तो दो पैसे ही की मजूरी लगी रहती है अर्थात् एक आने की वस्तु चार आने में मिलती है अथवा यों कहिए कि कृषक ऽ२॥ गेहूँ पैदा करने में जितना परिश्रम करता है उसके बदले में एक चतुर्थांश दूसरे का परिश्रम पाता है। आर्थिक न्याय से यदि कपड़ा ‒) एक आने का हो तो उसके बदले में ऽ॥= अढ़ाई पाव गेहूँ मिलने चाहिये। इसी आर्थिक असमानता के कारण कृषक इतनी अधिक हानि उठाते हैं।

(२) पहले समय में सब व्यवहार बदले में चलते थे; जैसे, गेहूँ देकर और वस्तु लेना। लगान देने में भी यही रीति बरती जाती थी अर्थात् जिंस ली जाती थी। पर अब जिंस न लेकर उसके बदले में रुपये-पैसे के सिक्के का व्यवहार है। इससे भी किसान हानि ही उठाता है; क्योंकि वह न तो सुसङ्गठित है और न उसमें समझ है। लगान तथा महाजन का ऋण चुकाने और गृहस्थ का काम चलाने के लिये वह चैत में फ़सल तैयार होने के बाद तुरन्त ही गेहूँ १२ सेर की दर से सस्ते दाम में बेचता और फिर उसी को सावन में ९ सेर की दर से खाने के लिये मोल लेता है। अनाज का रुपया करना और रुपया का फिर अनाज ख़रीदना इसमें किसान की बड़ी भारी क्षति होती है।

(३) जहाँ कृषक पहले ८-१० मील पैदल ही अथवा घर की बैलगाड़ी में बैठकर जाता आता था और किराये का पैसा वा अनाज अपने बाल-बच्चों के लिये बचाता था, वहाँ अब नये-नये आविष्कार मोटर लारी में बैठकर और अधिक पैसे व्यर्थ खर्च करके आता-जाता है। पहले जहाँ घर की स्त्रियाँ घर में ही अनाज पीस कर पैसे बचाती थीं, वहाँ अब आटा पीसने की कलों पर पिसाई के पैसे दे पैसा व्यर्थ व्यय करता है।

हमने ऊपर किसानों की आर्थिक अवनति के जो कारण दिये हैं इनसे हतोत्साहित होने की आवश्यकता नहीं है। जिन कारणों से देहात का समाज हीन दशा को पहुँचा है वह कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। काल की गति को कोई रोक नहीं सकता। ग्रामीण आर्थिक रचना हटकर उसके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय रचना आ रही है और दिन पर दिन अधिक आयेगी। किसानों की हानि बचाने का एक ही उपाय है कि उनको शिक्षा देकर परिवर्त्तित स्थिति में अपना जीवन सुचारु रूप से चलाना सिखाया जाय। बदली हुई आर्थिक स्थिति में यदि गाँव के किसान अपना अनाज सहयोगपूर्वक इकट्ठा करके बेचें और यदि सहकारी सिद्धान्त के अनुसार छोटे-छोटे उद्यम गाँव में सहयोग से ज़ारी करें, तो उनकी आर्थिक कठिनाई दूर हो सकेगी तब उनकी आर्थिक दशा इस परिवर्त्तित स्थिति में भी अच्छी हो सकेगी।

हमारी प्रौढ़-पाठशालाओं का मुख्य उद्देश्य यही है कि किसान शिक्षा प्राप्त करके अपनी बिगड़ी हुई आर्थिक दशा सुधार लें। राष्ट्र के नेताओं के ऊपर भी बड़ा उत्तरदायित्व है कि तुरन्त प्रौढ़-शिक्षा प्रचलित करके इन्हें आर्थिक हानि से बचावें। हमने ऊपर लिखा ही है कि प्राचीन काल में अधिकतर यही प्रथा थी कि अनाज देकर वस्तु बदल लेना और जहाँ रुपयों और सिक्कों का प्रयोग किया जाता था वहाँ भी उपज का भाव समीपवर्ती गाँव के उपज पर ही निर्भर रहता था। पर आज वह स्थिति बदल रही है। चाहे अनाज किसी गाँव या प्रान्त में

पैदा हो या न हो, खेती की उपज गेहूँ और कपास की तेज़ी-मन्दी तथा अमेरिका, इङ्गलैंड और आस्ट्रेलिया आदि के व्यवसाय के ऊपर ही निर्भर रहती है; क्योंकि वहाँ से माल जहाज़ों के द्वारा यहाँ आ सकता है। हमारा अनुभव है कि हमने ज़िला फ़ैजावाद के मसौधा हलक़े में सन् १६३२ से १९३५ तक ग्राम-सुधार करके नये औज़ार और पानी की सुविधा करके यद्यपि काश्तकारों के ईख की उपज दूनी की तथापि दुर्दैव कि फिर भी किसानों की आमदनी नहीं बढ़ा सके, क्योंकि ईख का भाव गिर गया। अतः उसे सस्ते भाव में बेचना पड़ा। केवल खेती का सुधार करके किसानों का आर्थिक सुधार कर सकना यह प्रश्न बड़ा ही पेचीदा है।

अब तो ज़मीन, हवा, पानी का ख्याल करके एक ही बेर का अनाज पैदा करने के दिन आगये हैं; जैसे गुजरात और बरार में कपास, आसाम में चाय और धान, पंजाब और युक्त-प्रान्त में गेहूँ और गन्ना। ऐसा ही सब्ज़ी और तरकारी का भी हाल है। रेलवे पार्सल-ट्रेन के साधन से १०००-५०० मील तक भी ताज़ी सब्ज़ी पहुँचाई जा सकती है।

अतएव कृषक को अपनी आमदनी बढ़ाने के लिये पूर्ण चतुर और साक्षर बनना चाहिये। यह बात प्रौढ़-शिक्षा से ही प्राप्त हो सकेगी। किसान को अपनी आर्थिक उन्नति के लिये जमाने के साथ ही चलना चाहिये।

पाँचवाँ अध्याय

सामाजिक परिवर्त्तन—(उत्तरार्द्ध)

[ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ से]

गत अध्याय में हम भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के पूर्व जो सामाजिक तथा आर्थिक समाज-रचना थी उसका विवेचन कर चुके हैं। उसके साथ ही साथ, उक्त समाज-रचना में जो परिवर्त्तन हो रहे हैं, उनका जो दुष्परिणाम भोगकर देहाती समाज को हानि उठानी पड़ रही है, यह भी लिख चुके हैं। इस अध्याय में ब्रिटिश शासन तथा पश्चिमीय संस्कृति से सम्बन्ध होने के कारण समाज-रचना में जो और परिवर्त्तन हो रहे हैं उनके सम्बन्ध में विवेचन करने की चेष्टा की गई है।

सामाजिक रचना

समाज की बदली हुई आर्थिक परिस्थिति में बड़े-बड़े शहरों और नगरों में बड़े-बड़े कल-कारखाने खुल गये हैं। सुशिक्षित धनी लोगों की उपजीविका के साधन वहाँ पर्याप्त हैं। अच्छे मकान, अच्छी सड़कें आदि रहने की सुविधाएँ तथा सिनेमाघर, नाटक, और शिक्षा संस्थाएँ आदि जीवन को सुख देनेवाले उपकरण वहाँ उपलब्ध हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि उपजीविकार्थ वा शिक्षणार्थ अथवा संसार की उपभोग-वस्तुओं का सुख पाने के लिये देहात के प्रतिष्ठित, सुशिक्षित और चतुर व्यक्ति शहरों में जाकर बस गये हैं। ग्रामों में अन्धे, लूले, लँगड़े, अपढ़, अर्थात् समयोचित उन्नति की ओर अग्रसर न हो सकनेवाले मात्र रह गये हैं। देहात का सुन्दर दृश्य अब तो काल्पनिक ही रह गया है। इसका मुख्य कारण यही है कि देहाती समाज में सुयोग्य नेता न रहने से गन्दगी, गाली-गलौज और बेहूदापन वृद्धि पर है। हमने एक स्थान पर लिखा है कि जो कुछ

अर्द्ध शिक्षित सफ़ेद-पोश व्यक्ति देहात में रहते हैं वे भी उन्हें हर प्रकार से लूटते और लुटवाते हैं, क्योंकि उनमें कोई वकील का दलाल है, तो कोई पुलिस का मुख़बर। कोई पटवारी है तो कोई किसी अन्य पार्टी का पक्षपाती। ये सब एक न एक नई अशान्ति ग्राम में पैदा करनेवाले हैं।

पहले समय में गाँव के जमींदार तथा महाजन नाम पैदा करने के लिये अथवा अपने पूर्वजों के स्मरणार्थ देहातियों के उपयोगी तथा उपयुक्त कार्य कर जाते थे। जैसे; सिंचाई के लिए वा लोगों के पानी पीने के लिए कुएँ बनवाना अथवा ताल खुदवाना, आम के बाग़ लगाना, प्याऊ लगाना वा मन्दिर बनवाना इत्यादि। आजकल के संसार में भी कुछ दान-धर्म करने की बुद्धि कहीं-कहीं महाजनों और बड़े आदमियों में पाई जाती है। इस धार्मिक दान से छोटी-छोटी धर्मशाला, फुलवाड़ियाँ बनती हैं। कहीं-कहीं टैनिस खेलने के लिए फ़ील्ड वा क्रीडाङ्गण बनते हैं। पर ये सब शहर में बनाने से अपना गौरव और नाम समझते हैं। इससे शहर निवासियों को ही लाभ पहुँचता है, बेचारे ग्रामीण कोई लाभ नहीं उठा पाते। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रामीणों को मानों "ख़ुदा के यहाँ से जवाब ही मिल गया है।"

यदि हम स्थायी रूप से ग्रामोत्थान करना चाहते हैं, तो गाँव के नवयुवकों को सुशिक्षित बनाकर उनमें से ही किसी उन्नत भावापन्न को उनका नेता बनाना पड़ेगा। यही किसी गाँव की स्थायी उन्नति का मार्ग है। इसी विचार से हमने अपनी प्रौढ़-शिक्षा-प्रणाली में गाँव के प्रभावशाली वंश के नवयुवक को ही अध्यापक बनाने पर बल दिया है।

हमने ऊपर लिखा ही है कि गाँव के शासन का पूरा उत्तरदायित्व पञ्चों पर रहता था, चाहे चरागाह, जङ्गल या पानी के बहाव के विषय में झगड़े बने रहें। हम यह भी कह चुके हैं कि गाँव की

पाठशालाएँ पञ्चों के संरक्षण में रहती थीं और अध्यापकों के आचरण तथा पाठशाला की उन्नति पर भी उनका पूरा-पूरा अधिकार था। गाँव के उत्सव भी पञ्चों की सम्मति से होते थे। यह सब बातें गाँव के कृषकों की समझ में सुगमता से आजाती थीं। अब इस शासन-पद्धति के विपरीत एक सूत्री कार्य-शासन विधान प्रचलित है। अब जङ्गल, चरागाह और पानी के बहाव सम्बन्धी क़ायदे असेम्बली या कौंसिल से पास किये जाते हैं। शासन चलाने के लिये एक के ऊपर एक, अनेक पदाधिकारी नियुक्त किये गये हैं। जहाँ दोनों पक्ष विना मुख्तार और वकील के खुले दिल से अपनी दलीलें पञ्चों के सामने उपस्थित करते थे, वहाँ अब न्यायालयों के अनेक विधान हैं और उनके ऊपर अपील दर अपील कोर्ट भी हैं। क़ानून न जानने से बिना वकील के अदालत में वे अपने बयान भी नहीं दे सकते। पञ्चायती पाठशाला गाँववाले चलाते थे। पर अब उसके चलाने, स्थापित करने, तोड़ने का अधिकार अव्यक्त डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड के अधिकारी डिप्टी इन्स्पेक्टर को है। शासन को सुविधा से चलाने के लिये नये-नये सरकारी-विभाग जारी किये गये हैं। उनमें बहुत से ऐसे भी हैं जो ग्राम-वासियों की उन्नति के लिए हैं, परन्तु बेचारे किसान इन विभागों की न रूप-रेखा समझते हैं और न इनका मन्तव्य समझते हैं। सामान्य कृषकों की मति तो इन बातों के समझने में चक्कर में पड़ जाती होगी, इस बात को पाठक स्वयं विचार सकते हैं।

जनता की सेवार्थ जो सरकारी कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं उनके भ्रमण की ओर ध्यान दीजिये। एक दिन एक कर्मचारी स्कूल का निरीक्षण करने आता है, दूसरे दिन दूसरा कर्मचारी बालकों को चेचक का टीका लगाने आता है। तीसरे दिन तीसरा खेती के अच्छे बीज और ओजार जारी करने के विचार से आता है। चौथे दिन चौथा पशुओं की छूत की बीमारी के विषय में समझाने आता है और पाँचवें दिन पाँचवाँ घूरे-कूड़ा-करकट-मोरी-पाख़ाने देखने को पहुँचता है। फिर कोई हैजे का टीका लगाने जाता है, तो कोई सहकारी बैंक के हिसाब

जाँच करने आता है। ग्रामीण जनता की सेवा के लिये जितने अधिक विभाग बढ़ेंगे उनके उतने ही अधिक कर्मचारी भी बढ़ेंगे। इन सब कर्मचारियों का आना-जाना देखकर बेचारे कृषक की अक्ल गुम हो जाती है। न तो बेचारा उनके काम की धारणा अपने मस्तिष्क में कर सकता है और न यही जान पाता है कि वे कहाँ से आये, और क्यों आये, और कब गये? फिर इन कर्मचारियों के सम्बन्ध में यह भी देखिये कि कुछ दिन तक आवागमन के समय सम्बन्ध रखने के कारण, स्वाभाविक स्नेह का जो भाव बढ़ता है और जिसके फल स्वरूप मनुष्यता प्राप्त होती है, वह भी बार-बार नये-नये कर्मचारियों के परिवर्त्तित होने से लुप्त होजाती है।

वही बात कल-कारखानों में भी हो रही है। वंश परम्परा से चलनेवाले धन्धे जहाँ अनुकरण ही से सीखे जाते थे, वहाँ उन घरेलू धन्धों के स्थान पर बड़े-बड़े पैमानों पर कारखाने चलते हैं, जिनके लिये उच्च शास्त्रों की शिक्षा आवश्यक है। जहाँ मजदूर खुली वायु में काम करता था, वहाँ अब उसे कारखानों की चारदीवारी के भीतर बन्द दूषित वातावरण में काम करना पड़ता है। जहाँ उसके दैनिक काम में विविधता थी, जिससे उसका चित्त अकुलाता न था, वहाँ कल-कारखानों में उसे लगातार एक ही काम करना पड़ता है; जैसे, प्रातःकाल से सायंकाल तक मशीनों में केवल तेल ही देते रहना, कपास ही डालते रहना, अथवा ऐसा ही और कोई एक ही काम दिन भर करते रहना। इसके साथ ही दूसरी बुराई यह कि उसको मशीन के साथ ही काम करना पड़ता है। इस क्रिया में न उसको साँस लेने का अवकाश मिलता है, न मानसिक स्फूर्ति मिलती है। इस ढंग से अपर्याप्त वायु में रूक्षतापूर्वक लगातार ८-६ घंटे काम करने से उसके मन और शरीर में विचित्र थकावट आजाती है। वह कल-घर से छूटने के पश्चात् मनोरञ्जन की चिन्ता में रहता है। कभी-कभी अपनी थकावट मदिरा-पान से अथवा सिनेमा में जाकर दूर करना चाहता है, फलतः इनका व्यसनी हो जाता है। अपने

अवकाश के समय को कभी सात्त्विक आनन्द में, जैसे; गाना-बजाना या वार्तालाप करना आदि में व्यतीत करने की उसकी प्रवृत्ति होती ही नहीं; क्योंकि उसके ८-९ घंटे के कार्य में मधुरता न रहने के कारण उसे आनन्द नहीं आता, जैसा कि साधारण कृषक या घरेलू काम-धन्धा करनेवाले पाते हैं। कृषक और साधारण काम करनेवाले थोड़ी देर काम करके चिलम या पानी पीने के साथ-साथ कुछ विश्राम भी ले लेते हैं और ७-८ घंटे के भीतर भी थोड़ा-बहुत विविधता का आनन्द लूटते हैं। अतः उनके मन और मुख पर उतनी थकावट नहीं झलकती है जितनी कि कल-कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूरों के मुख पर लक्षित होती है। कल-कारख़ानों का युग आने के कारण और भी समस्याएँ उपस्थित हो गई हैं। अतः उनके सुलझाने के लिये पूँजीवादियों और श्रम जीवियों के अलग-अलग संघ स्थापित हुए हैं। हर समय इनमें वैमनस्य बना रहता है। तिस पर भी कारख़ानेदार और मज़दूरों के सम्बन्ध भी वैयक्तिक न रहने से, उनमें मनुष्यता का भी अभाव रहता है। कल-कारख़ाने जारी होने से देहात में जो घरेलू धन्धे होते थे, वे भी प्रायः नष्ट हो चुके हैं। इस सम्बन्ध में हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं।

रेलवे, मोटरें आदि शीघ्र से शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचने के साधन होने से बहुत सी सामाजिक समस्याएँ उपस्थित हो रही हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की सुविधा रहने से मज़दूर लोग बम्बई, कलकत्ता और भारत के बाहर भी अनेक द्वीपों में जाते हैं। वहाँ स्वतन्त्र रहने के कारण उनके ऊपर जो सामाजिक नियन्त्रण था, वह भी जाता रहा है। वे प्रत्येक बात में स्वेच्छाचारी बन गये और मनमानी करने लगे हैं। इसके अतिरिक्त इन सुविधाओं के द्वारा डाका पड़ना और नारी-हरण बड़ी सुलभता से हो रहा है; क्योंकि ऐसे अपराधी व्यक्ति शीघ्र ही बहुत दूर पहुँचकर निर्द्वन्द्व हो जा सकते हैं।

पाश्चात्य सभ्यता का पौरात्य सभ्यता से सम्बन्ध स्थापित होने के कारण आज प्रत्येक समाज और घर-घर में हलचल मच गई है। एक भी घर और एक भी जाति आज हिन्दुस्थान में ऐसी मिलनी दुस्तर है कि जिसके सब कुटुम्बियों के आचार-विचार एक से हों। पाश्चात्य और पौरात्य संस्कृति का मिलाप होने से सम्भव है थोड़े दिन में एक नई संस्कृति उत्पन्न हो, पर आज सनातनधर्मी और प्रतिगामी दोनों दल प्रत्येक जाति और हर एक घर में मिलते हैं। इस सत्य मत-भेद का परिणाम चाहे भविष्य में अच्छा ही हो, पर आज घर-घर में अशान्ति फैली हुई है।

अन्त में म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा प्रान्तीय स्वायत्त-शासन-पद्धति के आने के कारण देहाती और शहरी जनता में एक हलचल मच रही है। समाज में अपने-अपने हक़ वा (स्वत्व) के लिये नये-नये झगड़े हो रहे हैं। कभी-कभी यह झगड़े साम्प्रदायिक, जातीय या धार्मिक पक्ष लेने से भीषण रूप धारण कर लेते हैं। स्वायत्त-शासन में मतदान (वोट देना) प्रधान बात है। जब तक मतदाता सुशिक्षित तथा साक्षर नहीं हो जाते तब तक स्वायत्तता का शुभ फल भारतवर्ष को मिलना असम्भव ही है।

इस स्थल पर शिक्षा और वोट (मतदान) इन दोनों का कैसा मेल रहता है यह इङ्गलैण्ड के इतिहास से दिखाना अनुचित न होगा। सन् १८३२ में ब्रिटेन का पहला 'शासन-सुधार बिल' पास हुआ, उसके एक वर्ष के भीतर सन् १८३३ में ब्रिटिश कोष से बड़ी भारी रक़म शिक्षा-विस्तार के लिये दी गई। १८६९ में दूसरा 'शासन-सुधार बिल' पास हुआ और इसके दूसरे साल सन् १८७० में 'अनिवार्य शिक्षा बिल' पास हुआ। १९१९ में तीसरा 'सुधार-बिल' पास हुआ। इससे ६ महीने पहले १९१८ में फ़िशर साहब का 'शिक्षासुधार-बिल' पास हुआ, जिससे बहुत बड़ी रक़म कोष से शिक्षा-प्रचार को मिली। इससे सिद्ध होता है कि जितना ही बहु-संख्यक मताधिकार मिलता है उतना ही अधिक शिक्षा-प्रचार करने में व्यय किया जाता है।

मतदान-विस्तार और शिक्षा-प्रसार

मतदाताओं की संख्या-वृद्धि और शिक्षा-प्रसार की वृद्धि इन दोनों वृद्धियों में इतना मेल क्यों रहता है ? इसकी कुञ्जी हमें सन् १८७० में मिलती है। जबकि ब्रिटिश पार्लमेंट में 'अनिवार्य शिक्षा-बिल' पास हो रहा था उसके मेम्बरों के मुख से इसी बात की अधिक घोषणा होती थी कि "We have to educate our masters" अर्थात् हमको अपने मतदाता मालिकों को सुशिक्षित करना है। इस राष्ट्र के मतदाता अज्ञान और अन्ध-श्रद्धा में पड़े हैं, जिसमें देशकाल में होने वाले परिवर्तन के अनुरूप अपनी धारणा बना लेने की क्षमता नहीं। ऐसे मतदाता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव ठिकाने का न कर पायेंगे। वे हर समय पदाधिकार के लोलुप सत्ताभिलाषियों के चंगुल में फँसेंगे। समाज की सच्ची सेवा करनेवाला कौन प्रतिनिधि है, इसके पहचानने की योग्यता मतदाताओं में आनी चाहिये।

इङ्गलैण्ड के इतिहास तथा समस्त प्रतिगामी देशों के इतिहास से यही प्रकट होगा। हिन्दुस्थान में भी "मिण्टो-मौण्टेग्यू-चेम्सफ़र्ड-शासन-विधान" जारी होने के पश्चात् भारतवर्ष के सब सूबों की कौंसिलों में शिक्षा-बिल उपस्थित किये गये। अतः प्राथमिक शिक्षा के लिए अधिक धन मिलने लगा। कहीं-कहीं डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को अनिवार्य शिक्षा प्रचलित करने की आज्ञा दी गई और नया शिक्षा-कर भी देहात में लगाने की आज्ञा दी गई। सन् १९३५ से दूसरा भारत-शासन-विधान प्रचलित हुआ और इसके द्वारा सन् १९३८ में प्रत्येक प्रान्त में भारत राष्ट्रीय मन्त्री मण्डल बन गये। उन्होंने भी शिक्षा-विषयक नये-नये शिक्षा-बिल असेम्बली के सामने उपस्थित किये। मुख्यकर प्रौढ़-पाठशाला के लिये बम्बई प्रान्तीय सरकार ने डाक्टर क्लीफ़र्ड-मेनशार्ट साहब की अध्यक्षता में प्रौढ़-शिक्षा कमेटी नियुक्त की। बिहार प्रान्त के शिक्षा-मन्त्री डाक्टर सैयद महमूद साहब ने भी अपने प्रान्त में साक्षरता-प्रसार के लिये आन्दोलन किया। संयुक्त प्रान्त की सरकार

ने सालाना १० लाख रुपया प्रौढ़-शिक्षा के लिये देना स्वीकार किया और इसके लिये एक शिक्षा-प्रसार-विभाग भी नियत कर दिया।

हमने गत दो अध्यायों में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्त्तन भारतीय समाज में कैसे हो रहा है इसका परिचय संक्षेप में दिया है। यह भी दिखलाने का प्रयत्न किया है कि हमारा समाज प्रतिगामी हो रहा है। नये आविष्कार तथा पाश्चात्य संस्कृति से सम्बन्ध होने के कारण हलचल मच रही है। ऐसे परिवर्त्तित समय में यदि सामाजिक और आर्थिक पुनारचना सुचारु रूप से करनी हो तो हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली उसी प्रकार की बनानी पड़ेगी, जिससे बहु-संख्यक जन या कृषकगण परिवर्त्तित स्थिति में नेताओं का साथ दें। यदि हमें संसार के साथ जाना है और तुरन्त अपने राष्ट्र की और समाज की पुनः स्थापना करना है तो जैसे रॉयल ऐग्रीकलचर कमीशन की रिपोर्ट में हमारे माननीय वायसराय श्रीमान् लार्ड लिनलिथगो साहब ने जो प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में अपना अभिप्राय प्रकट किया है वही हमें स्वीकार करना पड़ेगा। श्रीमान् ने कहा है कि "सार्वांगिक उन्नत होने के लिये हमें एक दो पीढ़ी तक निश्चित रूप से सतत प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार करना पड़ेगा।"

गत पृष्ठों में देहाती समाज में जो परिवर्त्तन हो चुके हैं और हो रहे हैं इसका विवेचन करने के पश्चात् हम अपने पाठकों तथा राष्ट्रीय नेताओं के सम्मुख देहात के शैक्षणिक सम्बन्ध में अपने कुछ विचार उपस्थित करना चाहते हैं।

देहातियों का अज्ञान दूर करने के लिये तथा साक्षरता-प्रसार के लिये जो प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली जारी है वह तो निर्विवाद देहात के पुनरुत्थान के लिये उपयोगी न होगी। इसके कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) यह शिक्षा-प्रणाली अधिकतर अँगरेज़ी स्कूल का अभ्यास क्रम सँभालने के लिये तथा नौकरी ही जिनका ध्येय है, उनके लिये है। यह कृषकों को सुचारु कृषक और नागरिक बनाने के लिये नहीं है।

(२) इस शिक्षा-प्रणाली के पाठ्य-क्रम में ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जिससे ४-५ वर्ष की अवधि में प्राप्त की हुई साक्षरता स्थिर रहे। यह देखा गया है कि प्राइमरी स्कूल से उत्तीर्ण छात्र केवल ५ साल के भीतर फिर से निरक्षर बन जाते हैं और उनमें केवल हस्ताक्षर करने की ही क्षमता रह जाती है।

(३) प्राथमिक शिक्षा पर जो व्यय किया जाता है और उससे जैसा शिक्षा-प्रसार होता है, यह दृश्य देखकर भी प्राथमिक शिक्षा पर बिना सोचे विचारे अधिक व्यय करना अव्यावहारिक होगा। इस शिक्षा-प्रणाली में राष्ट्र की शक्ति और धन व्यर्थ नष्ट हो रहा है। साधारणतः पहली कक्षा में १०० विद्यार्थी पढ़ते होंगे तो दूसरी कक्षा में केवल ५०, तीसरी कक्षा में ३०, और चौथी कक्षा में १५ रह जायँगे, अर्थात् प्रथम श्रेणी से चौथी श्रेणी तक १५ छात्र ही पढ़ते हैं। विशेषतः देहात में १५ प्रतिशत लड़के जो चतुर्थ कक्षा में उत्तीर्ण होते हैं उनमें से अधिकतर मिडिल या अँगरेजी स्कूलों में चले जाते हैं और थोड़े से पटवारी बन जाते अथवा अन्य नौकरियों में लग जाते हैं। एक-दो जो देहात में रह जाता है वह ५ वर्ष में ही निरक्षर बन जाता है। यही आजतक के हमारे देहाती स्कूलों पर धन और शक्ति व्यय करने का फल मिल रहा है।

यदि यह बात मानली गई कि देहाती प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली पुनारचना करके किसानों के उपयोगी बनाई गई तो भी हमारे देहाती समाज के तुरन्त लाभ की न होगी। इसके भी कारण निम्नलिखित हैं:—

(अ) प्राथमिक शिक्षा सब देहातियों के लिये अनिवार्य करने की कल्पना आर्थिक समस्या के कारण व्यर्थ है।

(इ) यदि अनिवार्य शिक्षा देहात में जारी की गई तो भी छात्रों की आयुमर्यादा ११-१२ वर्ष तक ही रह सकती है। इस कोमल अवस्था में न छात्रों को हम समाज-शास्त्र पढ़ा सकते हैं, न नागरिकत्व

समझा सकते हैं कि जिनकी शिक्षा के भरोसे पर देहात के पुनरुत्थान की आशा की जा सकती है।

(उ) और, यदि यह भी बात मान ली गई कि आर्थिक असाध्य समस्या साध्य भी हो गई और देहात में अनिवार्य शिक्षा भी प्रचलित हो गई तो भी इस शिक्षा के मधुर फल चखने के लिये राष्ट्र को १० वर्ष पश्चात् मिलेंगे। इस अवधि में कौन कह सकता है कि भविष्य के गर्भ में क्या लिखा है?

व्यावहारिक दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति देखकर यही कहना पड़ेगा कि भारतीय सयाने कृषक-दल में जो अव्यक्त 'कर्त्तुं अकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं' ऐसी विराट शक्ति है उसको तुरन्त सुचारु शिक्षा देकर जागरूक करना है। यदि उपमा देकर कहना चाहें तो यह दृश्य देख पड़ता है कि संसार के प्रगतिशाली राष्ट्र रेलगाड़ियों, वायुयानों की तीव्रगति से आगे बढ़ रहे हैं, और हमारे भारतवर्ष की प्रगति बैलगाड़ी की गति-सी हो रही है। यदि हमें संसार के जीवन-कलह में रहना है तो हमें भी संसार के साथ जाना होगा। शिक्षा-प्रदान से हमें तुरन्त लाभ उठाना है और वह हमें केवल प्रौढ़-शिक्षा से ही मिलेगा।

हमने एक स्थल पर कहा है कि ४-५ वर्ष के पूर्व सुशिक्षित वर्ग देहातियों के प्रति अनुदारता तथा निरुत्साह प्रगट करता था और हम यह भी अपने विचार प्रगट करने में हिचके नहीं कि कृषकों के प्रति हार्दिक प्रेम की जो नई झलक दिखाती है उसमें कहाँ तक सत्यता होगी? किन्तु हम यह बात मानने के लिये तैयार हैं कि राष्ट्रीय नेता तथा सुशिक्षित वर्ग देहातियों के प्रति अपने कर्तव्य के सम्बन्ध में जाग्रत हो रहे हैं।

आज हमारे सरकारी कर्मचारी जो देहात में कार्य करते हैं उनसे भी यही शिकायतें सुनने में आती हैं कि देहाती काहिल हैं, देहाती मूर्ख हैं, अपना हित समझते नहीं और न अपना मतलब समझने का

ही प्रयत्न करते हैं। हमारी कार्य में लगाई हुई शक्ति वैसे ही नष्ट हो रही है। ऐसी बातें नित्य हमारे सुनने में आती हैं। हमारी उनसे यही विनम्र प्रार्थना है कि यदि देहाती किसान मूर्ख न होते, अपना हिसाब-किताब ठिकाने से लगा सकते तो हम लोगों की आवश्यकता ही नहीं रहती। देहातियों का उद्धार करना, उनके मस्तिष्क पर प्रकाश डालना बहुत ही दुष्कर है। किन्तु कठिनतम कर्तव्य कार्य उठाकर उसमें सफलता प्राप्त करना यही पुरुषार्थ है। हमें कई वर्ष तक उनके मस्तिष्क पर बार-बार प्रकाश डालना होगा। शक्ति कभी नष्ट होती नहीं, यह शास्त्र का सिद्धान्त है। पिछड़े हुये किसान भी एक दिन अवश्य जाग्रत हो कर्म-पथ पर डट जायँगे।

राष्ट्रीय नेताओं से भी हमारी यही प्रार्थना है कि देहातियों में ऐसी प्रौढ़-शिक्षा-प्रणाली प्रचलित करें कि जिससे कृषकों की विवेक-बुद्धि का विकाश हो, वे प्रगति पर रहें और संघटन करके अपने गाँव का शासन तथा अपनी समस्त समस्याएँ हल करने के कार्यक्षम हों। प्रान्तीय कोष से प्रौढ़-शिक्षा के लिये अधिक से अधिक रुपया निकालें। अन्त में यह भी हम सूचित करना चाहते हैं कि यदि संयुक्त प्रान्त की सरकार अपने प्रान्त के बहुजन कृपकों के हितार्थ, जिस हेतु के लिये हम प्रौढ़-शिक्षा का प्रतिपादन करते हैं, उस हेतु के सिद्धार्थ बद्ध-कटि होकर दो करोड़ रुपये का ऋण निकाल कर कार्य शीघ्रता से प्रचलित करदे तो भी उससे हानि न होगी; क्योंकि यदि कृपकगण प्रगति पर होकर अपने गाँव का शासन तथा आर्थिक समस्याएँ पूर्ण करने के योग्य होंगे तो निकाले हुये ऋण का बदला शीघ्र ही मिल गया, ऐसा समझने में कुछ आपत्ति नहीं है।

छठवाँ अध्याय

प्रौढ़-शिक्षा का इतिहास

जब तक गाँव के नवयुवकों को तथा उनके नेताओं को साक्षर और बहुश्रुत बनाने के लिये प्रौढ़-पाठशालाएँ न स्थापित की जायँगी तब तक ग्राम-सुधार का कार्य अधूरा ही रहेगा। यदि हम स्थायी रूप से ग्राम-सुधार करना चाहते हैं, तो हमें देहात में प्रौढ़-पाठशालाएँ चलाकर नवयुवकों में सुधार के प्रति आन्तरिक प्रेरणा और उमंग उत्पन्न करने का यत्न करना पड़ेगा। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है।

प्रौढ़-पाठशाला के द्वारा ग्राम-सुधार उसी समय सफल और स्थायी होगा जब कि गाँव का स्थायी निवासी उसका नेता और अध्यापक बनेगा; क्योंकि बाहरी कर्मचारी उसी समय तक काम करेंगे जब तक कि वे वेतन पाते हैं। वेतन के अतिरिक्त मनुष्य मात्र में और एक प्रेरणा हर समय काम करती है, वह है लोक-प्रियता और समाज में गौरव प्राप्त करना। यदि हम हर एक ग्राम में प्रभावशाली नेतृत्व रखनेवाला नवयुवक पावें और उसमें समाज-सेवा की भावना पैदा करें तो हमारी ग्राम-सुधार की गंगा हर समय बहती रहेगी।

आज कल देहात में गन्दगी, मनहूसी और नैतिक बुराइयों का बोलबाला है। आज से १०० वर्ष पूर्व गाँवों की दशा इतनी गिरी हुई नहीं थी, इस अधोगति के अनेक कारण हैं। प्राचीन काल में प्रौढ़-शिक्षा का कार्य चलाने के लिये विविध प्रकार की संस्थायें प्रचलित थीं। इन संस्थाओं का काम धर्म-प्रचारक पुरोहित और मुल्ला करते थे; क्योंकि ग्राम-वासियों का जीवन धार्मिकसूत्र में आबद्ध था और उनके आचरण, रीति-रिवाज धर्म के आधार पर

टिके हुए थे। यही कारण है कि जनता पर उस समय मुल्लों और पुरोहितों के उपदेशों का अचूक प्रभाव पड़ता था। उन दिनों ग्राम के पुरोहित का पुत्र गाँव से १०-१५ मील के अन्तर पर अथवा काशी, प्रयाग जाकर, संस्कृत पाठशालाओं में, कर्मकाण्ड का अभ्यास करता था। इतना ही नहीं, वहाँ पर आयुर्वेदिक ज्ञान में भी दक्ष हो जाता था। पुरोहित का पद प्राप्त करने पर वह ग्रामीणों तथा उनके बाल-बच्चों को जड़ी-बूटियों से बनी हुई औषधियाँ बाँटता था। एकादशी, पूर्णमासी और पर्व-विशेष के शुभ्रवसर पर वह प्रवचन, कीर्त्तन, पुराण-वाचन और रामायण की कथा कहकर सामाजिक नीति का उपदेश करता था, जिससे जनता की अध्यात्मिक उन्नति के साथ ही साथ समाज की नैतिक उन्नति भी होती थी। इन्हें सभी जाति के लोग आदर की दृष्टि से देखते थे; क्योंकि ये सबके पुरोहित होते थे और उनके झगड़ों से कोई सम्बन्ध न रखते थे। देहात में ऐसे बहुत से अवसर देखने को मिले हैं, जहाँ क्षत्रियों के दो दल लाठी लेकर फ़ौजदारी के निमित्त युद्ध-क्षेत्र में मर मिटने के लिये आगये हैं, वहाँ इन्हीं पुरोहित महाशय ने नंगे शिर बीच में खड़े होकर, गाँव को रक्तपात से बचा लिया। क्या ग्राम-सुधार का कार्य इनके कार्य से अधिक महत्त्व का है ?

त्योहारों का धर्म के साथ अटूट सम्बन्ध था। जैसे; दीपावली, होली, सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण के अवसरों पर घर की लिपाई-पुताई, कार्तिक की अमावस्या को पशुस्नान, गोवर्धनपूजन, देवोत्थानी एकादशी को घर का दारिद्रय हटाना इत्यादि। इन सब बातों की स्मृति पुरोहित देवता घर-घर जाकर स्वयं दिलाते थे। इसके उपलक्ष में गाँव के लोग उन्हें श्रद्धानुकूल कुछ दे देते थे, जिससे वे प्रसन्न रहते थे। यदि वे पुरोहित सुधारक का कार्य सच्चे हृदय से न करते तो समाज में उनकी इतनी उपयुक्तता न होती। क्योंकि संसार बहुत दिनों तक स्वार्थ-लोलुप, धूर्त और बेकार आदमियों के शिकंजे में कसा नहीं रह सकता।

अङ्गरेजी शासन काल में जैसे-जैसे ये प्राचीन प्रथायें लुप्त होतीं गईं, वैसे-वैसे नई-नई समस्यायें किसानों के सामने आने लगीं। प्राचीन काल में ग्रामीण लोग प्रजा सत्तात्मक ढंग की ग्राम-पञ्चायतों के सुखमय वातावरण से परिचित रहने के कारण राज्य की व्यवस्था से भी परिचित रहा करते थे। परन्तु, अब ब्रिटिश-शासन काल में, पञ्चायत-प्रथा के नष्ट हो जाने के कारण, वर्तमान शासन-पद्धति की रूप-रेखा ही जब उनकी समझ में नहीं आती, तब उन बेचारों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, असेम्बली और कौंसिल के विषयों का एवं उनके पदाधिकारियों के कार्यों का ज्ञान कैसे हो सकता है? अब तो उद्योग-धन्धे एवं व्यापार के सम्बन्ध भी इतने जटिल हो गये हैं, जिनका समझना उनके मानसिक क्षितिज से परे है।

आज कल अन्न की तेज़ी-मन्दी गाँव की उपज पर निर्भर न रहकर समीप के सूबों या अन्य देशों की पैदावार पर निर्भर रहती है। प्राचीन काल में तुषार व अनावृष्टि से जब कभी गाँव में दुर्भिक्ष पड़ता था, तब गाँववाले दुर्गा, देवी या ईश्वर का कोप समझ कर अपना समाधान कर लेते थे। परन्तु, इस काल में व्यापारिक और राजनीतिक ज्ञान प्राप्त करना सुयोग्य नागरिक बनने के लिये आवश्यक हो गया है।

ग्राम-वासियों को इन बातों का ज्ञान देने के लिये हमें उनका मानसिक क्षेत्र बढ़ाना पड़ेगा। इस उद्देश्य की पूर्त्ति ग्रामों में प्रौढ़-पाठशालाओं के संचालन से ही हो सकती है।

'रायल कमीशन ऑन एग्रीकलचर' के अध्यक्ष की हैसियत से हमारे वर्तमान वाइसराय लार्ड लिनलिथगो साहब ने प्रौढ़-पाठशालाओं के सम्बन्ध में एक सारगर्भित वक्तव्य प्रकाशित किया था। उसमें श्रीमान् ने प्रौढ़-पाठशालाओं की बड़ी प्रशंसा की है

और जनता को उनसे होनेवाले लाभ भी बतलाये हैं। पाठकों के लाभार्थ नीचे उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है:—

(१) प्रौढ़-पाठशालाओं से कृषकों का दृष्टि-कोण व्यापक होगा और उनके ज्ञान का क्षितिज विस्तृत होगा।

(२) किसान कृषि की उन्नति के लिये किये गये आविष्कारों से सहानुभूति रखेंगे और उनके प्रयोग से खेती की पैदावार बढ़ा सकेंगे।

(३) देहाती किसान खेती की उपज को अच्छे भाव से बेचने में समर्थ होंगे।

(४) प्रौढ़-शिक्षा से लाभ उठाने के बाद बालकों की शिक्षा के सम्बन्ध में उनकी उदासीनता दूर होगी।

(५) शिक्षा-प्रचार से देहातियों को कैसा लाभ होता है, इसका परिचय तथा आभास मिल जाने पर वे शिक्षा-कर देने के लिये सहर्ष तैयार हो जायँगे। इस प्रकार बालकों की शिक्षा के विस्तार में आनेवाली आर्थिक आपत्ति बहुत कुछ दूर हो जावेगी।

(६) प्रौढ़ों को साक्षर बनाने से देहात में पुस्तकालयों की वृद्धि होगी। फलतः इस ढंग से प्राइमरी स्कूलों के पढ़े-लिखे लड़कों में उनके पुनः निरक्षर हो जाने की दशा न पैदा होगी।

(७) तुरन्त सार्वांगिक उन्नति करने के लिये प्रौढ़-शिक्षा का प्रचार दोचार पीढ़ियों तक धूम-धाम से करना पड़ेगा।

प्रौढ़-शिक्षा से होनेवाले उपर्युक्त लाभों से किसी का मतभेद नहीं हो सकता, परन्तु रायल कमीशन ऑन एग्रीकलचर की रिपोर्ट सन् १९२९ में प्रकाशित हुई, तो भी सन् १९३८ तक अर्थात् १० वर्ष के भीतर किसी भी प्रान्त में सरकार या शिक्षा-विभाग द्वारा प्रौढ़-शिक्षा का आन्दोलन नहीं किया गया था। तब तक शिक्षा-

विभाग इस कार्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। उसके विचार से प्रौढ़-शिक्षा अव्यवहार्य थी और उसमें धन व्यय करना व्यर्थ समझा गया था। उसकी ऐसी हिचकिचाहट के विषय में एक सज्जन ने विनोद पूर्वक, किन्तु मर्मस्पर्शी शब्दों में कहा था, "मालूम होता है कि शिक्षा-विभाग के अधिकारी, रात्रि में प्रौढ़-पाठशालाओं का निरीक्षण करने से घबड़ाते हैं।"

हाँ, काल की तथा मानव-संसार की गति विचित्र है। सन् १९३८ से शिक्षा-विभाग का रुख एकाएक बदल गया है, ऐसा ही प्रतीत होता है।

हमारे विचार से प्रौढ़-शिक्षा को अव्यावहारिक ठहराने में उनका कोई दोष नहीं था। दोष था तो उनके उस समय तक के प्राप्त अनुभव का, जिसके बल पर उन्होंने ऐसा कहा था। इसलिये आवश्यकता है कि हम प्रौढ़-शिक्षा के पूर्व इतिहास की ओर दृष्टिपात करें।

ऐतिहासिक दृष्टि से सर्व प्रथम मद्रास सरकार ने अपने प्रान्त के "पंचम" नाम के हरिजनों को शिक्षित करने के लिये प्रौढ़-पाठशालाएँ जारी कीं। यह योजना जब समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई तब समाज-सेवक तथा नेताओं के हृदय में एक नया आशांकुर उठने लगा; क्योंकि दिन में अविश्रान्त काम करनेवाले मजदूरों को साक्षर और शिक्षित बनाने की यह एक अनूठी कल्पना प्रतीत हुई। विशेषतः औद्योगिक शहर में, जहाँ मजदूरों की हाजिरी लेने के लिये मेठ (नायक) आदि की आवश्यकता पड़ती थी, उनके लाभार्थ यह योजना उचित जँची। मजदूरों के लाभार्थ रात्रि-प्रौढ़-पाठशालाएँ बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, आदि शहरों में जारी हुईं।

केवल मजदूरों की हाजिरी लेने की योग्यता रखनेवाला भी उस समय अपनी आर्थिक उन्नति कर सकता था। अतः इन पाठशालाओं से बहुत से मजदूर लाभ उठाने लगे।

इसके कुछ दिन बाद ही बङ्गाल, युक्तप्रान्त, बम्बई तथा अन्य-प्रान्तीय सरकारों ने डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सहायता से देहात में कृषकों के लाभार्थ रात्रि-पाठशालाओं को जारी किया, परन्तु कहीं भी उनसे सफलता नहीं मिली। प्रौढ़-पाठशालाओं की असफलता के जो कारण शिक्षा-विभाग के पदाधिकारी बतलाते हैं उनके अभिप्राय का भाषान्तर नीचे दिया जाता है:—

सन् १८९७-१८९८ से सन् १९०१-०२ तक अनुभव करके बम्बई प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब अपनी पंच-वर्षीय पर्य्यवलोकन रिपोर्ट में लिखते हैं कि:—

"प्रौढ़-पाठशालाओं की दशा हर प्रकार से अधोगति पर है, पढ़नेवालों की संख्या और उपस्थिति अत्यन्त शोचनीय है, और उनपर किये जानेवाला व्यय सर्वथा व्यर्थ है। अतएव ऐसी पाठ-शालाओं के प्रसार की कोई आशा न आज है, न कभी होगी। भारतवर्ष में शिक्षा के लिये ही अध्ययन की प्रतिष्ठा नहीं की जाती, न इनमें इतने आधिभौतिक लाभ हैं, जिनसे दिन भर के थके-माँदे प्रौढ़-छात्र आकृष्ट हों। इसके अतिरिक्त यह भी विचार करने की बात है कि उक्त पाठशालाएँ चलाने के लिये प्राथमिक पाठशालाओं के अध्यापक नियत किये जाते हैं वे स्कूल में दिनभर चिल्लाते-चिल्लाते तंग आ जाते हैं। कहीं-कहीं इन अध्यापकों को पोस्ट-आफ़िस का भी काम करना पड़ता है। ऐसी अवस्था में उन विश्रान्त अध्यापकों से ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य में पूर्ण सहयोग मिलने की क्या आशा की जा सकती है ?"

बङ्गाल प्रान्तीय स्कूलों के एडीशनल इन्स्पेक्टर राय साहब भगवती सहाय अपनी सन् १९१२ की पर्यालोचन रिपोर्ट में लिखते हैं:—

"जब तक मजदूर, जिनके लिये मुख्यकर यह पाठशालाएँ खोली गई हैं, बिना शिक्षा पाये पर्याप्त वेतन पा सकते हैं तब तक उन्हें ऐसी पाठशालाओं की आवश्यकता का बोध ही न होगा। यदि रात्रि-पाठ-

शालाएँ ज्ञान-वृद्धि के विचार से चलाई भी जावें तो यह सम्भव नहीं है; क्योंकि शिक्षा ही हमारा ध्येय है ऐसी समझ हमारे देश में अभी तक नहीं आई।"

पंजाब सरकार के विषय में भी यही बात है। सन् १९२५ से सन् १९२९ तक ब्रेन साहब प्रेरित कई हज़ार पाठशालाएँ खोली गई थीं, पर वे सब असफल हुईं। इसका परिणाम यह हुआ कि आज पंजाब सरकार प्रौढ़-शिक्षा के लिये कुछ भी ख़र्च करने को तैयार नहीं है। यही बात मद्रास सरकार के सम्बन्ध में है। वह भी प्रौढ़-शिक्षा के लिये पैसा ख़र्च करने के लिये तैयार नहीं है। इन सब शिक्षा-विशारदों के कथन से कृषकों के लिए प्रौढ़-पाठशाला चलाना अव्यवहार्य है। अतः इस स्थल पर उनके कथनों में कहाँ तक सत्यता है इसकी समालोचना करना उचित होगा।

(१) बम्बई प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब अपने वक्तव्य में कहते हैं कि प्रौढ़-पाठशालाओं में किये जानेवाले व्यय सर्वथा व्यर्थ हैं। अतः ऐसी पाठशालाओं के प्रसार की कोई आशा न आज है और न कभी होगी, यह उनकी भविष्यवाणी है।

(२) अध्ययन की भारतवर्ष में क़द्र नहीं है।

(३) प्रौढ़-शिक्षा से आधिभौतिक लाभ की सम्भावना न होने के कारण देहात के किसान इससे लाभ नहीं उठाते।

(४) प्रौढ़-पाठशाला के अध्यापक थके-माँदे रहने के कारण प्रौढ़-पाठशाला सुचारु रूप से चला नहीं सकते।

प्रायः ऐसे ही विचार साधारण आदमियों के हृदय में बसे हैं, कोई कहता है कि 'बुड्ढे सुग्गे' क्या पढ़ेंगे, तो कोई कहता है कि किसानों को न पढ़ने में अभिरुचि है और न अवकाश है।

हमें यहाँ एक बात मान लेनी पड़ेगी कि आजतक प्रौढ़-शिक्षा-प्रसारार्थ जितने प्रयत्न किये थे वे अधिकतर असफल हुए। इससे प्रचारक निरुत्साह भी हुए। इसके संशोधन के सम्बन्ध में कहीं-कहीं शिक्षा-विशारदों ने अपने विचार भी प्रगट किये हैं। उनके विचार से प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार अव्यवहार्य है और उस पर किया गया व्यय व्यर्थ है।

साधारण जनता में भी प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक तर्क-वितर्क सुनने में आते हैं; क्योंकि कोई कहते हैं कि 'बुड्ढे सुग्गे' क्या पढ़ेंगे, तो स्वयं सयाने भी आधी आयु बीत जाने के पीछे पढ़ना ही बेकार समझते हैं। कोई शिक्षा प्राप्त करने के बाद आर्थिक लाभ के सम्बन्ध में शङ्का प्रदर्शित करता है तो कोई अपने मन में ऐसी भी शंका रखते हैं कि किसान पढ़ने के बाद अपने कृषिकर्म (खेती) से विमुख हो जायँगे अर्थात् कृषक खेती और हरवाही छोड़कर बाबू बन जायेंगे। अतः इस स्थल पर हमें उपर्युक्त शिक्षा-विशारदों तथा सामान्य जनता के तर्क-वितर्कों की छान-बीन करके उन आक्षेपों में कहाँ तक सत्यता है, यह देखना होगा।

प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार में असफलता के कारण हमारे विचार से इन आक्षेपों से भिन्न हैं। उनका भी विवेचन हम इन आक्षेपों की समालोचना के पश्चात् करेंगे।

आक्षेप १—सयाने कृषक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् बाबू बनेंगे—इस आक्षेप में कुछ भी तथ्य नहीं है। किन्तु, यह शङ्का मन में लेकर कारखानेदार और जमींदार यत्र-तत्र प्रौढ़-शिक्षा का गुप्त रूप से विरोध करते मिलते हैं। इन सज्जनों से हमारा निवेदन है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली काश्तकारों को खेती से परांमुख करने के लिये नहीं है, वरन् उनको अच्छे काश्तकार बनाने के लिये है।

उक्त सज्जनों के सम्मुख हम यह भी उपस्थित करना चाहते हैं कि जिस समाज में मिडिल तथा अधिक अँगरेजी पढ़े बी० ए०, एम० ए०

परीक्षोत्तीर्ण युवक भी बेकार घूमते हैं, वहाँ छः महीने पढ़नेवाले कृषक कहाँ नौकरी पा सकेंगे ? पाश्चात्य देशों में, जैसे इङ्गलैण्ड, अमेरिका आदि जहाँ के निवासी ९५ प्रतिशत पढ़े लिखे हैं क्या साक्षरता-प्रसार से खेती और सड़कों की सफ़ाई बन्द हो गई है ? साक्षरता की क़द्र नौकरी के विचार से वहीं तक रहेगी जहाँ तक समाज में साक्षर मनुष्य बहुत कम पाये जायेंगे। अतएव कृषकों की खेती से विमुख हो जाने की शङ्का व्यर्थ है। हाँ, आक्षेप करनेवालों के मन में और एक भावना काम करती है जिसे वे प्रगट नहीं करते। वह यह है कि साक्षर होने के पश्चात् कृषकगण अपने हक़-प्राप्ति को सन्नद्ध होंगे और कहीं-कहीं वे घमण्ड से असभ्यतापूर्ण व्यवहार भी करेंगे अर्थात् वे मग़रूर वा अहंकारी हो अपने शिष्टों के साथ नम्रता से व्यवहार न करेंगे। उन सज्जनों से हमें इतना ही कहना है कि 'नम्रता और आन्तरिक सभ्यता का बर्ताव' यही तो हमारी शिक्षा-प्रणाली का ध्येय है। जहाँ हक़ के साथ अपना उत्तरदायित्व भी पहचान लेंगे वहाँ फिर किसी अनिष्ट की आशंका नहीं, दोनों को ही सुख मिलेगा; क्योंकि अपने उत्तरदायित्व की पूर्ति का भी उन्हें ध्यान रहेगा। अर्थशास्त्र का एक अटल सिद्धान्त है कि कार्य में स्वायत्तता रहने से कार्य कम दाम में और अच्छा होता है; क्योंकि श्रमजीवी उसमें अपना उत्तरदायित्व पूर्णतः समझता है।

आक्षेप २—बुड्ढा सुग्गा क्या पढ़ेगा ? साधारण जनता में ऐसी धारणा फैली हुई है कि शिक्षा-प्राप्ति के लिये बालपन ही उपयुक्त समय है और बीस-पचीस वर्ष की आयु के पश्चात् सयाने व्यक्तियों को ज्ञानोपार्जन करना कठिन है।

साधारण जनता के विचार तो छोड़ ही दीजिये, किन्तु अमेरिकन मनोवैज्ञानिक मि० जेम्स ने एक स्थल पर कहा है कि २२ वर्ष के पश्चात् सयाने नई कल्पनाएँ और नई विद्यायें प्राप्त करते ही नहीं। इन कथनों में कहाँ तक सत्यता है इसका विवेचन आगे आनेवाले अध्याय में करेंगे।

इस स्थान पर हम एक बात और कहना चाहते हैं। वह यह कि पर्याप्त विषयों में जिस व्यक्ति की बुद्धि अधिक परिपक्क है वह व्यक्ति शीघ्र ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

छोटे बालक ज्ञान-प्राप्ति में चञ्चलता रहने के कारण ज्ञान-प्राप्ति का प्रदर्शन अधिक करते हैं। सयाने वही ज्ञान कम समय में प्राप्त करके उसका प्रदर्शन कम करते हैं। बच्चों की ज्ञान-प्राप्ति का कौतूहल और उसके सम्बन्ध में आश्चर्य सब प्रकट करते हैं, पर सयानों की अल्पकाल में भी ज्ञान-प्राप्ति का कोई आश्चर्य नहीं करता। किन्तु, यह बात पूर्ण सत्य है कि मर्यादित बातों में बच्चों से सयाने शीघ्रतर पढ़ते हैं। सयानों के पढ़ने में गम्भीरता तथा स्थिरता रहती है। इसका अधिक विवरण "प्रौढ़ों की मनोधारणा" नामक अध्याय में दिया है।

आक्षेप ३— प्रौढ़-शिक्षा प्रसार में असफल होने का मुख्य कारण जो बम्बई प्रान्त के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर तथा बंगाल प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के एडीशनल इन्स्पेक्टर राय साहब भगवतीसहाय तथा अन्य प्रान्तों के शिक्षा-विभागीय अधिकारियों की ओर से बताया जाता है वह यह है, "मजदूर और काश्तकारों को प्रौढ़-शिक्षा से कुछ लाभ नहीं होता, अतः वे शिक्षाप्राप्ति के लिये निरुत्साह रहते हैं।" यह कथन पाठकों को बहिर्दृष्टि से सत्य प्रतीत होगा किन्तु सूक्ष्म विचार से इस कथन में सत्यता यथा-तथा ही है। सत्य तो यह है कि शिक्षा-विशारदों ने शिक्षा सम्बन्ध में अपनी परिभाषा ही सदोष बनाली है और साधारण जनता में उसका प्रसार किया है, यह निम्नलिखित विचारों से व्यक्त होगा :—

(अ) इन शिक्षा-विशारदों के विचार से वही अर्थ-लाभ है कि जिसमें दो पैसे अधिक मिलते हैं। हानि से बचाना भी तो कुछ अर्थ लाभ है, इस ओर वे कुछ भी ध्यान नहीं देते। विचार कीजिये यदि शिक्षा प्राप्त करने से कार्तिक मास में, जबकि किसानों को खेत की जुताई-बुआई में अधिक परिश्रम करना पड़ता है, यदि प्रौढ़-शिक्षा प्राप्त

किया हुआ किसान स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके जूड़ी-ज्वर आदि रोगों से नीरोग रह सके, तो क्या इसमें उसे कुछ भी आर्थिक लाभ नहीं हुआ ? यदि चलते-पुरज़े और दूसरों को विविध प्रकार की विपत्तियों में फँसानेवाले व्यक्तियों के शिकञ्जों से बच लेने का उपाय वे सीख लेंगे तो क्या यह उनका आर्थिक लाभ नहीं है ? यदि वे व्यक्तिशः अपना अनाज स्थानीय वनियों को सस्ता वेचने के स्थान में सामुहिक रूप से यथेष्टभाव में बेच सकेंगे तो क्या यह उनका आर्थिक लाभ नहीं है ? ऐसे ही कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जिनमें प्रत्यक्ष में तो दो पैसे अधिक मिलते नहीं, पर परिणाम में दो पैसे की हानि वचाई जा सकती है। कृषकों का दृष्टि-कोण व्यापक करने से और ज्ञान का क्षितिज विस्तृत करने से हम उनको आर्थिक क्षति से बचा सकेंगे। यह क्या प्रौढ़-शिक्षा से आर्थिक लाभ नहीं है ? परन्तु शिक्षा-विशारदों ने प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी परिभाषा ऐसी नियत करली है कि शिक्षा पाने के पश्चात् नौकरी पाना और नौकरी में दो पैसे अधिक पाना, यही शिक्षा से आर्थिक लाभ है। उनकी यह सदोष विचार-शरणी अँगरेज़ी शिक्षा-प्रणाली जारी करने से रही है और उसी का प्रतिविम्व प्रौढ़-शिक्षा की परिभाषा बनाने में पड़ा है। उनके विचार से शिक्षा-प्रदान से वही लाभ है कि मज़दूर दो आने मज़दूरी अधिक पा सके, परन्तु यह लाभ नहीं कि मज़दूर शराब न पीकर चार आने वचावे। यदि प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार करके हम किसान को क्षति से बचा सकेंगे तो समझेंगे कि हमने समाज का कुछ लाभ किया।

आक्षेप ४—शिक्षा केवल आर्थिक लाभ के लिये है, शिक्षा की ऐसी परिभाषा बनाने में ही दोष है। इस सदोष परिभाषा का प्रतिविम्व अँगरेज़ी शिक्षा-प्रणाली में हर जगह प्रकट होता है। शिक्षा की सच्ची परिभाषा वही हो सकती है कि जिसमें अर्थ-लाभ के साथ जीवन का पूर्ण रहस्य प्राप्त करने की कार्य-क्षमता, समाज और समाज के व्यक्तियों में आसकती है। जब तक सामाजिक जीवन के भिन्न-भिन्न

पहलुओं की ओर शिक्षा-विशारदों का ध्यान न रहेगा तब तक शिक्षा की परिभाषा अधूरी ही रहेगी। क्या यह बात सत्य है कि जीवन-कलह में समाज और उसके व्यक्ति अर्थ-लाभ के लिये ही अविश्रान्त परिश्रम करते हैं? क्या भीषण युद्ध केवल अर्थ-प्राप्ति के लिये ही लड़े जाते हैं, कि जिनमें रथी, महारथी आदि बड़े-बड़े वीर योद्धा अपना जीवन उत्सर्ग करते हैं। उस संग्राम में अर्थ-लाभ और प्रतिष्ठा-लाभ इनका कितना-कितना भाग होगा? क्या सिनेमा, नृत्य, गान, चित्रकारी आदि कलाओं के सम्बन्ध में अर्थ-लाभ के ही ध्यान से समाज के मनुष्य उसका रस ग्रहण करते हैं? क्या काव्य से समाज की अर्थ-वृद्धि होती है? यदि मानव-जीवन केवल अर्थ-प्राप्ति के लिये ही रहता, तो मनुष्यमात्र उत्सव-प्रियता क्यों प्रकट करता, क्योंकि उत्सव मनाने में उसकी अर्थ-हानि ही अधिक होती है। क्या अर्थ-साधन के साथ, गौरव, प्रतिष्ठा और आन-बान यह भी पुरुषार्थ साधन के लक्षण नहीं हैं? अतएव शिक्षा की परिभाषा व्यापक ही होना चाहिये, जिसमें जीवन का सार्वांगिक रहस्य व्यक्ति भली भाँति समझ सके।

(३) शिक्षा-विशारदों ने जो प्रौढ़-शिक्षा-प्रणाली जारी की थी, उसमें केवल रूक्ष साक्षरता थी। जीवन में जो रसिकता ओत-प्रोत है, उसकी ओर इनका दुर्लक्ष रहा। उनकी शिक्षा-प्रणाली में न गाना था न बजाना, न जीवन का रहस्य। हमारी शिक्षा-प्रणाली का, अवकाश के समय गाने-बजाने तथा अन्य सात्त्विक रीतियों से व्यतीत करने की एवं जीवन के रहस्य की लूट करने की कार्य-क्षमता कृषकों में बढ़ाना, यही प्रधान लक्ष है। साक्षरता गाने-बजाने के द्वारा प्राप्त करने की शिक्षा-प्रणाली रहने के हेतु हमारी साक्षरता-प्रणाली न केवल ग्राह्य हो चुकी है, किन्तु इससे भी बढ़कर उनको अपने जीवन में कार्य-क्षम बनाती है।

प्रौढ़-शिक्षा का भविष्य

यह बात भी मानली जाय कि जिस ढंग से प्रौढ़ों को लिखना-पढ़ना सिखाया जाता था, उससे कदाचित् ही कुछ लौकिक लाभ हो, परन्तु प्रौढ़ों की दलील तो यह है कि उन्हें अल्प लाभ की प्राप्ति में स्वार्थ त्याग अधिक करना पड़ता था। सत्य बात तो यह थी कि उनकी प्रौढ़-शिक्षा-प्रणाली ही अग्राह्य थी। दिन भर के थके-माँदे मुर्दादिल अध्यापक जिनको शिक्षा-दान की तनिक भी रुचि नहीं, ४ वर्ष का कार्य-काल समाप्त कर देते थे और बेचारे ग्रामीण प्रौढ़ों को उनके जीवन की उपयोगिता की कोई भी शिक्षा नहीं मिल पाती थी। ऐसी परिस्थिति में यदि वह शिक्षा-प्रणाली सफल न हो तो इसमें आश्चर्य को कौन सी बात थी।

आज से ३६ वर्ष पूर्व बम्बई प्रान्तोय शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब ने यह भविष्यवाणी की थी कि भविष्य में प्रौढ़-शिक्षा के प्रचार की कोई आशा नहीं है।

हमारा अनुमान है कि उस समय में जब उन्होंने उक्त अनुभव प्रकाशित किया था, सम्भव है कि समाज की वैसी स्थिति रही होगी, परन्तु काल की गति बड़ी विचित्र है। अब वह समय आ गया है कि आनेवाले दस वर्षों में प्रौढ़-पाठशालाएँ बड़े ठाट के साथ चलेंगी। हमें समय की परिवर्त्तन-शीलता का आश्चर्यजनक अनुभव है। लगभग २८ वर्ष पूर्व हमें जब हम पूना के फ़र्ग्युसन कालेज में अध्ययन करते थे अछूतों के मुहल्लों में छूआछूत का भेद-भाव मिटाने के लिये जाना पड़ा था। वहाँ हमने देखा था कि बेचारे दलित लोग बहुत ही आग्रह करने पर टाट पर बैठते थे। उनमें बहुत से तो मर्यादोल्लंघन के भय से दूर ही रहते थे। वे समझते थे कि छूने में हमें ही दोष लगेगा। जब हम सन् १९२५ में नागपुर म्युनिस्पैलिटी के भंगी कर्मचारियों के पास उनकी आर्थिक स्थिति की जाँच करने के लिये

जाते थे, तब वे भी ऐसा ही कहते थे। आज उन्हीं हरिजनों के मानसिक विचारों के तारतम्य को देखकर चकित हो जाना पड़ता है।

एक युग वह था जब अछूत कहते थे कि सवर्णों के छूने में हमें उलटा पाप लगेगा, और आज ऐसा युग आ गया है कि वे सरे-मैदान गला फाड़-फाड़ कर कहते हैं कि अछूतपन उच्च जातियों ने बलात् बहुत दिनों से हमारे सिर पर लाद रखा है। इस कलंक को बनाये रखने की जिम्मेदारी सवर्ण जातियों पर है। हमारे देखते ही देखते १० साल के भीतर ही भीतर वे बलपूर्वक डंडे की चोट अपने अधिकार माँगने के लिये तुल गये। केवल इतना ही नहीं, उन्होंने सवर्ण जातियों को चुनौती भी दी कि बिचकने के स्थान में हमसे प्रेमपूर्वक मिलो और हमें भी मन्दिर-प्रवेश की स्वतन्त्रता दो, नहीं तो हम धर्मान्तर ग्रहण करेंगे। यही दशा प्रौढ़-शिक्षा के विषय में भी होनेवाली है। दश वर्ष के भीतर ही भीतर प्रौढ़ किसान जगह-जगह इस बात का ढिंढोरा पीटेंगे कि सरकार, शिक्षा-विभाग के अधिकारी, पूँजीपति और शिक्षित वर्ग ने ही आज तक जान बूझकर हमें निरक्षर बना रखा है।

कालान्तर के इस परिणाम का मूल कारण यह है कि प्रौढ़ों के मताधिकार दिनों दिन बढ़ रहे हैं और बढ़ते ही जायँगे। प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार कितनी शीघ्रता से होगा इसके चिह्न देख पड़ने लगे हैं; क्योंकि प्रचार में कहीं-कहीं हार्दिक सहायता भी मिल रही है। अखिल भारतवर्ष की सहकारी-समितियाँ अपने मेम्बरों को साक्षर बनाकर अपने सदस्यों में कार्य-क्षमता लाने का अपना उत्तरदायित्व समझने लगी हैं।

बम्बई प्रान्त में सर विट्ठलदास ठाकरसी के बृहत् दान से सेवा-समितियों द्वारा रात्रि-पाठशालाएँ स्थापित हो रही हैं। मद्रास की वाई० एम० सी० ए० संस्था मार्तण्डम् तथा कोयमबिटूर में प्रचार कर रही है। प्रौढ़-साक्षरता के आन्दोलन में पूना में श्रीभागवत,

बिहार में प्रोफ़ेसर मुकर्जी तथा डाक्टर सैयद महमूद, डाक्टर फ्रैंक लबेक साहब के परिश्रम और सहायता से हिन्दुस्थान में बड़े उत्साह से काम कर रहे हैं। इनकी प्रौढ़ों को वाक्य-पद्धति से पढ़ाने की प्रथम किताब क़रीब-क़रीब सब भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है।

बम्बई, बिहार, संयुक्तप्रान्त आदि प्रान्तों की सरकारों ने प्रौढ़-शिक्षा के लिये बहुत बड़ी रक़म देना स्वीकार किया है। भविष्य के गर्भ में क्या है यह बतलाना तो कठिन है, पर प्रौढ़-पाठशालाएँ असफल क्यों हुईं, इसका विवेचन आगे के अध्याय में करेंगे।

सातवाँ अध्याय

रात्रि-पाठशालाओं की असफलता के कारण

गत अध्याय में हम साधारण जनता तथा शिक्षा-विशारदों के आक्षेपों की आलोचना कर चुके हैं और यह भी बता चुके हैं कि साधारण जनता में जो भ्रम-मूलक कल्पना फैली है कि रात्रि-पाठशाला में केवल ६ महीने की अवधि में पढ़ने के पश्चात् कृषक खेती से विमुख हो बाबू बनेंगे, यह सर्वथा असम्भव है। साधारण जनता की धारणा कि शिक्षा के लिये बाल्यावस्था ही योग्य है और "बुड्ढे सुग्गे" पढ़ न पायेंगे, यह भी मनोविज्ञान-शास्त्र से तथा हमारे अनुभव से निराधार सिद्ध होती है। इतना ही नहीं, वरन् सयाने, जिनकी बुद्धि परिपक्व होती है, संकीर्णक्षेत्र में बच्चों से भी अधिक शीघ्र और अल्पकाल में पढ़ जाते हैं। हम यह भी बता चुके हैं कि शिक्षा-विशारदों का यह कहना कि प्रौढ़-शिक्षा से कृषकों को आर्थिक लाभ नहीं होगा, उनकी दोषमूलक शिक्षा-परिभाषा का परिणाम है। आर्थिक क्षति से बचना यह भी अर्थ-लाभ है। शिक्षा केवल अर्थ-प्राप्ति के लिये ही सम्पादन की जाती है ऐसा कथन भी अर्द्ध सत्य होगा। सर्वाङ्गीण शिक्षा में जीवन का रहस्य समझ लेने का भी समावेश होना चाहिये। अन्त में शिक्षा-विशारदों की यह भविष्यवाणी भी कि प्रौढ़-शिक्षा असफल रही और रहेगी और भविष्य में धूमधाम से इसका प्रसार होना असम्भव है काल की विचित्र गति से ही खण्डित हो रही है।

इस स्थल पर यह अवश्य कहना पड़ेगा कि हिन्दुस्थान में आज तक जहाँ-तहाँ प्रौढ़-शिक्षा के लिये रात्रि-पाठशालाएँ खोली गई थीं, वहाँ शिक्षा-प्रचारकों को संतोषजनक फल नहीं मिले और आज भी जो अगणित प्रौढ़-पाठशालाएँ बिना किसी उद्देश्य और बिना इस बात

के सोचे विचारे कि उनकी शिक्षा-प्रणाली कृषकों के सामाजिक तथा मानसिक विचारों पर निर्धारित है कि नहीं, जारी की जाती हैं, वह भी असफल होनेवाली हैं। हमने ३०-४० वर्ष के पूर्व बड़े उत्साह से जारी की गई रात्रि-प्रौढ़-पाठशालाओं के असफल होने के पश्चात् जिस प्रकार की आलोचनायें सुनी थीं, वैसी ही निरुत्साह-पूर्ण आलोचनायें शीघ्र ही हमारे सुनने में आने का भय है।

हमारी अटल धारणा यह है कि भावी भारतीय राष्ट्र-निर्माण करने में और उसको बहुजन कृषकों का बल पाकर सुदृढ़ बनाने में, प्रौढ़-पाठशालाएँ विशेष सहायक होनेवाली हैं। इस साधन का अवलम्बन करने में जो अगणित प्रौढ़-पाठशालाएँ विना किसी उद्देश्य प्रचलित की जाती हैं, वे उसमें रुकावट डालनेवाली सिद्ध होंगी।

हम यह बात मानने के लिये तैयार हैं कि इस ढंग से जारी की गई पाठशालाओं में पहले तो धूम-धाम से बहुत से कृषक आते हैं, किन्तु ८-१० दिन पश्चात् धीरे-धीरे एक-एक करके छोड़ते जाते हैं और अन्त में कहीं ३-४ किशोर ही पढ़ने के लिये रह जाते हैं। ये पाठशालाएँ कई वर्ष तक चलती रहती हैं, पर लगभग किसी को भी साक्षरता नहीं दी जा सकती। हम यह बात मानने को भी तैयार हैं कि जहाँ कुछ थोड़े से छात्रों को साक्षर बनाने का श्रेय अध्यापक लेते हैं वहाँ उनमें से अधिकतर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्राथमिक स्कूलों में पहले ही से शिक्षा पाये हुए रहते हैं। अतएव इस स्थल पर अत्यन्त आवश्यक है कि जिन कारणों से यह पाठशालाएँ असफल हुई थीं और हो रही हैं और जिनकी असफलता के कारण समाज में असंतोष फैल रहा है, उन पर हम ध्यानपूर्वक विचार करें।

कारण नं० (१) प्रौढ़-पाठशालाएँ—पहले पहल शिक्षा-विभाग द्वारा जो रात्रि-प्रौढ़-पाठशालाएँ जारी की गई थीं उनका संक्षिप्त विवरण यह है कि पाठशाला का पाठ्य-क्रम ३-४ वर्ष का था, इन पाठशालाओं में वही पुस्तकें नियत की गई थीं जो कि प्राथमिक

कक्षा में जारी थीं अर्थात् उनका पाठ्य-क्रम वही था जो प्राइमरी स्कूलों में था। साक्षर बनाने की पाठ्य-विधि भी उसी ढंग की थी जिस ढंग से प्राइमरी स्कूल के लड़के साक्षर बनाये जाते हैं। रात्रि-पाठशालाएँ २-२॥ घंटे जारी रहती थीं। इन रात्रि-पाठशालाओं में पढ़ाने के लिये डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के वही अध्यापक, जो दिन में बच्चों को पढ़ाते थे, नियुक्त किये जाते थे। इनका निरीक्षण भी साल में प्राइमरी स्कूल की भाँति ही डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के शिक्षा-विभाग के डिप्टी इन्सपेक्टर एक बार करते थे। लगभग यह सब पाठशालाएँ प्राइमरी स्कूल के सिद्धान्तों पर ही निर्धारित थीं। इस विचारशैली से प्रौढ़-पाठशालाएँ एक अस्थायी शैक्षणिक संस्था हैं, जो ग्रामों में सयानों को साक्षर बनाने को जारी की जाती हैं। जिनमें रात्रि में पढ़ाई होती है और जिनमें अध्यापन का काम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्राइमरी स्कूलों के मास्टर वा अन्य सुशिक्षित मनुष्य २-२॥ घंटे करते हैं। प्रायः इन पाठशालाओं में वही पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, जो शिक्षा-विभाग द्वारा प्राइमरी स्कूलों के लिये स्वीकृत हैं। प्रायः यह ध्यान रहता है कि निरक्षरता को दूर करने के लिए प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली प्रौढ़-जनता में जारी की जावे कि जिससे राष्ट्र की निरक्षरता शीघ्र दूर हो जाय। इन साधारण विचारों के अनुसार प्रौढ़-पाठशालाएँ केवल प्राथमिक पाठशालाओं की पुनरावृत्ति हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि प्रौढ़-पाठशाला में बालकों के स्थान में प्रौढ़ पढ़ते हैं और दिन के स्थान में रात्रि में पढ़ाई होती है। यह धारणा साधारण जनता में पाई जाय तो आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु आश्चर्य यह है कि प्रौढ़-पाठशाला जारी करते समय शिक्षा-विशारदों ने कुछ अधिक गाम्भीर्य से विचार नहीं किया। ऐसे ग़लत विचारों पर चलाई हुई प्रौढ़-पाठशालाएँ असफल हुईं और होंगी, इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है? इस स्थल पर हम इसका एक-एक अंग लेकर विचार करेंगे।

पाठ्यशैली—प्रौढ़-पाठशालाओं में पढ़ाई का ढंग वही रहा जो बालकों को पढ़ाने का था। सत्य बात तो यह है कि साक्षर बनाने तथा अन्य विषय पढ़ाने के लिये प्रचलित शिक्षा-प्रणाली इतनी रूक्ष है कि उससे बच्चों को पढ़ाना भी ठीक न होगा। अक्षर क क क—ग ग ग—घ घ घ कह कर रटाना कि जिनमें न कुछ अर्थ है, न कुछ भावना है, न रुचि है। यह बात चाहे बालक हो, चाहे प्रौढ़ हो, उसका ध्यान हटानेवाली है। निर्जीव अक्षरों को रटते-रटते दिल की उमंग टूट जाती है। इस शिक्षा-शैली से मानसिक थकावट आती है। छात्रों के पठित विषय समझ में न आने से उनका मन अनुत्साहित हो जाता है। यह शिक्षा-शैली ही कारण है कि जिसके हेतु से प्रौढ़ छात्र स्कूल आरम्भ करते समय बड़े उत्साह से पढ़ने आते हैं और १५-२० दिन के पश्चात् जब वे अनुभव करते हैं कि दो-दो घंटे रटाने के पश्चात् भी उनको कुछ आया नहीं, तब हतोत्साह होकर अपने मन में ऐसी धारणा बना लेते हैं कि उनको कुछ आयेगा भी नहीं। अतः हताश हो पाठशाला छोड़ते हैं। छोटे बालक भयात् और बलात् स्कूल में आते हैं, कुछ महीनों में कुछ अक्षर सीख भी जाते हैं, किन्तु प्रौढ़ों की उपस्थिति अध्यापक डरा-धमका कर नहीं करा सकते। यही पहला कारण है, जिससे प्रौढ़-पाठशाला असफल होती हैं। यह खराबी दूर करने के लिये हमें अपनी शिक्षा-शैली आकर्षित बनानी चाहिये। पढ़नेवालों की भावना जाग्रत करनी चाहिए तथा छात्रों में यह विश्वास जागरूक होना चाहिए कि वे नित्य नई बात सीखते हैं और सीख सकते हैं। हमारी शिक्षा-प्रणाली में हम, संगीत रहने के कारण आकर्षण, देहातियों के रुचिकर गीत चुनने के कारण रुचि, और भावना तथा शिक्षा-शैली में सुगमता रहने के कारण पाठ्य विषय ग्रहण करने का विश्वास छात्रों में उत्पन्न करते हैं। यही कारण है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली देहातियों को ग्राह्य और लोकप्रिय बनी है।

कारण नं० (२) पाठ्यकाल—पहले-पहल जब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से रात्रि-पाठशाला जारी हुई तब प्रौढ़ों के लिये ३ वर्ष का पाठ्य-काल रखा था और आज भी जहाँ प्रौढ़-पाठशालाएँ जारी हैं, वहाँ २-३ साल तक नाममात्र को चल रही हैं। क्या यह बात व्यावहारिक हो सकती है कि जिन काश्तकारों को दिनभर उपजीविका के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है वे तीन-तीन वर्ष तक नित्य रात्रि में पढ़ने आ सकें ? ऐसी अव्यावहारिक शिक्षा-विधि रखने का ही परिणाम यह हुआ है कि पाठशाला कभी ठिकाने से नहीं लगती। हाँ, जिस दिन निरीक्षण होगा, उसकी सूचना पहले से पा जाने के कारण, अध्यापक छात्रों को उपस्थित कर देता है। सन् १९२५ में हमने जो नागपुर सेन्ट्रल जेल में अपनी प्रौढ़-शिक्षा योजना का प्रयोग किया और उसके पश्चात् "स्कीम आफ़ मास एज्यूकेशन" अर्थात् "बहु-समाज की शिक्षा-योजना" नामक पुस्तक में प्रतिपादन किया था कि केवल लिखने-पढ़ने की अवधि ६ महीने की रखी जाय, तब बहुत से शिक्षा-विशारद साशंक थे। इसके विपरीत आज कहीं-कहीं ६ सप्ताह के भीतर और कहीं तीन पाठ में ही साक्षरता दी जाती है; ऐसी आवाज़ सुनने में आती है। इस ढंग की साक्षरता-प्रदान में बहुत हुआ तो सयानों को केवल ३५-४० अक्षरों की पहचान और कुछ मात्रा-बोध ही दिया जा सकता है। केवल अक्षरों की पहचान करा देना न तो यह 'वाचन' कहा जा सकता है और न इसको साक्षरता कह सकते हैं। सयानों को, दिनभर खेती में परिश्रम करनेवालों को, ३-४ वर्ष का पाठ्य-काल रखना जितना अनुचित है, उतना ही ६ सप्ताह के भीतर साक्षरता देना भी असम्भव है। हमारी प्रौढ़-शिक्षा-योजना में साक्षरता-प्रदान के लिये ६ महीने की अवधि रखी गई है, किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि पाठशाला ६ महीने चलने के पश्चात् समाप्त हो जाती है। ६ महीने के पश्चात् हमारी प्रौढ़-पाठशाला का परिवर्त्तन भजन-मंडल, रामायण-क्लब या वाचनालय में होजाता है। अर्थात् प्रौढ़ छात्र जो दैनिक पढ़ने के लिए एकत्र होते थे अब वे अपने मानीटर के

या अध्यापक के नेतृत्व में इकट्ठा होते हैं, गाना-बजाना करते हैं, तत्कालीन ग्राम-समस्याओं के ऊपर बहस करते हैं। कभी समाचार-पत्रों के उद्धृत लेख पढ़ते हैं, कभी नाटक खेलते, और खेल-कूद करते हैं। इस विचार से हमारी प्रौढ़-पाठशाला स्थायी वा चिरंजीवी सामाजिक संस्था बन जाती है कि जिससे ग्राम में आनन्द फैलाने के साथ, छः महीने के अवकाश में जो साक्षरता छात्रों को दी जाती है, उसकी रक्षा और वृद्धि भी की जाती है।

कारण नं० (३) पाठ्यक्रम—यदि भले ही मान लिया जाय कि सयाने कृषकों ने २-३ वर्ष तक बराबर उपस्थिति देकर पढ़ना स्वीकार किया और अध्यापक तथा छात्रों ने अपना काम भी ठिकाने से किया, तो भी इन पाठशालाओं से कृषकों को कितनी जानकारी प्राप्त होती थी ? उनके पाठ्य-क्रम में भूगोल तथा अन्य विषय और उनकी गणित पुस्तकें वही थीं जो प्राथमिक पाठशालाओं में जारी थीं। हमने एक जगह पर कहा है कि प्राथमिक कक्षाओं और उनके प्रचलित पाठ्य-क्रम का ध्येय अँगरेजी स्कूलों का अभ्यास सँभालना ही है। अतएव इन प्रौढ़-पाठशालाओं के पाठ्य-विषय में मिश्रित जोड़-बाक़ी, दशमलव और भौगोलिक परिभाषायें, प्रसिद्ध नगरों की सूची इत्यादि का समावेश था। बालकों के लिए लिखी हुई किताबों में पढ़ने के लिये, लिखे हुए पाठों में बिल्ली-कुत्ता, भालू-बन्दर आदि की कहानियाँ भरी रहती हैं। क्या यह क़िस्सा-कहानियाँ सयानों को भी आकर्षित कर सकती हैं ? और मानलो कि उन्होंने पढ़ना स्वीकार किया तो इन कहानियों की उपयोगिता कृषकों के जीवन में कहाँ ? सारांश यह कि २-३ साल का लम्बा-चौड़ा पठनकाल, रूक्षशिक्षा तथा पाठशालाओं द्वारा दिये जानेवाले ज्ञान की अनुपयुक्तता आदि बातों की ओर ध्यान दिया जाय तो अवश्य कहना पड़ेगा कि इससे कृषकों ने यदि कुछ लाभ नहीं उठाया, तो इसमें उनका दोष नहीं था। और आज भी जहाँ इसी ढंग से स्कूल जारी किये जाते हैं, उनकी असफलता का दोष किसानों के ऊपर लादना अनुचित है। यह शिक्षा-प्रचारकों की दिशा-भूल का परिणाम है।

कारण नं० (४) अध्यापक का निर्वाचन—सन् १८९७-९८ व सन् १९०१-०२ के पञ्चवर्षीय पर्यालोचन रिपोर्ट में बम्बई प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब कहते हैं:—

"...इसके अतिरिक्त यह भी विचार करने की बात है कि इन पाठशालाओं (रात्रि-पाठशालाओं) के चलाने के लिए उन पाठ-शालाओं के अध्यापक नियत किये जाते हैं, जो स्कूल में दिन भर चिल्लाते-चिल्लाते तंग आजाते हैं। कहीं-कहीं इन अध्यापकों को पोस्ट आफ़िस का भी काम करना पड़ता है, ऐसी दशा में उन विश्रान्त अध्यापकों से ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य में पूर्ण सहयोग मिलने की क्या आशा की जा सकती है ?"

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यापकों के निर्वाचन-सम्बन्धी प्रौढ़-पाठशालाओं के विषय में डाइरेक्टर साहब ने जो आक्षेप किया है, वह सर्वथा सत्य है। यदि डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यापक अपना कार्य उत्तरदायित्व पूर्ण समझकर करें, तो उनमें न पोस्टआफ़िस, न रात्रिपाठशाला चलाने की शक्ति रह सकती है। अध्यापकगण स्कूल में पढ़ाने के अतिरिक्त कहीं-कहीं प्राइवेट ट्यूशन या स्वकीय शिक्षादान का कार्य भी करते हैं। कहीं-कहीं पोस्ट आफ़िस का और कहीं-कहीं काँजी हाउस का भी काम करते हैं। इन बातों से जीवन-कलह में संसार के साथ शान से रहने के लिये, उनमें अर्थ-लोलुपता बढ़ रही है; यही प्रकट होता है और ऐसा करने में न तो बालकों के शिक्षादान का कार्य, और न अन्य उठाये हुए कार्य ही संतोषजनक किये जा सकते हैं। डाइरेक्टर साहब का कथन है कि डिस्ट्रिक्टबोर्ड के मास्टर थके-माँदे रहने के कारण प्रौढ़-पाठशाला चलाने में यथेष्ट सहयोग दे सकते नहीं, केवल यही एक ही आक्षेप है। इसके अतिरिक्त यह भी सही है कि अध्यापकों की आत्म-प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में विचित्र विचार हो रहे हैं, और इसके कारण भी हैं। देहात में बहुत कम पढ़े-लिखे मनुष्य रहने के कारण हमारे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यापक 'अरण्य पण्डित' ही हैं। आजकल के समय में देहात में जो अधिक चालाक हो वही अधिक ज्ञानी समझा जाता है।

ऐसे दूषित वातावरण के कारण अध्यापक भी वैसे ही हो जाते हैं। अनुपस्थित रहना और फ़र्ज़ी कार्यवाही करना तो उनका दैनिक कार्य हो गया है। देहात की राजनीतिक परिस्थिति भी अध्यापकों के लिये अत्यन्त उत्तेजनादायक तथा शैक्षणिक कार्य के लिये अनुचित बन रही है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बरों का चुनाव, लेजिसलेटिव असेम्बली के मेम्बरों का चुनाव आदि तथा पार्टी-बन्दियाँ देहात में बराबर चलती रहती हैं। इनका नेतृत्व—छिपा वा खुला—अध्यापक को करना ही पड़ता है, वा उसके करने का मोह लगा ही रहता है।

जहाँ अध्यापक की पार्टी के मेम्बर का चुनाव अनुकूल होगया वहाँ उसे भी कोई चिन्ता रह नहीं जाती, वह परम स्वतन्त्र निर्द्वन्द हो जाता है। अध्यापकों के आचरण तथा कार्यों का निरीक्षण बहुत हुआ तो डिप्टी-इन्स्पेक्टर वर्ष में एक बार कर सकते हैं। इतना होने के पश्चात् भी डिप्टी-इन्स्पेक्टर की रिपोर्ट की समालोचना करने का और अन्तिम आज्ञा देने का उत्तरदायित्व शिक्षा कमेटी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुने हुए मेम्बरों के ऊपर है। ऐसी परिस्थिति में हमारा पूरा विश्वास है कि इन अध्यापकों से प्रौढ़-शिक्षा में सहायता मिलने की आशा व्यर्थ है।

यू० पी० सहकारी-विभाग ने पहले पहल सन् १९२९-३० में बनारस, लखनऊ और प्रतापगढ़ जिलों में प्रौढ़-पाठशाला चलाने के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अच्छे-अच्छे अध्यापकों को नियुक्त किया था। दैव-वशात् इन पाठशालाओं के निरीक्षण करने का कार्य लेखक के ऊपर पड़ा। अध्यापकों की अनुपस्थिति और झूठी कार्यवाही देखकर चित्त व्याकुल होगया। अन्त में सन् १९३१ से सहकारी-विभाग से यह नीति निश्चय करनी पड़ी कि किसी प्रौढ़-पाठशाला में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अध्यापक न नियत किया जाय। इसके विपरीत जिला फ़ैज़ाबाद के मसौदा ग्राम-सुधार-क्षेत्र में जब प्रौढ़-पाठशालाएँ जारी की गईं तब ग्रामीण प्रभावशाली वरों के सुशिक्षित बेकार लड़कों को ट्रेण्ड करके अध्यापक बनाया। इसका फल यह हुआ कि प्रौढ़-शिक्षा का कार्य ग्राम-सुधार के साथ तीव्रता से चल निकला। अब ग्रामीण लिखे-पढ़े

नवयुवकों को प्रौढ़-पाठशालाओं के अध्यापक नियुक्त करने की नीति ग्राम-सुधार-विभाग और सहकारी-विभाग और केनडैवलपमेण्ट विभागों से स्वीकृत होगई है। ग्रामीण पढ़े-लिखे मनुष्य को नियुक्त करने से शिक्षा के अतिरिक्त ग्राम-सुधार का काम भी ठिकाने से चलता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात प्रौढ़-शिक्षा में यह है कि प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के पश्चात् उनकी साक्षरता स्थिर रखना। गाँव का लिखा-पढ़ा मनुष्य जो स्थायी रूप से गाँव का रहनेवाला हो गाँव में साक्षरता की रक्षा और वृद्धि करता है। अध्यापकों के निर्वाचन के सम्बन्ध में हमने अपने विचार विशेप रूप से "प्रौढ़-पाठशाला का प्रबन्ध" नामक अध्याय में प्रकट किये हैं।

कारण नम्बर (५) प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य—शिक्षाविभाग ने जब प्रौढ़-पाठशालाएँ जारी की थीं तब प्रौढ़-पाठशालाओं का कार्य केवल साक्षरता-प्रसार नियत किया था और आज भी जहाँ शिक्षा-विभाग से प्रौढ़-पाठशालाएँ चल रही हैं वहाँ भी उसका मन्तव्य यही संकुचित ध्येय रखा गया है। हम ऊपर कह चुके हैं कि कृपकगण प्रौढ़-पाठशाला की ओर व्यावहारिक दृष्टि से देखते हैं। उनके विचार से साक्षरता से न तो आर्थिक लाभ, न मनोरञ्जन, और न ज्ञान-बोध हो सकता है। उनके इस कथन में बहुत-सी सत्यता भी है। यह विधान कोई भी न मान सकेगा कि जितने निरक्षर हैं वह सब मूर्ख हैं और जितने साक्षर हैं वह सब ज्ञानी हैं। इसके विपरीत कहीं-कहीं पठित-मूर्ख और अपठित-चतुर भी मिलते हैं। केवल साक्षरता साक्षरता के लिये हो, इसका रहस्य समझना कठिन है। यदि साक्षरता इष्ट है, तो किसी काम की तो रहे। उस साक्षरता के साथ ज्ञानवृद्धि, सभ्यता की रक्षा, मनोरञ्जन में अधिकता और सुयोग्य नागरिकत्व, इनका मिला देना आवश्यक है। व्यावहारिक दृष्टि से साक्षरता साधन है, साध्य नहीं है। किन्तु खेद की बात यह है कि शिक्षा-विभाग ने प्रौढ़-शिक्षा को साक्षरता-प्रसार का अपना अन्तिम ध्येय ही बना लिया है। आगेवाले अध्याय में हम पाठशाला के मन्तव्य के विषय

में विस्तारपूर्वक विचार करना चाहते हैं। इस स्थल पर इतना ही कहना चाहते हैं कि केवल साक्षरता को ही प्रौढ़-पाठशाला का अन्तिम ध्येय रखना प्रौढ़-पाठशालाओं की असफलता का कारण है।

पाठकों के सम्मुख शैक्षणिक विषय में भारतीय समाज की और एक विशेषता उपस्थित करना चाहते हैं और वह यह कि भारतवर्ष में वंशगत साक्षर जातियों और निरक्षर जातियों (Traditionally literate and traditionally illitertate) की परम्परा मिलती है। जो जातियाँ निरक्षर हैं, वे साक्षरता का महत्त्व समझती ही नहीं, और जो साक्षर हैं उनके बच्चे बचपन में ही साक्षर हो जाते हैं। साक्षरता का प्रचार हमें विशेषतः निरक्षर जातियों में करना है। जब तक प्रौढ़-शिक्षा की योजना निरक्षरों के काम की न होगी तब तक वह उनके विचार से अग्राह्य ही बनी रहेगी।

कारण नम्बर (६) शिक्षा-विभाग—हमने प्रौढ़-पाठशालाओं के असफल होने के ५ कारण दिये हैं। उनमें से पहला कारण यह दिया है कि इन पाठशालाओं की शिक्षाशैली क्लिष्ट और रूक्ष थी। यह प्रौढ़ों के मनोविज्ञान पर निर्धारित नहीं थी। क्या शिक्षा-विशारद यह बात भी नहीं जान सकते थे कि बालकों का मस्तिष्क और प्रौढ़ों का मस्तिष्क भिन्न-भिन्न होता है? दूसरा कारण यह दिया है कि प्रौढ़ों के लिये पाठ्य-काल लम्बा चौड़ा ३ वर्ष का रखा था। वे गम्भीरता से सोचते कि कृषक इतनी अवधि तक पढ़ने में धैर्य न रख सकेंगे और ऐसा कार्य-क्रम अव्यवहार्य होगा। क्या वे यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते तो बिल्ली-कुत्तों की कहानियों के स्थान पर कृषकों के पढ़ने के योग्य उपयुक्त क्रमिक पुस्तकें प्रचलित न कर सकते थे? सम्भव है कि अध्यापकों के निर्वाचन में अपने विभाग के अध्यापकों को महत्त्व देते और उसमें कुछ सीमा तक असफलता उठाते। परन्तु, ऊपर जो हमने तीन असफलता के कारण दिये हैं सो क्यों रहे? इसका प्रधान कारण यह है कि शिक्षाविभाग के अधिकारी प्रौढ़-पाठशालाओं को चलाना अपना मुख्य काम नहीं समझते थे। प्रौढ़-पाठशालाएँ चलाने के लिये

कहा गया और उन्होंने बिना गम्भीरता से अनुसन्धान किये पाठशालायें चलाई। प्रौढ़-पाठशाला का मन्तव्य निश्चित करने में जो भूल हुई और होती है, इसमें उनका दोष नहीं है; क्योंकि संसार के शिक्षा-विशारद कुछ संकुचित क्षेत्र में विचरण करते हैं। बालकों की बुद्धि कुशाग्र करना, भूगोल, इतिहास, तथा वाङ्मय में प्रवीणता दिखाना, यही तो उनके मुख्य धन्धे हैं। अधिकतर शिक्षा-विशारद शैक्षणिक संस्था-भवन के भीतर ही भ्रमण करते हैं। जगत् के द्वन्द्व से उनका कम मतलब रहता है। सत्य बात तो यह है कि प्रौढ़-शिक्षा का कार्य शिक्षा-विभाग का नहीं है। "रायल कमीशन ऑन एग्रीकलचर" की रिपोर्ट में लार्ड लिनलिथगो साहब ने यह बात बड़े मार्मिक शब्दों में कही है। अपने आलोचन में वे लिखते हैं, "पञ्जाब के सहकारी विभाग द्वारा प्रचलित की गई प्रौढ़-पाठशालाएँ तथा उक्त प्रान्त में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा चलाई गई रात्रि-पाठशालाएँ, इन दोनों का तुलनात्मक अवलोकन करते हुए कहना पड़ेगा कि प्रौढ़-शिक्षा का उत्तरदायित्व सहकारी विभाग पर छोड़ देना चाहिये।" प्रश्न मार्मिक रहने के कारण और शिक्षा-विभाग को निरुत्साह न करने के विचार से यह बात अधिक विस्तार से नहीं कही, पर इसका गर्भित भाव प्रकट किया है। सत्य बात तो यह है कि प्रौढ़-शिक्षा का कार्य अधिकतर सयाने कृषकों में ही करना है। यह कार्य वही सुयोग्यता से कर सकता है जो रात्रि-दिन उनके और कृषकों के विचारों से अपना मस्तिष्क घर्षण करता है। यह कार्य उसका ही है जो कृषकों की रीति-रिवाज, आचार-विचार, उनके भाव, उनकी रुचि, और अरुचि, उनकी सामाजिक और धार्मिक भावनाएँ तथा उनकी ढकोसले-बाजी आदि को भलीभाँति जानता है और इसके साथ यह भी जानता है कि किस खूबी से काम लिया जाय। प्रौढ़-शिक्षा की व्यावहारिक योजना उसी विभाग से प्रचलित हो सकती है जो कृषकों की समस्याएँ, उनकी त्रुटियाँ तथा भावनाएँ जानता है। प्रौढ़-शिक्षा का कार्य सहकारी-विभाग या ग्राम-सुधार-विभाग का ही हो सकता है और प्रौढ़-शिक्षा से देहाती समाज का पुनरुत्थान इन्हीं विभागों से हो सकेगा।

आठवाँ अध्याय

प्रौढ़-शिक्षा का उद्देश्य

हम गत अध्याय में लिख चुके हैं कि जब तक प्रौढ़-पाठशालाएँ शिक्षा-विभाग के अधिकारियों के निरीक्षण में रहीं तब तक उनके पढ़ाने का ढङ्ग, उनका उद्देश्य और पाठ्यक्रम प्राथमिक शिक्षा की पुनरावृत्तिमात्र था। प्रौढ़ छात्रों को वही बातें पढ़ाई जाती थीं, जो प्राथमिक कक्षाओं के बालकों को पढ़ाई जाती थीं। इनके पठन-पाठन के ढङ्ग भी वैसे ही थे। अन्तर केवल इतना था कि बालक दिन में और प्रौढ़ रात्रि में पढ़ाये जाते थे। हम यह भी प्रकट कर चुके हैं कि शिक्षा-विभाग के अधिकारियों की प्रौढ़-शिक्षण की योजना सर्वथा त्रुटिपूर्ण थी, किन्तु कार्य्य के व्यावहारिक स्वरूप को देखते हुए हम इतना अवश्य कहेंगे कि जब से प्रौढ़-शिक्षा के निरीक्षण का भार सहकारी विभाग के अधिकारियों ने अपने ऊपर लिया है तब से प्रौढ़-शिक्षा के उद्देश्यों के सफल होने का भविष्य स्पष्ट झलकने लगा है। इस स्थल पर हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि अन्य देशों में प्रौढ़-शिक्षा को किस अर्थ से सम्बोधित करते हैं अर्थात अन्य राष्ट्रों में प्रौढ़-शिक्षा की परिभाषा क्या की जाती है। प्रौढ़-शिक्षा का प्रचार इंगलैण्ड, अमेरिका, डेनमार्क, स्विटज़रलैण्ड आदि देशों में हो रहा है। डेनमार्क तथा जर्मनी की 'फोकशूलन' नाम की प्रौढ़-पाठशालाएँ संसार प्रसिद्ध हैं। खास इंगलैण्ड में "वर्कमेन्स-नेशनल-एसोसियेशन" तथा विश्वविद्यालयों की ओर से जो ज्ञान प्रौढ़ों को दिया जाता है उसे वहाँ भी प्रौढ़-शिक्षा ही कहते हैं, यद्यपि साक्षरता का प्रश्न उस देश में नहीं है; क्योंकि वहाँ बहुत समय से अनिवार्य शिक्षा प्रचलित होने के कारण सभी लोग साक्षर हैं। वहाँ प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ देश के लोगों को सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक उन्नति के विषय

में भाषण द्वारा ज्ञान देना और साम्यवाद, अर्थशास्त्र, पूँजीवाद तथा राष्ट्रीय समाजवाद के नये-नये सिद्धान्तों का प्रचार करना है। तात्पर्य यह कि श्रमजीवियों को या जिनको कार्य की अधिकता के कारण सामयिक विचारों की हलचल का ज्ञान प्राप्त करने के लिये समय नहीं मिलता, उन्हें उक्त विषयों का सुसङ्गत ज्ञान देकर उनके मानसिक क्षेत्र का विकाश किया जाता है।

अब यहाँ सूक्ष्म-दृष्टि से हमें यह विचार करना है कि इस प्रकार की प्रौढ़-शिक्षा हमारे समाज में पहले कभी थी या नहीं, यदि थी तो किस ढङ्ग से। आज से ८० वर्ष पूर्व का सामाजिक इतिहास उठाइये तो पता चलेगा कि कथावाचक, प्रवचन-कर्त्ता तथा कीर्त्तनकार देश के कौने-कौने में घूम-घूम कर सर्व साधारण की ज्ञान-वृद्धि करने तथा उनको वहुश्रुत वनाने का कार्य करते थे। हम इस विषय में चतुर्थ अध्याय में पर्य्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। अतः यहाँ पृष्ठ-पेषण की आवश्यकता नहीं।

भारतवर्ष का वहुजन-समाज, विशेषतः पिछड़ी हुई जातियों के मनुष्य, आधुनिक शासन-पद्धति एवं संसार के नये-नये परिवर्त्तनों के साधारण ज्ञान से भी अनभिज्ञ हैं। इसके अतिरिक्त उनके हृदय में चिन्ता, कार्य्यों में उदासीनता और चेहरों पर मुर्दापन है। हमें अपने किसानों की मनहूसी दूर करने और उनमें ज्ञान का प्रचार करने के लिये ही प्रौढ़-शिक्षा का प्रचार करना अपना मुख्य ध्येय वनाना है। किसान निरक्षर हैं, यदि वे साक्षर होते तो उपर्युक्त त्रुटियों के निराकरण का उपाय सोचते।

गत ५-६ अध्यायों में प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में हमने अपने विचारों से पाठकों को परिचित किया है। इस स्थल पर प्रौढ़-शिक्षा की व्याप्ति तथा उसकी परिभाषा देना उचित होगा। प्रौढ़-शिक्षा की जो व्याप्ति और परिभाषा एक सुशिक्षित, सुसंस्कृत तथा राष्ट्रीय भावों से प्रेरित सज्जन व्यापकता से करेगा, वही हमारी परिभाषा और

व्याप्ति है; क्योंकि राष्ट्रीय आकांक्षा और भावना को मूर्त्त स्वरूप देना यही शिक्षा-प्रदान का मुख्य मन्तव्य है।

उद्देश्य

(१) आजकल का समय देखकर भारतवर्ष के कृषक तथा मजदूरों को लिखना-पढ़ना आना चाहिये अर्थात् उनको साक्षर बनना चाहिये। किन्तु, यह साक्षरता साधन समझी जाय न कि साध्य। संसार के समाचार पढ़ने के लिये, चालाकों के चंगुल से बचने के लिये, दैनिक कारबार में चिट्ठी-पत्री तथा अर्जी रसीद लिखने के लिये साक्षरता की काश्तकारों को अत्यन्त आवश्यकता है।

(२) किसानों को स्वास्थ्य-सुधार, कृषि की उन्नति तथा राजनीतिक ज्ञान भी रहना चाहिये, जिससे उनकी आर्थिक दशा और शारीरिक स्थिति ठीक हो तथा वे अपना रहन-सहन और घर-गृहस्थी का काम सुचारु रूप से चला सकें।

(३) कृषकों को जीवन के रहस्य का स्वाद लेने के लिये ऐसी ही शिक्षा देनी चाहिये, जिससे वे अपना अवकाश का समय सात्त्विक मनोरंजन से व्यतीत करें और देहाती जीवन से आनन्द उठावें।

(४) कृषकों को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे उनमें ऐसी आदतें और भावनायें पैदा हों कि वे ग्राम में संघटन से रहें और देहाती जीवन तथा ग्राम-निवास में अपना गौरव समझें।

(५) किसानों को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे गाँव तथा प्रान्तीय शासन की जानकारी रख सकें और विशेषतः अपने गाँव का सार्वांगिक शासन सुचारु रूप से चलाने के लिये सहयोग दें।

(६) किसानों को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे अपने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में अधिक सफल तथा कार्य-क्षम हों।

(७) ग्रामीणों को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे उनमें सद्भाव, संतोष, सत्यप्रियता और ईमानदारी बढ़े।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हमारी प्रौढ़-पाठशाला का स्वरूप कैसा रहना चाहिये यह भी निश्चय करना आवश्यक होगा। जिसे हम आज प्रौढ़-पाठशाला कहते हैं, उसे उस नाम से सम्बोधित करना ठीक न होगा। किन्तु, योग्य शब्द के अभाव में हमें उसे प्रौढ़-पाठशाला नाम से ही सम्बोधित करना पड़ता है, यही हमारी लाचारी है। जिस कक्षा में देहात के सयानों को शिक्षा दी जाती है उसे पहले से ही हमें एक सर्व-प्रिय सामाजिक संस्था का रूप देना उचित होगा, जिसमें गाँव के लोग ऊटपटाँग तथा प्रसङ्गानुसार आनेवाली समस्याओं पर वाद-विवाद कर सकें और जहाँ ग्राम-वासी सानन्द बैठकर हँसी-मजाक करके अपनी थकावट दूर कर सकें। कहना न होगा कि उनको ऐसे अनियन्त्रित अधिवेशनों से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होगा। अतएव प्रौढ़-पाठशालाओं को जनता के कल्याणार्थ सर्व-प्रिय संस्था का रूप देना ही अधिक श्रेयस्कर होगा। इस संस्था को हम भजन-मंडली के नाम से पुकारें तो देहात के रहनेवाले सहज ही उससे प्रीति करने लगेंगे। पर, विवशता के कारण हम इन्हें प्रौढ़-पाठशाला के नाम से ही सम्बोधित करते हैं। इसका पहला कारण तो यह है कि पठित समाज में प्रौढ़-पाठशाला शब्द अत्यधिक प्रचलित है। दूसरी लाचारी यह है कि हमें भजन-मंडली के द्वारा प्रौढ़ों को साक्षर भी बनाना है। उन्हें अन्य पाठशालाओं की भाँति नागरिक-शास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि विषयों का लगभग वैसा ही ज्ञान अन्य दृष्टि-कोण से देना है। परन्तु, प्रौढ़-पाठशाला का सच्चा मन्तव्य सामाजिक संस्था या भजन-मण्डली से ही पूर्ण हो सकता है। हम अध्यापकों को यह बता देना चाहते हैं कि इन प्रौढ़-पाठशालाओं के द्वारा साक्षरता और अन्य विषयों के ज्ञान का कार्य्य छः महीने में

समाप्त हो जायगा। किन्तु, हमारी भजन-मंडलियाँ चिरकाल तक ज्यों की त्यों बनी रहेंगी। जब छः महीने में नियमित रूप से पढ़ाई पूर्ण हो जाय तब उन प्रौढ़-पाठशालाओं के छात्र इस भजन-मण्डली के सदस्य बन जायँ और प्रौढ़-पाठशाला के सदस्य पाठशाला-भवन में सप्ताह में एक बार गाने-बजाने के लिये एकत्र हों। गाँव के छोटे-मोटे झगड़े भी उसी में तय करें। कभी-कभी अखाड़ों में कुश्ती, खेतों में कबड्डी आदि खेल भी खेले जायँ। अधिकतर सायंकाल एक घण्टा आल्हा, कथा, भागवत और विश्राम-सागर इत्यादि का पठन-पाठन हो और गाँव में स्थापित वाचनालय से लाभ उठाएँ। सयाने लोग पाठशाला-भवन में दुनियादारी की बातें, वाद-विवाद एवं पञ्चायतें भी करें। प्रौढ़-पाठशाला-मन्दिर में किसानों को तम्बाकू पीने की मनाही न रहे। मन में सदा यही विचार रखा जाय कि थके-माँदे किसान लोग मनोरञ्जनार्थ ही यहाँ आते हैं। परन्तु अध्यापकों को यह याद रखना चाहिए कि छात्र शिक्षा-काल में चिलम या हुक्का न पियें और न ढीले-ढाले बेहूदा ढंग से बैठें। जब तक अध्यापक पढ़ाता रहे तब तक वे सभ्यता के साथ काम करें।

अब पाठकों को विदित हो गया होगा कि हम साक्षरता का ज्ञान देने के लिये गाँव-गाँव में मण्डलियाँ स्थापित करना चाहते हैं। यह मण्डलियाँ गाँवों में उत्तरोत्तर उन्नतिशील ग्राम-सुधार के भावी अंकुर हैं, जो कालान्तर में अनुकूल जलवायु से पल्लवित होकर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो जायँगे और उनकी छत्र-छाया में गाँव के लोग अपनी उन्नति तथा आकांक्षा पूर्ण कर सकेंगे। हमारी प्रौढ़-पाठशालाएँ जीवन के प्रत्येक अङ्ग में सहकारिता बढ़ानेवाली ऐसी ही सामाजिक संस्थाएँ होनी चाहिये, जिनका सूत्रपात केवल साक्षरता के प्रसार से ही हो जाता है।

हमने अपनी शिक्षा-प्रणाली में दो विशेष अङ्गों पर बल दिया है। एक तो प्रौढ़-पाठशाला का अध्यापक ग्राम का स्थायी निवासी रहे और हो सके तो ग्राम के प्रभावशाली कुटुम्ब का शौक़ीन युवक हो; क्योंकि ग्राम में उसकी खेती-बारी अथवा जीवन के अन्य सम्बन्ध रहते हैं। वह केवल नौकरी के विचार से ग्राम छोड़कर न जायगा, वरन् समाज-सेवा की प्रेरणा उसके हृदय में उत्पन्न होने के कारण ग्राम के उद्धार में अधिक प्रयत्नशील होगा। दूसरा अङ्ग यह कि बिना ट्रेनिङ्ग दिये प्रौढ़-पाठशाला का काम किसी अध्यापक को न दिया जाय। अध्यापक के ट्रेनिङ्ग की अवधि कम से कम डेढ़ महीना की रहती है। इस ट्रेनिङ्ग में पाठन-शैली तथा शिक्षा के मन्तव्य के अतिरिक्त देहात के खेल-कूद गाने और स्काउटिंग की शिक्षा दी जाती है। और, विशेषतः ग्राम का कार-बार सहकारी-सिद्धान्त से कैसे चलाया जाता है एवं ग्रामीण नेता और प्राथमिक सहकारी-संस्था के मन्त्री का कार्य कैसे सम्पन्न किया जाता है इसकी शिक्षा अध्यापक को दी जाती है।

शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा-प्रणाली देहातियों की अभिरुचि रहने के कारण सायंकाल के समय ३०—३५ प्रौढ़ स्वयं स्फूर्ति से इकट्ठा होते हैं। सहकारी-प्रचारक ऐसा अवसर अपने हाथ से नहीं जाने देता। सहयोग-शिक्षा प्राप्त किये हुए अध्यापकों के नेतृत्व में, अल्पकाल में ही वह सहकारी-जीवन-सुधार-समिति स्थापित करता है। इस समिति के द्वारा छोटे-मोटे गाँव के झगड़े गाँव में ही मिटाये जाते हैं; सर्वसाधारण को औषध देने का प्रबन्ध किया जाता है; छोटी तङ्ग गलियाँ चौड़ी और स्वच्छ कराई जाती हैं; नवयुवकों को उत्साहित करके गाँव के आने-जाने के रास्तों को ठीक कराया जाता है; चन्दा करके बाँस और फूँस से ग्राम-वासियों के उठने-बैठने के

लिये पञ्चायतघर बनवाया जाता है; अवसर आने पर बिगड़े हुए कुओं का जीर्णोद्धार चन्दे से ही कराया जाता है और त्यौहार और उत्सव सामुहिक ढंग से मनाने के कारण गाँव में आनन्द का प्रसार किया जाता है। सारांश यह कि आर्थिक उत्तरदायित्व छोड़ कर ग्राम-सुधार के कार्य "सहकारी-जीवन-सुधार-समिति" द्वारा किये जाते हैं।

धीरे-धीरे ग्रामीणों में जैसे-जैसे उत्साह बढ़ता, संघटन फैलता और अध्यापक को ग्राम-वासियों की ईमानदारी का परिचय होता है वैसे ही वह, अल्प-मात्रा में, आर्थिक उत्तरदायित्व रखनेवाली सोसायटी भी जारी करता है। जैसे; छोटे-मोटे उद्योग धन्धे। मेल और ईमानदारी जैसे बढ़ती है वैसे ही क़र्ज़ा देने वाली "सहयोग समिति" गाँव में बना लेता है क्रमशः इकट्ठा अनाज बेचने के लिये तथा ग्राम में सिंचाई की सुविधा करने के लिये मारकेटिंग (क्रय-विक्रय) तथा इरीगेशन (सिंचाई) संबंधी सोसायटी स्थापित करता है। इस विचार से प्रौढ़-पाठशाला भावी "विपुलोद्देश्य-सहकारी-समिति" (Multipurpose co-operative society) बनाने की पूर्व भूमिका वा प्रथम श्रेणी है।

पाठकवृन्द प्रौढ़-पाठशाला का उद्गम और उसके सम्मुख रखा हुआ भावी सुखमय-स्वप्न-सा मन्तव्य देखकर कदाचित् साशंक होंगे। इस विचार से इस स्थल पर, इसी प्रकार की समस्या एक अन्य देश में उत्पन्न होने पर उसने उसकी पूर्त्ति किस प्रकार की, इसका एक जीता-जागता दृष्टान्त हम पाठकों के समक्ष रखना चाहते हैं।

योरुप महाद्वीप में 'डेनमार्क' नाम का एक द्वीप है जिसका क्षेत्रफल युक्तप्रान्त के तीन ज़िलों के समान है। वहाँ की भूमि अनुर्वर है; क्योंकि उसका चतुर्थांश रेत से परिपूर्ण है। समुद्र और उसका धरातल

लगभग बराबर है। देश में खनिज द्रव्य की दशा भी शोचनीय है। उसके तीन चतुर्थांश में कृषि हो सकती है। आज से ७५ वर्ष पूर्व वहाँ के किसानों की दशा अत्यधिक शोचनीय थी। शिक्षा का अभाव भी हमारे यहाँ के ही अनुरूप था। देश में दिन पर दिन अनियन्त्रण तथा बेकारी बढ़ रही थी। ऐसी हीनावस्था को देखकर "फादर ग्रुण्डविग" (Father Grundtvig) नाम के एक पादरी को तरस आया। उसने वहाँ की इस दुर्दशा को सुधारने का दृढ़ संकल्प कर लिया। इन महात्मा का हृदय सद्भाव और प्रेम से ओत-प्रोत था। उन्होंने प्रेम और श्रद्धा पर जोर देकर प्रौढ़ों के लिए एक, छोटी-सी सहकारी-शिक्षा-संस्था क़ायम की, जिसका नाम 'फ़ोक शूलन' (Folk-schulen) या 'जनता की पाठशाला' रखा गया। प्रौढ़ों के पढ़ने के लिए वहाँ इन पाठशालाओं का अभ्यास-क्रम केवल ६ मास का रक्खा गया था। उनमें लौकिक विषय जैसे दूध-मक्खन का व्यापार, गोरक्षा और पशुओं की नसल बढ़ाना आदि की शिक्षा भी दी जाती थी। पादरी महाशय ने अपने आचरण एवं सदुपदेशों से प्रौढ़-छात्रों पर सद्भाव, श्रद्धा, सदाचार और ईश्वर-भक्ति का अनोखा प्रभाव डाला। वे सद्भाव पर विशेष बल देते थे। वहाँ 'फ़ोक शूलन' पाठशालाएँ स्थापित करने का परिणाम यह हुआ कि सभी प्रौढ़ स्त्री-पुरुष अल्प काल ही में सुशिक्षित हो गये। अपना व्यवसाय, परिश्रम और ईमानदारी से करने लगे। अपना आचरण-विचार पवित्र रखने लगे। पादरी साहब के योग्य शिष्य उनका नाम अजर-अमर बनाये रखने के लिये आज तक यत्र-तत्र पाठशालाएँ खोलते जाते हैं। इन पाठशालाओं का वायुमण्डल आजतक सद्भाव से गूँज रहा है। इन स्कूलों में उद्योग-धंधों का संचालन सहकारिता से करना सिखाया जाता है। ईमानदारी और ईश्वरभक्ति वहाँ के सहकारी विभागों का आधार है। यही कारण है कि वहाँ की सहकारी समितियाँ बराबर उन्नति कर रही हैं।

अपने यहाँ की सहकारी-समितियों के द्वारा हम जो अभी तक देश का नव-निर्माण नहीं कर सके, इसका विशेष कारण यह है कि हमारे सहकारी-विभाग के सुपरवाइजर तथा ग्रूपसेक्रेटरी पटवारियों की भाँति चतुर हो रहे हैं। उनकी शिक्षा का प्रभाव सहकारी-समिति के सदस्यों पर भी बहुत कुछ पड़ा है। जिस संस्था की नींव चालाकी और बेईमानी पर खड़ी हो, वह कभी उन्नति नहीं कर सकती। उन्नति तो सामान्य जनता में ईमानदारी, सद्भाव, अटल ईश्वर-भक्ति एवं धर्मभीरुता उत्पन्न करने और बढ़ाने से हो सकती है। यदि हम देश की उन्नति चाहते हैं तो हमें डेनमार्क का आदर्श अपने सामने रखकर चलना पड़ेगा।

द्वितीय खण्ड

शैक्षणिक विवेचन

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तथा शिक्षा-शैली

का

विवेचन

नवाँ अध्याय

प्रौढ़ों की मनो धारणा

भारत की सर्वसाधारण जनता में यह धारणा फैली है कि 'बुड्ढे सुग्गे' नहीं पढ़ पाते अर्थात् शिक्षा-ग्रहण के लिये बाल्यावस्था ही सर्वोत्तम है। पश्चिमीय देशों में भी इसी प्रकार की धारणा उनकी कहावतों से प्रकट होती है। वहाँ कहा जाता है कि बुड्ढे कुत्ते को नये हुनर सिखलाना कठिन है। इस प्रकार की धारणा सामान्य जनता में रहे तो बहुत आश्चर्य की बात नहीं, वरन् ८ या १० वर्ष पूर्व मनोवैज्ञानिकों में भी यही धारणा थी। अमेरिकन मनोवैज्ञानिक मिस्टर जेम्स ने 'प्रौढ़ों को नई बात सीखने में कौतूहल दिन प्रतिदिन कैसे कम होता है' इस सम्बन्ध में निम्नलिखित अभिप्राय लिखा है। वे कहते हैं:—

"अपने व्यवसाय की बातें छोड़कर आदमी २५ साल के भीतर जितनी नई-नई बातें ज्ञात कर लेता है उतनी ही उसके पास रहती हैं। इसके पश्चात् वह नई बातें नहीं सीख सकता, केवल कौतूहल के लिये सीखने की जिज्ञासा बनी रहती है; मानसिक ढर्रे दृढ़ बन जाते हैं; नई बातें अपनाने की शक्ति निकल जाती है। कहीं-कहीं विरले व्यक्ति इसके विपरीत वृद्धावस्था में नई बात सीखने का कौतूहल रखनेवाले मिलते हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि साधारणतः प्रौढ़ावस्था में जिज्ञासा-शक्ति क्षीण हो जाती है।"

डाक्टर हालिंग वर्क ने एक स्थान पर कहा है कि—

"१८ साल के पश्चात् प्रयोगशाला में, प्रौढ़ों की मानसिक क्रिया के सम्बन्ध में बहुत कम नाप लिये गये हैं। साधारणतः प्रतीत होता है कि शारीरिक पूर्ण वृद्धि होने के पश्चात् व्यक्ति की जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे-वैसे उसकी शिक्षा-ग्रहण की शक्ति कम हो जाती है, केवल प्राप्त की हुई चतुराई और प्राप्त किये हुए पूर्व ज्ञान के पूर्ण उपयोग की शक्ति मात्र ही शेष रहती है।"

ऊपर उद्धृत किये हुए मनोवैज्ञानिकों के अनुमान अधिकतर उनके अनुभव तथा कल्पना के ऊपर निर्धारित थे, किन्तु कोलम्बिया यूनीवर्सिटी के प्रोफ़ेसर डाक्टर ऐडवर्ड एन थैरेनडाइक के नेतृत्व में प्रौढ़ों की मनोधारणा के सम्बन्ध में विस्तृत प्रयोग तथा उनकी मानसिक क्रिया के नाप लिये गये हैं। इस अन्वेषण कमेटी में डाक्टर थैरेनडाइक के अतिरिक्त डाक्टर ब्रिगमन, डा० टिल्टन तथा डा० गुडयार्ट इत्यादि मनोवैज्ञानिक भी काम करते थे। अन्वेषण करने का व्यय कार्नेगी कारपोरेशन से मिला था। कमेटी की रिपोर्ट सन् १९२८ ई० में प्रकाशित हुई है। इस कमेटी ने कम-से-कम १५ दशाओं में प्रयोग किये। यद्यपि जनता में यह भावना फैली है तथा प्राचीन मनोवैज्ञानिक ग्रन्थकारों ने यह कहा है कि 'प्रौढ़ वयस्कों में ज्ञान-जिज्ञासा-शक्ति का अभाव हो जाता है, तथापि इस कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है।' ऐसा कमेटी का अभिप्राय है।

आधुनिक मनोविज्ञान-शास्त्र का सिद्धान्त यह है कि शारीरिक वृद्धि तथा मानसिक वृद्धि वाह्य अङ्गों के ऊपर निर्धारित नहीं है। यदि व्यक्ति को शिक्षा न दी जाय तो भी उसकी वृद्धि अवश्य परिपक्व होगी। शारीरिक वृद्धि में भी उनका यही कहना है कि खाने पीने की कम सुविधा होने पर भी निसर्ग से निश्चित की हुई ऊँचाई पर व्यक्ति अवश्य पहुँच जायगा। इस सम्बन्ध में डाक्टर

थॅरेनडाइक ने एक मनोरञ्जक प्रयोग किया था, जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है:—

कबूतर के बहुत से अण्डे इकट्ठा किये गये। ६ अण्डों में से कबूतरों के बच्चे एक ही दिन निकले। डाक्टर साहब ने ५ बच्चों को स्वेच्छाचार से बढ़ने दिया, किन्तु एक को जालीदार सन्दूक़ में बन्द कर दिया। सन्दूक़ की दीवारें बच्चे के शरीर से इतनी सटी हुई थीं कि कबूतर का बच्चा अपने परों का उपयोग नहीं कर सका। उसको खाना-पीना बराबर दिया जाता था, उसकी शरीर-वृद्धि ज्यों-ज्यों होती जाती त्यों-त्यों सन्दूक़ की दीवारें और चौड़ी की जाती थीं, किन्तु पर हिलाने के लिये स्थान उसे नहीं दिया जाता था। २५ दिन के भीतर कबूतर के स्वतन्त्र रहनेवाले बच्चे यथेष्ट उड़ना सीख गये। डाक्टर साहब ने सन्दूक़ में बन्द किये हुये बच्चे को भी २५ दिन पश्चात् बाहर निकाला। आज तक इस बेचारे बच्चे ने अपने परों का उपयोग नहीं किया था, स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर अपने पर फड़फड़ाने लगा और आश्चर्य की बात यह है कि १५, २० मिनट के अन्दर ही और बच्चों की भाँति ठिकाने से उड़ना भी शुरू कर दिया।

उपर्युक्त उदाहरण से प्रगट है कि प्राणीमात्र की शारीरिक वृद्धि न तो उसके व्यायाम पर और न उसको पोषक पदार्थ मिलने पर ही निर्भर है, वरन् वृद्धि निसर्ग से ही निश्चित रहती है। वही बात प्राणीमात्र की वृद्धि की है। शारीरिक वृद्धि के साथ-साथ १८ या २० वर्ष तक उसकी बौधिक वृद्धि भी परिपक्व होती है। चाहे व्यक्ति पाठशाला में पढ़ाया जाय, चाहे न पढ़ाया जाय, चाहे व्यक्ति सभ्यता के शिखर पर पहुँचे हुए समाज में बढ़े अथवा असभ्य लोगों के साथ जङ्गल में बढ़े, जिसको नैसर्गिक बुद्धि-ग्रहण-शक्ति व स्वाभाविक बुद्धिसत्ता कहते हैं, वह उसके शरीर के साथ ही बढ़ती है। अन्तर

केवल इतना ही होगा कि ज्ञात वस्तुओं में तथा विचार-धारणा में भिन्नता रहेगी।

इस स्थान पर यह कहना भी आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की नैसर्गिकबुद्धि की कुशाग्रता भिन्न-भिन्न रहती है। किसी-किसी की स्वाभाविक बुद्धि कम होती है अर्थात् ८ वर्ष के बालक की बुद्धिमत्ता तक पहुँच कर कुण्ठित हो जाती है। अधिकतर ८० प्रतिशत व्यक्तियों की बुद्धि १३ वर्ष के बच्चे के परिमाण में बढ़ती है। और, यत्र-तत्र ऐसे विरले व्यक्ति भी मिलते हैं जिनकी बुद्धि १८ या २० वर्ष तक बढ़ती है।

हम पाठकों से यह कहना चाहते हैं कि बुड्ढे, जिनकी दृष्टि अच्छी है, केवल ४० या ५० वर्ष की आयु तक ही नहीं वरन् १०० वर्ष की आयु तक ठिकाने से पढ़ सकते हैं। "क्रिश्चन साइंस मानीटर" नाम के मासिक पत्र के १९३८ के मई मास के अंक में निम्नलिखित घटना प्रकाशित हुई है:—

साउथ कैरोलायना की लुइसा डेवेज़ नामक स्त्री, जोकि पहले गुलाम रह चुकी है, अपनी १०६ वर्ष की आयु में लिखना-पढ़ना सीख रही है। वह सरल वाक्य लिख सकती और बच्चों को प्राइमर पढ़ सकती है। इस समय लुइसा को शिक्षा-विभाग का प्रौढ़शिक्षक पढ़ा रहा है। उसकी बुद्धि अभी ज्यों की त्यों है। उसको शिक्षा से क्या साध्य करना है, इसके सम्बन्ध में उसको धारणा स्पष्ट है और उसके अध्यापक का कहना है कि इसी धारणा के बल पर ६ वर्ष के बच्चे से भी लुइसा अधिक तीव्रता से पढ़ रही है।

यह सत्य है कि छोटे-छोटे बच्चों को हम बलात् भय और मार-पीट के द्वारा कुछ बातें पढ़ा सकते हैं और 'बुड्ढे सुग्गों' को इसके लिये बाध्य नहीं कर सकते। उनके सामने हम, उनकी मनोवृत्ति के अनुसार पढ़ाने की मनोरञ्जक-शैली रख कर, उनकी प्रगल्भ बुद्धि से बहुत-सा

काम ले सकते हैं। सारांश यह है कि यदि हम उनकी धारणा को शिक्षा-ग्रहण की ओर केंद्रित करेंगे तो निस्सन्देह वे बच्चों से शीघ्रतर पढ़ जायंगे। हम इस बात को निस्संकोच कहने के लिये तैयार हैं कि कुछ लोगों ने 'बुड्ढे सुग्गों' को पढ़ाने का प्रयत्न किया और वे असफल हुए। पर, इसमें उन बेचारे 'प्रौढ़ सुग्गों का' कोई दोष नहीं है। दोष था शिक्षकों की उस अग्राह्य और कष्ट-साध्य शैली का, जिसका उन्होंने पढ़ाने में निरर्थक प्रयोग किया था।

इस बात की सत्यता पर संसार विश्वास कर सकता है कि देहात के प्रौढ़ किसान क्लिष्ट से क्लिष्ट बातों पर विचार कर सकते हैं। जैसे; सहकारी बैंक के सदस्य बन कर सदस्यता के कर्तव्यों का समझना, संयुक्त-उत्तरदायित्व समझना, खेती के विषय में अपरिचित बातें समझना, वैसे ही राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विषय की बातें व्याख्यानों द्वारा श्रवणगत करके समझना। पर खेद है कि जब साक्षरता का प्रश्न उठता है तो वे हताश हो जाते हैं और मन ही मन पछताने लगते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि साक्षर बनाने की आजतक की शैली ही बेढंगी रही।

प्रौढ़ों को शिक्षा-प्रदान में कुछ बातें ऐसी हैं जो हमको सहायता दे सकती हैं और कुछ बातें ऐसी भी हैं जो हमारे मार्ग में बाधा डालती हैं। देहात के प्रौढ़ किसानों को पढ़ाने के सम्बन्ध में हमें जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उनको हम इस स्थल पर व्यक्त करना चाहते हैं।

यदि हम सुयोग्य पद्धति से प्रौढ़ों को पढ़ाने की चेष्टा करें तो बच्चों से भी अधिक शीघ्रता से, उनको पढ़ा सकते हैं। प्रौढ़ों की बुद्धि परिपक्व रहती है, वे संसार की बहुत सी बातों से परिचित रहते हैं। उनका अनुभव विस्तृत रहता है। वे स्थलों के, काल के तथा वस्तुओं की संख्या के पारस्परिक सम्बन्ध में स्पष्ट कल्पना कर सकते हैं। यही

कारण है कि यदि हम उनकी भाषा में, उनका मानसिक झुकाव देखकर पढ़ाना प्रारम्भ करें तो वे शीघ्र समझ लेते हैं। उनको अपनी आयु में जो अनुभव प्राप्त हुए हैं उनकी सहायता हम शिक्षा-प्रदान में, यदि चाहें तो पूर्णतः पा सकते हैं। देहात के प्रौढ़ किसान अपनी परिपक्व बुद्धि से सांसारिक ज्ञान शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं। वे साधारण परिभाषाएँ बनाने में क्षम होते हैं। अपने व्यवहार में वे कुशल होते हैं। वे पैसा, आना, चवन्नी, रुपया और १० रुपये का नोट इत्यादि सिक्कों से परिचित रहते हैं। उनके पारस्परिक सम्बन्ध का भी उन्हें बोध होता है। यही बात मन, सेर, छटाँक इत्यादि जड़ वस्तुओं के तौल के पैमाने, बीघा, बिस्वा, बिस्वांसी इत्यादि क्षेत्रफल के पैमाने तथा मील, फ़र्लाङ्ग, गज़ इत्यादि दूरी के पैमाने के ज्ञान के सम्बन्ध में भी है। स्थल, काल तथा सिक्कों के पारस्परिक सम्बन्ध इत्यादि से बालक अपरिचित होते हैं। यदि वे गणित के उदाहरण उचित रीति से पाठशाला में लगाते होंगे तो मान लीजिये वे ढर्रे से हिसाब करते हैं, किन्तु पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान ग्रहण नहीं कर सकते। बालक हासिल का तत्त्व समझते ही नहीं, वे अध्यापक के दिखाये हुए मार्ग से ही जाते हैं। इसके विपरीत प्रौढ़ किसान हिसाब-किताब ठीक कर सकते हैं। केवल उदाहरण लगाने के ढर्रे नहीं जानते तथा गणित सम्बन्धी परिभाषाओं से अनभिज्ञ होते हैं। वे गणित तो भली-भाँति जानते हैं, किन्तु परिभाषाएँ नहीं जानते।

यदि हम प्रौढ़ों को महाजनी हिसाबों की भाँति पड़ी, तिरछी और खड़ी रेखाओं से हिसाब बताना प्रारम्भ करें, तो वे शीघ्र ही हासिल का तत्त्व समझ सकते हैं। यदि १ रु० रखने की थैली, १० रु० के नोट रखने की थैली, १०० रु० के नोट रखने की थैली और १००० रु० के नोट की थैली के प्रयोग से श्यामपट पर, इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार इत्यादि संख्याओं के स्थलों का क्रम तथा उनका

पारस्परिक सम्बन्ध समझाने की चेष्टा करें तो वे अति-शीघ्र समझ सकते हैं। जोड़-बाक़ी इत्यादि नियम उनकी समझ में शीघ्र आते हैं। अपने कार-बार के सम्बन्ध के हिसाब की परिभाषाएँ भी वे चार या पाँच माह के अन्दर ही सीख लेते हैं। प्रौढ़ों को गणित पढ़ाने में एक और विशेषता प्रतीत होती है। वह यह कि उनके लिये ये विषय अधिकतर व्यावहारिक और प्रत्यक्ष होते हैं और बालकों के सामने केवल काल्पनिक चित्र ही रहता है, उसका व्यावहारिक ज्ञान उन्हें नहीं होता है।

प्रौढ़ कल्पनातीत अल्प अवकाश में ही लिखना सीख जाते हैं, किन्तु बच्चों में यह बात नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि बच्चों का अपनी अँगुलियों के ऊपर अधिकार नहीं रहता है। उनकी अँगुलियों से उनकी क़लम भगती-सी है, किन्तु प्रौढ़ क़लम ठिकाने से पकड़ भी सकते हैं और घुमा भी सकते हैं। एक बार अक्षरों की रूप-रेखा उनके मस्तिष्क में बैठने के पश्चात् उन्हें काग़ज़ पर खींचना, उनके लिये आसान है, शब्दों की अन्तर्गत ध्वनि का, जिनको हम अक्षर कहते हैं, पृथक्करण वे आसानी से कर सकते हैं। जैसे; "सरल" शब्द का पृथक्करण स, र, ल; इन अक्षरों में कर सकते हैं। अक्षरों तथा मात्राओं का ज्ञान हो जाने के पश्चात् देहाती भाषा में अपने विचार लिखना उनके लिये कठिन नहीं है। अनुभव से हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि बच्चों की अपेक्षा प्रौढ़ अधिक सुन्दर अक्षर लिखते हैं, हम उन्हें ६ मास के अन्दर पत्र-लेखन की कला दे सकते हैं।

पठन-क्रिया के सम्बन्ध में भी यही बात है। प्रौढ़ों को उनकी परिपक्व बुद्धि पढ़ना सीखने में विशेष सहायता देती है। अक्षरों का साम्य और भिन्नता अति शीघ्र उनकी समझ में आ जाती है।

बारह खड़ी में अक्षरों के संयोग से वर्णाक्षरों की ध्वनि किस प्रकार परिवर्त्तित होती है, इसका ज्ञान भी उन्हें शीघ्र ही हो जाता है।

पढ़ने में मानसिक एवं शारीरिक क्रिया रहने के कारण उनकी परिपक्व मनोधारणा तथा शारीरिक वृद्धि उनको पूर्ण सहायता देती है। शारीरिक दृष्टि से प्रौढ़ अधिक काल तक और स्थिरता से अक्षरों पर दृष्टि-क्षेप कर सकते हैं। पंक्तियों पर से ढंग से नेत्र घुमाने की कला शीघ्र साध्य कर लेते हैं। अक्षर, शब्द तथा वाक्यों के ऊपर नेत्रों का केन्द्रीकरण करके अर्थ आकलन करने की शक्ति उनमें अधिक रहती है। मनुष्य मात्र के नेत्र स्वाभावतः चंचल होते हैं, वे कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी दाहिनी तथा कभी बाईं ओर जाते हैं। पठन-क्रिया में नेत्रों को सुचारु रूप से संचालन की टेव बालकों में बड़ी कठिनता से डाली जाती है, किन्तु प्रौढ़ों में शीघ्र ही यह टेव पड़ जाती है। अर्थग्रहण करने की शक्ति प्रौढ़ों में अधिक रहने के कारण, उनकी अर्थ-बोध की छलाँगें थोड़े अभ्यास से ही लम्बी हो जाती हैं। अन्त में यदि पाठ्य विषय प्रौढ़ों की रुचि के अनुकूल हो तो वे अधिक देर तक गम्भीरता से पढ़ सकते हैं। बच्चों के मन में चंचलता रहती है। बहुत काल तक किसी विषय की ओर ध्यान नहीं दे सकते, किन्तु प्रौढ़, यदि विषय उनके व्यवहार तथा रुचि का रहे तो घंटों तक ध्यान दे सकते हैं।

ऊपर हमने केवल, प्रौढ़ों को शिक्षा-प्रदान में सहायता देनेवाली बातों का विवरण दिया है, परन्तु प्रौढ़ों के अन्तर्गत ऐसी भी बातें पाई जाती हैं, जो उनके शिक्षा-प्रदान में बाधा डालती हैं। विशेषतः प्रौढ़ों की शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनशीलता नष्ट होती है, उनकी टेवें शारीरिक सञ्चालन तथा विचार-धारा में निश्चित-सी हो जाती हैं। अपढ़ प्रौढ़ों को परकीय भाषा पढ़ाना प्रायः असम्भव है, क्योंकि परकीय भाषा के विशिष्ट स्वर उच्चारण में उनकी वाणी रुकावट डालेगी।

स्वकीय भाषा में भी जब उनके अशिष्ट शब्दोच्चारण का ढर्रा निश्चित हो जाता है तो शुद्धोच्चारण सिखाना कभी-कभी कठिन हो

जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि उनके शारीरिक स्नायु परिपक्व हो जाते हैं। विशिष्ट पद्धति से हलचल करने की उनकी टेव पड़ जाती है, उनके विचारों में भी यही बात पाई जाती है। उनके विचार कुछ विश्वासों के ऊपर निर्धारित रहते हैं और वे निश्चित ढर्रे से चलते हैं। पूर्व आयु में शिक्षा न पाने के कारण उनकी स्वतंत्र विचार-शक्ति कुंठित हो जाती है। वे सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य विचारों में आबद्ध रहते हैं। उनकी मानसिक स्थिति, जो अधिकतर उनकी अन्ध-श्रद्धा के ऊपर आश्रित रहती है, उन्हें पूर्ण आनन्द देती है। इस आनन्दमय अन्ध-श्रद्धा पर आक्रमण वे सहन नहीं कर सकते। इस श्रद्धाश्रित सामाजिक तथा धार्मिक आचार-विचारों के प्रतिकूल आचरण देखकर उन्हें शीघ्र रोष आता है। नई कल्पनाओं तथा नये विचारों के प्रायः वे शत्रु रहते हैं। अनुभव द्वारा हमें यह बात भी ज्ञात हुई है कि यदि उन्हें नई कल्पना तथा नये विचार समझाना हो तो उनके प्राचीन विचारों का आधार लेकर ही उनके सामने उपस्थित कर सकते हैं।

इसके विरुद्ध उनके आचार-विचारों पर धक्का देकर या उनकी उपेक्षा करके उन्हें नई कल्पना का ज्ञान देना अत्यन्त आपत्तिजनक है। प्रौढ़ों को लिखना, पढ़ना सिखलाना या अपने व्यावहारिक हिसाबों की परिभाषाएँ पढ़ाना कठिन नहीं हैं। यदि वे चाहें तो अतिशीघ्रता से सीख सकते हैं। कठिन समस्यायें अन्यत्र हैं। वे निम्नलिखित हैं:—

(१) स्वभावतः या पूर्व अनुभव से देहाती, सरकार द्वारा संचालित संस्थाओं से साशंक रहते हैं। यह बात हम मानने के लिये तैयार हैं कि उन्होंने कभी-कभी सरकारी कर्मचारियों से धोखा भी खाया होगा, किन्तु उनकी साशंकता वैरागी बाबा, महंत इत्यादि के प्रति नहीं रहती। इसका यह अभिप्राय नहीं कि उन्होंने संन्यासियों के हाथ से कभी धोखा ही न खाया होगा।

सरकारी कर्मचारियों के प्रति ही उनकी साशंकता का मुख्य कारण यह है कि उन कर्मचारियों के अधिकतर व्यवहार देहातियों के प्रति पथ-प्रदर्शक की भाँति मैत्री भाव के नहीं होते, मालिक का नौकरों के प्रति तथा दानी का भिक्षुक के प्रति जो भाव होता है वही उनका देहातियों के प्रति होता है। वे उनके साथ समभाव से नहीं मिलते। यदि हमें देहातियों के कल्याणार्थ काम करना होगा और यदि हम चाहते हैं कि हमारी सुधार-योजना देहाती स्वीकृत करें तो हमें अपने व्यवहार तथा अपनी कार्य-शैली में उचित परिवर्त्तन करना पड़ेगा।

(२) सरकार द्वारा संचालित संस्थाओं के प्रति देहातियों के मन में और एक भावना काम करती है। वह यह कि इतना औदार्य्य दिखाने में सरकार का प्रजा के कल्याण के अतिरिक्त अवश्य कुछ न कुछ हेतु होगा। यही कारण है कि पाठशाला प्रारम्भ होने के पश्चात् कोई-कोई ऐसी भ्रम-मूलक बातें फैलाता है कि प्रौढ़ों को लड़ाई पर भेजा जायेगा या काले पानी पर ले जायँगे। यदि हमारे कर्मचारी सद्भाव तथा गम्भीरतापूर्वक कुछ काल तक लगातार कार्य करते रहें तो प्रौढ़ों की यह साशंकता अनुभव से दूर हो जायगी और एक समय अवश्य आजायगा जब कि देहातियों के भाव उनके प्रति अनुकूल हो जायँगे।

(३) देहात के प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार में और एक बेढंगी समस्या उपस्थित होती है, वह यह कि नागरिक तथा सुशिक्षित समुदाय के आचार-विचार तथा देहातियों के आचार-विचार में बड़ी भारी भिन्नता है। उनके साहित्य में भी यही भिन्नता पाई जाती है। जहाँ सुशिक्षित नागरिक वच्चन, हरिऔध, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं को रुचिकर समझते हैं, वहाँ देहाती आल्हा, फगुआ तथा रामायण इत्यादि में ही मस्त रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि इन दोनों की सभ्यता में भिन्नता है, शिक्षित वर्ग पर पाश्चात्य सभ्यता की छाप होने के कारण उनका दृष्टि-कोण अधिकतर

पाश्चात्य हो रहा है। इसके विपरीत देहाती अपनी पिछड़ी हुई पौर्वात्य संस्कृति को ही दृढ़ता से अपनाये हुए हैं; वे अपनी संस्कृति के सामने आनेवाली नागरिकों की संस्कृति का आक्रमण साशंकता और भय से देखते हैं।

यही बात शिक्षा-प्रदान में भी है। शिक्षा-विशारदों ने व्याकरण, भूगोल, भूमिति तथा उच्चकोटि की साहित्यिक भाषा पढ़ाना अपना लक्ष्य बना लिया है। पर देहातियों के हृदय में इन विषयों के लिये स्थान नहीं, वे इनका कुछ भी मूल्य नहीं रखते।

प्रौढ़-शिक्षा-प्रचार में यह बाह्य विरोध मिटाने की समुचित चेष्टा करने में ही यशोप्राप्ति है।

यदि हम साक्षरता-प्रदान में देहाती प्रौढ़ों और बुड्ढों को इस ढंग से समझायें कि साक्षरता प्राप्त करने से वे रामायण पढ़ने के योग्य होकर आध्यात्मिक आनन्द उठायेंगे तथा आल्हा, फगुआ इत्यादि देहाती गानों की योग्यता प्राप्त करके लौकिक आनन्द प्राप्त करेंगे और अन्त में यदि प्रौढ़-पाठशाला का कार्यक्रम उनके ही आचार-विचार, गाने-बजाने इत्यादि का समावेश करके, उनको जीवन में कार्यक्षम बनाने के लक्ष्य से, उनके सामने उपस्थित करें तो प्रौढ़-शिक्षा की योजना उनको ढंग से स्वीकृत होगी, तथा साक्षरता-प्रसार का कार्य बड़े वेग से चलेगा।

(४) चौथी समस्या हमारे अध्यापक गण हैं, जोकि अधिकतर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मिडिल स्कूल तथा ऐसे ही अन्य शिक्षालय के वातावरण में शिक्षित हुए हैं, जिन पर कि अँगरेज़ी-शिक्षा का अधिक प्रभाव हुआ है। हम ऊपर दो सभ्यताओं की विभिन्नता के सम्बन्ध में वर्णन कर चुके हैं। हमारे मिडिल परीक्षोत्तीर्ण अध्यापक कुछ-कुछ पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आये रहते हैं, और उसके पक्ष में रहते हैं। देहाती-जीवन के रहस्य के सम्बन्ध में वे अनुदार रहते हैं। हमने अपने ट्रेनिङ्ग क्लास में अधिकतर ऐसे भी अध्यापक देखे हैं जो

ग़ज़ल तथा अन्य आधुनिक गीत बड़े प्रेम से गाते हैं, पर देहाती आल्हा और फगुआ से उन्हें घृणा-सी रहती है। ऐसी मनोवृत्ति से प्रौढ़ों में शिक्षा-दान का कार्य सुचारु रूप से चलाना कठिन है। यह त्रुटि दूर करने के लिये हम ट्रेनिङ्ग क्लास में देहाती गानों की शिक्षा विशेष रूप से देते हैं।

अध्यापकों में और एक विशेष बात प्रतीत होती है कि आज-तक शिक्षा-प्रदान का कार्य अधिकतर बच्चों में ही प्रचलित था। बच्चों को डाँट-फटकार कर या पर्याप्त बल-प्रयोग से शिक्षा देना एक साधारण-सी बात हो गई है। अध्यापक डण्डे के अभ्यासी हो गये हैं। किन्तु, यह बातें प्रौढ़-पाठशाला में चल नहीं सकतीं। हम यह बात निस्संकोच कह सकते हैं कि जो अध्यापक बालकों को पढ़ाते हैं, वे प्रौढ़ों को पढ़ाने के अयोग्य हो जाते हैं।

निम्नलिखित बातें बलात् अध्यापक प्रौढ़ों पर नहीं लाद सकते:—

(१) प्रौढ़ों को सावधानी से एक पंक्ति में बिठाना कठिन है। बच्चे भले ही भयात् कुछ देर तक एक स्थान पर बैठ जायँ, पर यह बन्धन प्रौढ़ों के लिये अनावश्यक है और हमारे विचार से अनुचित भी है; क्योंकि प्रौढ़ रात्रि में अधिकतर मनोरञ्जनार्थ ही एकत्र होते हैं।

(२) अध्यापक को कभी ऐसे भी छात्र मिलेंगे जिनका दायाँ हाथ ही अधिक चलता है, वे बायें हाथ से लिखना प्रारम्भ करते हैं। यदि वे उसी हाथ से लिखना सीख जायँ तो कुछ आपत्ति नहीं उनकी यह टेव छुड़ाने की निरर्थक चेष्टा कभी न करनी चाहिये।

अन्त में आज तक के अनुभव से हमें यह निष्कर्ष विदित हुआ है कि हम देहाती किसानों को उनके हितार्थ लिखना, पढ़ना तथा व्यावहारिक हिसाब-किताब आसानी से बता सकते हैं, परन्तु हमें अपनी शिक्षा-शैली उनकी मनोधारणा के अनुकूल ही बनाना पड़ेगी।

दसवाँ अध्याय

वाचन-शिक्षण का ढंग

देहात के नव्वे प्रतिशत से अधिक कृषक निरक्षर हैं। इस वहुजन-समाज को साक्षर वनाने के लिये शिक्षा-पद्धति मनोरञ्जक तथा सुलभ होनी चाहिए। ऐसी एक सुलभ-शिक्षा-प्रणाली की खोज में हम गत २५ वर्ष व्यतीत कर चुके हैं। जव हम न्यूयार्क शहर के कोलम्विया विश्वविद्यालय के ही टीचर्स-ट्रेनिङ्ग-कालेज में (सन् १९२१ से १९२४ तक) पढ़ते थे, तव विशेप रूप से मनोविज्ञान का अध्ययन करते थे। उस समय अमेरिकन सहपाठियों को जो भारतीय लिपियों तथा भापाओं से अनभिज्ञ थे, वाक्य-पद्धति के द्वारा नागरी अक्षरों का ज्ञान देने का प्रयोग किया था। इस पद्धति के प्रयोग में हमें पूरी सफलता मिली, जिससे हमारा उत्साह द्विगुण हो गया। अन्त में हमने यह तथ्य निकाला कि डाक्टर 'ह्यूए' ने, नेत्रों की गति के अनुसार पढ़ाने की, जिस शैली का अनुसन्धान किया है उसके सहारे भारत के किसान शीघ्रातिशीघ्र पढ़ सकेंगे। धीरे-धीरे इस तथ्य पर हमारा विचार दृढ़ हुआ।

हमने इस सरल-शिक्षा-परिपाटी का दूसरा प्रयोग सेंट्रल जेल नागपुर में सन् १९२५ में किया।

सेंट्रल जेल में प्रयोग करने का हमारा उद्देश्य यह था कि इस प्रकार के वातावरण में ही नियन्त्रित प्रयोग (Controlled experiment) करना श्रेयस्कर होगा; क्योंकि हमको दो अङ्गों (Factors) का नियन्त्रण करना था। एक तो छात्रों की असंदिग्ध निरक्षरता, दूसरा शिक्षण की निश्चित अवधि। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट केप्टन

एन० एस० जठार साहब ने हमारी इच्छानुसार हमको वहीं ऐसे २३ क़ैदी चुनकर दिये, जिन्होंने कभी काले अक्षर की आकृति तक न देखी थी, और कारावास के नियमानुसार केवल १ घण्टा दिन में १२ से १ बजे तक शिक्षा देने की आज्ञा थी। इस अवधि के अतिरिक्त क़ैदी छात्र को लिखने-पढ़ने की आज्ञा नहीं थी। हमने ६ महीने तक इन्हें वाक्य-पद्धति के द्वारा शिक्षा दी, जिसका परिणाम यह हुआ कि सब क़ैदी इस अल्प समय में ही पर्याप्त लिख-पढ़ गये। उस समय डाइरेक्टर आफ़ पबलिक इन्स्ट्रकशन साहब की आज्ञानुसार इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स तथा सुपरिण्टेण्डेण्ट नार्मल-स्कूल, नागपुर तथा रिटायर्ड इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स, राय साहब श्री गुलाबसिंह साहब ने बीच-बीच में निरीक्षण किया था और अपने पर्यावलोकन में संतोष प्रगट किया था। ❀ इससे हमको भरोसा हो गया कि हमारे किसान भाई इस ढङ्ग से बहुत शीघ्रता से शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इस पद्धति से पढ़ाने के लिये चार्ट (नक़्शे) मराठी भाषा में लिखे गये थे। पश्चात् हमने हिन्दी में भी उसी ढंग पर तैयार कर लिये।

८ जौलाई सन् १९२८ ई० में संयुक्त प्रान्तीय सहकारी विभाग की ओर से प्रौढ़-पाठशालाओं के इन्स्पेक्टर-पद पर हमारी नियुक्ति हुई।

सन् १९२९ से सन् १९३१ तक हमने उसी सिद्धान्त के अनुसार नागरी लिपि में चार्ट बना-बनाकर उनका प्रचार किया था। उस समय के निर्मित चार्टों का एक नमूना हम परिशिष्ट 'अ' में दे रहे हैं। उससे विदित हो जायगा कि प्रत्येक चार्ट में मात्रा रहित तीन अक्षरों का एक शब्द, बहुत से वाक्यों में मिश्रित भिन्न-भिन्न स्थलों पर रखा गया है और विद्यार्थियों के सामने शब्द चुनने की 'समस्या'

❀ इन महाशयों के निरीक्षण हमारी सन् १९२५ में छपी हुई "स्कीम आफ़ मास एज्यूकेशन" नामक पुस्तक में देखने को मिलेंगे।

इस ढंग से रखी गई है, जिससे उनका ध्यान शब्द के आकार की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो जाय। शब्दों के अक्षर पृथक् करके चार्ट में शब्द उसी ढंग से रखे गये हैं जिससे शब्द-चार्ट द्वारा अक्षरों की ओर छात्रों का विशेष ध्यान आकृष्ट हो। यह बात ध्यान देने योग्य है कि चार्टों के वाक्य अर्थपूर्ण रखे गये थे तथा एक वाक्य का दूसरे वाक्य के साथ सम्बन्ध जोड़कर पूरे चार्ट में कहानी बनाने का प्रयत्न किया गया था। शब्द-चार्ट में अर्थ-पूर्ण शब्द चुने गये थे, जिनके अक्षरों में मात्राएँ नहीं लगी थीं और जिनमें समस्या-अक्षर कहीं न कहीं मिलता था। ये चार्ट डाक्टर 'ल्यूए' के आविष्कारों के सिद्धान्त के ऊपर अक्षरशः आधारित थे, परन्तु इस वाक्य-पद्धति शिक्षा-प्रणाली में हमें अनुभव करके एक और परिवर्तन करना पड़ा।

सन् १९३१ में शान्तिपुर ग्राम जिला फ़ैजाबाद में हमारा कैम्प लगा था। सौभाग्य से वहाँ पं० शीतलाप्रसादजी (अध्यापक, संस्कृत-पाठशाला) से हमारी भेंट हुई। उन्होंने हमारे सामने एक ऐसा आदमी लाकर खड़ा कर दिया जो रामायण धड़ाके से पढ़ सकता था पर लिखना क़तई नहीं जानता था और न कभी उसने स्कूल की सूरत ही देखी थी। यह अनुभव हमारे लिये बहुत ही आश्चर्यजनक था। पहले पहल हम तो साशंक थे और उससे बहुत कुछ खोद-खादकर हमने पूछा कि साक्षरता प्राप्त करने में उसे किसी न किसी से सहायता मिली थी या नहीं। परन्तु उसने यही कहा कि नहीं देखते-देखते ही पढ़ना आगया। अन्त में उस आदमी की सरलता को देखकर हमारा विश्वास होगया कि यह मनुष्य सत्य ही कहता होगा। पण्डितजी से पूछने पर पता चला कि देहात में ऐसे कुछ स्त्री-पुरुष पाये जाते हैं जो कभी स्कूल नहीं गये और न कुछ लिख ही सकते हैं, पर रामायण धारा-प्रवाह पढ़ सकते हैं। यह अनोखा कौतुक देखकर हम इस आश्चर्य में दो दिन तक पड़े रहे कि यह लोग पढ़ना किस प्रकार

सीख गये होंगे। विचार करने पर हम इस सिद्धान्त पर आपहुँचे कि जिस शिक्षा-परिपाटी का आधुनिक मनोविज्ञान-वेत्ता बड़ी धूम-धाम से प्रचार करते हैं, उसी पद्धति से ये बेचारे देहाती बिना किसी प्रकार के पथ प्रदर्शन से पढ़ना सीख जाते हैं। अक्षरों का ज्ञान वे जिस सिद्धान्त के अनुसार प्राप्त करते हैं, वह आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त से भिन्न नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि ये सिद्धान्त उनके मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से अंकित नहीं थे और इन सिद्धान्तों की परिभाषा भी अस्पष्ट थी।

बिना किसी दूसरे के सहारा पाये आदमी पढ़ना कैसे सीख जाते हैं, इसकी खोज करते हुए हम इस अटल सिद्धान्त पर पहुँच गये कि 'पढ़ना पहचानना ही है' अर्थात् दोनों में एक ही मानसिक क्रिया होती है। अन्तर केवल यह है कि पढ़ने में हम केवल अक्षरों को पहचानते हैं और पहचानने में हम किसी आदमी या वस्तु की आकृति पढ़ते हैं। अक्षर रहे, चाहे शब्द रहे; आदमी रहे, या वस्तु रहे; बार-बार देखने से ही धारणा दृढ़ हो जाती है। उपर्युक्त आदमी ने जो हम से कहा कि 'वैसे ही देखते-देखते सीख गये' इसमें पूर्ण सत्यता है।

इस अनुभव से हम जिन सिद्धान्तों पर आकर पहुँचे, उनके आधार पर हमने नये पोस्टर तथा हस्तलिखित चार्ट बनाकर पहले 'शान्तिपुर-ग्राम जीवन-सुधार' सोसायटी में जारी किये और इसकी क्षमता का अनुभव किया। कुछ महीनों पश्चात् हमारे सुनने में यह भी आया कि मुसलमानों के यहाँ स्त्रियों को 'कुरान शरीफ़' पढ़ना भर सिखाते हैं, किन्तु लिखने का क़तई अभ्यास नहीं कराते। उनके यहाँ भी लगभग वही पद्धति जारी है, जिसमें बार-बार देखते-देखते शब्दों से तथा वाक्यों से अक्षरों की पहचान स्वयं हो जाती है अर्थात् वहाँ भी स्त्रियाँ देखते-देखते 'क़ुरान शरीफ़' पढ़ना सीख जाती हैं।

अब यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि इन स्त्री-पुरुषों के मस्तिष्कों में, जिन्होंने किसी से भी अक्षर पहचानने में सहायता नहीं पाई, अक्षर तथा शब्द पहचानने का ज्ञान कैसे प्रकट हुआ ? इस सम्बन्ध में हमारी धारणा निम्नलिखित है :—

जब गाँव में सन्ध्या-समय गाँव के शौक़ीन मनुष्य रामायण गाने के लिये टोलियाँ बनाकर ढोल की ताल के साथ रामायण गाते होंगे और उनके सामने बड़े-बड़े अक्षरों में छपी हुई रामायण की पुस्तकें रक्खी होती होंगी, उस समय यह स्त्री-पुरुष बाल्यावस्था में मनोरंजनार्थ वहाँ जाकर बैठते होंगे और कभी-कभी नटखटपन से बीच में घुसकर रामायण की पुस्तक देख कर यह भी पूछते होंगे कि यह चौपाई कहाँ है ? चौपाई गाते समय पंक्तियों के ऊपर से अपनी आँखें घुमाते होंगे। गाने की मधुरता तथा स्वाभाविक कुशाग्र-बुद्धि रहने के कारण कुछ चौपाई उनको कण्ठस्थ भी होगई होंगी। फिर दूसरे दिन वह लड़के लड़कियाँ कुछ जिज्ञासा और अधिकतर केवल अनुकरण के लिये चौपाइयों के नीचे अंगुली घुमाकर कण्ठस्थ चौपाइयों के शब्द खोजते रहे होंगे। जिनके घर में रामायण का नित्य पाठ होता है, उनके घर के लड़के और लड़कियों को यह खेल खेलने का अधिक अवसर मिला होगा। इन लड़के-लड़कियों का 'खोजना और उसका बराबर पता लगाना', तथा 'प्रयत्न करना और असफल होना और फिर प्रयत्न करके सफल हो जाना' इस पद्धति से उन शब्दों से परिचय हो गया और अन्त में जिसे परिचय कहते हैं उसका भी ज्ञान उत्पन्न हुआ।

"Trial and error" और "Trial and success"

अर्थात् प्रयत्न करना और असफल होजाना और जिस मार्ग से असफलता मिली उसे छोड़ देना, फिर से प्रयत्न करना और सफलता

पाना, तब उस मार्ग को दृढ़ता से पकड़ लेना। इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने की पद्धति में कुछ मनोरञ्जक तत्त्व भी हैं। चाहे ८, ९ महीने का बालक स्वयं स्फूर्ति से खड़े होने का यत्न करता हो और असफल होकर कुछ प्रयत्न के पश्चात् खड़े होने की कला सीखता हो, चाहे आर्कमेडिस की भाँति बड़ा भारी तत्त्ववेत्ता किसी तत्त्व की खोज में लगकर सफलता पाने पर आनन्द प्राप्त करता हो। छोटा बच्चा बड़े होने की कला प्राप्त करने के पश्चात् जो हार्दिक आनन्द प्रदर्शित करता है या आर्कमेडिस पानी की टङ्की से 'तत्त्व मिल गया' 'तत्त्व मिल गया' ऐसे कहकर नहाते हुए नङ्गा ही नाचते हुए बाहर निकल प्रफुल्लित होता है, उसमें एक बात विशेष रीति से प्रतीत होती है, वह यह कि ज्ञान-प्राप्ति का आनन्द। इस प्रकार का आनन्द ज्ञान-दान में या ज्ञान-प्राप्ति में हम अपने विश्वविद्यालय और स्कूलों में दे नहीं सकते। इस आत्मानन्द के अतिरिक्त इन बालकों के साक्षर बनाने में निम्न-लिखित विशेषताएँ मिलती हैं:—

(१) पढ़ने का प्रारम्भिक विषय सार्थक और रसीला था, उसमें गाना-बजाना और मधुरता थी।

(२) पढ़ना चौपाइयों से या अर्थपूर्ण वाक्य और शब्दों से प्रारम्भ हुआ न कि अक्षरों से।

(३) अक्षर-ज्ञान में जैसे हम अक्षरों के उच्चारण के साथ अक्षर लिखवाने में विद्यार्थियों को थका देते हैं, उसके विपरीत था। इस पद्धति में पहले पढ़ना और पश्चात् अक्षरों की आकृति मस्तिष्क में ठिकाने से बैठने पर उसकी आकृति की नक़ल करना; पहले पढ़ना फिर उसके बाद लिखना सिखलाना, वर्तमान उन्नतिशील शिक्षा-शास्त्र का एक सिद्धान्त है।

इस स्थल पर यह बात हम पाठकों से निवेदन करना चाहते हैं कि हमने सन् १९३१ में जो अपनी शिक्षा-शैली में परिवर्त्तन किये, वे

अधिकतर शान्तिपुर में जो हमें अनूठा अनुभव मिला कि बिना किसी की सहायता पाये मनुष्य रामायण पढ़ सकता है, उसी का फल है। इसके साथ यह भी कहना चाहते हैं, कि इस अनुभव के पूर्व और पश्चात् देहांत की रामायण-मण्डलियाँ रामायण की पुस्तकें अपने सामने खोलकर टोलियाँ बनाकर गाती और गवाती हैं उनकी पद्धति का भी हमारी शिक्षा-शैली पर प्रभाव पड़ चुका है। साक्षरता-प्रदान में संगीत का सहयोग और शिक्षा-शैली को सामुहिक बनाना यह ऊपर लिखे अनुभवों का ही फल है। सत्य यह है कि यह अनुभव ही हमारे आधार रहे हैं, और जो कुछ हमने किया है वह केवल शिक्षा-शास्त्र के सिद्धान्त पर क्रमशः प्रौढ़-पाठशाला का पाठ्य-क्रम बनाना है। और जो कुछ दूसरी बात है वह 'बिना किसी के सहारे आदमी पढ़ना सीख जाता है' इस तथ्य को दिखाना और उसकी मानसिक क्रिया की शैक्षणिक तथा मनोवैज्ञानिक परिभाषा को स्पष्टतया बता देना है। किन्तु अन्त तक पढ़ने-पढ़ाने का ढंग रामायण-मण्डलियों में प्रचलित रहनेवाला ही है।

यहाँ पाठकों के मन में यह प्रश्न अवश्य पैदा होगा कि उन प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों को बिना पढ़े अक्षर-ज्ञान किस प्रकार हुआ और इस के अन्तस्तल में मनोविज्ञान का कौनसा तत्त्व छिपा है? हमारे विचार से यह लोग उसी मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से साक्षर हुए, जिस ढङ्ग से सब ही अशिक्षित प्रौढ़ स्त्री-पुरुष बिना पढ़ाये संख्या का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। यह एक मानी हुई बात है कि छोटे-छोटे बालकों को संख्या का ज्ञान नहीं रहता। यदि हम डेढ़ या दो वर्ष के बालक को गोलियों के द्वारा ३ की संख्या का ज्ञान देना चाहें, तो २ वर्ष का बालक एक गोली और एक गोली और एक गोली अन्त तक कहता रहेगा, पर ३ की संख्या के सम्बन्ध में उसके मस्तिष्क में स्वतन्त्र कल्पना न पैदा होगी। वही बालक कुछ सयाना

होने पर २, ३, ४, ५ और कभी-कभी दस तक की संख्या की कल्पना सहज ही में कर लेता है। इस स्वतन्त्र कल्पना का जन्म उसके मस्तिष्क में किस प्रकार हुआ इस सम्बन्ध में हमारी धारणा नीचे लिखे अनुसार है:—

बालक की मा ने कभी उसको ३ आम, ३ खिलौने और ३ अमरूद दिये होंगे और भी इसी प्रकार ३ की संख्या का प्रयोग अन्य वस्तुओं के साथ करके बालक से वे चीज़ें लाने को कहा होगा। पहले-पहल बालक समझा होगा कि संख्या और वस्तु दोनों एक ही चीज़ें हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न वस्तुओं के साथ बार-बार उच्चारण होने और गिनती में तीन ही वस्तुएँ सामने आने से उसके मन में ३ की संख्या की स्वतन्त्र कल्पना का जन्म होता है।

इसी प्रकार 'रघु, राघव, राजा सीताराम' आदि में 'र' की आवाज़ बार-बार सुनने और उसके साथ 'र' की आकृति खड़ी—होने के कारण उन्होंने 'र' की आकृति पहचान ली और समझ लिया कि 'र' किसी शब्द के साथ समन्वित नहीं है, किन्तु वह एक स्वतन्त्र ध्वनि का चिह्न है, पर कारणवश उन शब्दों के साथ आया है। यह स्वतन्त्र कल्पना उनके मस्तिष्क में आगई होगी। तात्पर्य यह कि यह अक्षर-ज्ञान जो उन सयाने स्त्री-पुरुषों को हुआ, वह उपर्युक्त उदाहरणों के आधार से नियम निकालनेवाली पद्धति के सहारे ही हुआ।

साक्षर बनाने की शिक्षा-प्रणाली

शान्तिपुर शिक्षा-पद्धति से पढ़ाने के लिए जो चार्ट (नक़्शे) बने हैं वे परिशिष्ट 'ब' में दिये गये हैं। अध्यापक को उचित है कि निम्न-लिखित सूचनाओं की ओर ध्यान दें:—

(१) किसी ग्राम में प्रौढ़-पाठशाला खोलते समय अध्यापक अपने विद्यार्थियों से भूलकर भी यह न कहे कि हम प्रौढ़-पाठशाला जारी कर

रहे हैं; क्योंकि स्कूल के विषय में जन-साधारण की धारणा उत्साह पूर्ण नहीं है। इस कथन की अपेक्षा यह कहना अच्छा होगा कि चलो हम अपने गाँव में एक भजन-मण्डल की स्थापना करें और भजन, रामायण आदि पुस्तकें पढ़ने के लिये कुछ अक्षरों से पहचान करलें। ऐसा कहने से प्रौढ़-पाठशाला का प्रारम्भ अच्छा होगा।

अध्यापक प्रौढ़ों को भली-भाँति समझा दें, कि पढ़ना पहचान ही का नाम है, और नागरी लिपि के पढ़ने में हमको केवल ३५ अनोखे आदमी रूपी चिह्नों से पहचान कर लेना है। यह ३५ व्यक्ति रूपी चिह्न भिन्न-भिन्न वेष-भूषा में अवतरित होते हैं। वे कभी टोपी, कभी साफ़ा, कभी नीचे हँसिया आदि की आकृतिवाले स्वरूप धारण करते हैं। इस बहुरूपियापन में यह न समझ लेना चाहिये कि ये चिह्न ३५ ही व्यक्ति रूपी चिह्न हैं, जिनसे हमें पहचान कर लेनी है। रूप चाहे कितने ही क्यों न बदलें, परन्तु इनका परिचय तो बार-बार देखने और बार-बार नाम लेने से ही होगा।

हम जिस शिक्षा-पद्धति का समर्थन इस पुस्तक में कर रहे हैं, सम्भव है उस शिक्षा-पद्धति से कुछ विद्यार्थी भड़क भी जायँ; क्योंकि एक दीर्घ काल से उनके मस्तिष्क पर प्रचलित शिक्षा-परिपाटी का इतना गहरा प्रभाव पड़ा है कि क्रमशः अक्षर सीखे बिना कोई पढ़ ही नहीं सकता। इस रूढ़ि ने उनके मस्तिष्क में घर कर लिया है, जिससे उनकी ऐसी धारणा हो गई है कि क्रमशः बिना समस्त अक्षर सीखे वे लिख पढ़ नहीं सकते। पर, उनकी यह धारणा सर्वथा निर्मूल है।

अब यदि कोई शङ्का करे कि अक्षरों से पूर्ण परिचय प्राप्त किये बिना शब्द कैसे पढ़ाये जा सकते हैं और उससे अक्षर-ज्ञान कैसे हो सकता है, तो उसको समझा देना चाहिए कि केवल ३५ व्यक्ति रूपी चिह्न हैं, जिनसे पहचान करलेने से हमारा काम भली-भाँति चल

सकता है। यदि तुम संयोग वश किसी व्यक्तिरूपी चिह्न का नाम भूल गये या उसका उच्चारण अशुद्ध कर गये, तो यह तुम्हारी भूल बार-बार चिह्न (अक्षर) देखने और उसका ठीक रीति से उच्चारण करने से दूर होजायगी। विशेष रूप से तुमको अपना ध्यान शब्द-परिचय की ओर केन्द्रित करना चाहिये। इस प्रकार धीरे-धीरे सारी त्रुटियाँ अपने आप ठीक हो जायँगी।

चार्ट पढ़ाने का ढंग

पहली पोथी में सोलह भजन-चार्ट दिये हैं, जिनमें वर्णमाला के सब अक्षर आ चुके हैं। यहाँ पर मनोविज्ञान के सब सिद्धान्त तथा पढ़ने के ढंग के विषय में छोटी-छोटी बातों के देने की आवश्यकता नहीं है। अध्यापकगण अगले अध्याय को पढ़कर इसे भली भाँति समझ लेंगे। यहाँ हम केवल दो चार मोटी-मोटी सूचनाएँ देना चाहते हैं।

(१) पढ़ने में अपढ़ विद्यार्थी के लिए अक्षरों की पहचान करना कठिन नहीं है। अक्षर वैसे तो ३५-४० ही हैं और १५-२० दिन में उन्हें दोहे आदि में बार-बार देखने से, बिना अक्षर रटाये उनसे पहचान हो जाती है। पढ़ने की क्रिया में जो बात कठिन है वह आँखों की दृष्टि ठीक से लगाना है। इसे अंगरेज़ी में Eye Fixation (स्थिर-चक्षुता) कहते हैं। पहले-पहल पढ़ना आरम्भ करनेवाले विद्यार्थी की आँखें शब्दों पर रुकती नहीं हैं, वह सीधी पंक्ति से जाती नहीं, कभी ऊपर तो कभी नीचे, कभी आगे तो कभी पीछे भगती-सी हैं। यदि उनके सामने महीन टाइपों में छपी हुई किताब रखी जाय, तो उन्हें रतौंधी की तरह सफ़ेद-काला सब एक में मिला हुआ या धुँधला-सा मालूम पड़ता है। अर्थात् वे Blurring Sensation (चकाचौंध) का अनुभव करते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिये तथा धूप में काम करने से किसानों की आँखें

कमज़ोर हो जाती हैं, इस विचार से भी हमने पहली पोथी के पहले १६ पाठ तथा उसके बाद आनेवाले गीत बड़े अक्षरों में छपाये हैं और शब्दों के बीच में अन्तर भी पूरा रखा है ताकि वे अलग-अलग दिखलाई पड़ें। इतना होते हुए भी अध्यापकों को चाहिये कि पढ़ाते समय विद्यार्थियों को यह आदेश दें कि जिस शब्द या अक्षर को पढ़ें उसके नीचे उँगली रखें कि जिससे उनकी दृष्टि शब्द या अक्षर के ऊपर ठीक तौर से बैठ जाय।

(२) चार्ट पढ़ने के तीन क़दम—(१) श्यामपट पर चार्ट लटका दीजिये और उसमें दिया हुआ दोहा या भजन पहले तीन-चार बार गाइये और गवाइये। गाते और गवाते समय संकेत-यष्टि (pointer) या उँगली नीचे घुमाकर शब्द दिखलाइये। शब्दों को दिखलाते समय अध्यापक संकेत-यष्टि को व्यर्थ न नचावे। यदि दोहे या भजन का अर्थ छात्रों की समझ में न आवे तो वह उनको समझा दिया जाय। (२) इसके पश्चात् दोहे या भजन के शब्द स्पष्ट उच्चारण के साथ तीन-चार बार नीचे उँगली घुमाकर शब्द दिखलाते हुए पढ़िये और पढ़वाइये। (३ अंत में हर एक शब्द के अक्षर मात्रा-समेत अलग-अलग कर के पढ़िये और पढ़वाइये। जैसे राम पढ़ाते समय रा म पढ़िये और पढ़वाइये। शब्दों के अक्षरों को पृथक् कराते समय उनकी मात्रा तथा रूप को समझाने की कोशिश न कीजिये। शब्द के अक्षरों को दिखाते समय ऐसी कोशिश न करनी चाहिये कि जिससे विद्यार्थियों की समझ में यह आवे कि अध्यापक अक्षर पढ़ा रहे हैं। अध्यापक सचमुच तो शब्द ही पढ़ाते हैं, परन्तु शब्द के एक-एक अक्षर का उच्चारण अल्पावकाश देकर करते हैं। ऐसा करने में अल्पावधि में विद्यार्थियों की समझ में यह बात आती है कि दोहा या चौपाई शब्दों से बनी है और शब्द अक्षरों से। शब्दों को 'हिगराने' में या उनके अक्षर अलग-अलग दिखलाते समय छात्रों का मन

स्वाभाविक रीति से काम करता रहता है। और १०-१५ दिन में विशिष्ट आवाज़ का उठाना और उसके साथ ही साथ विशिष्ट चिह्न का आँखों के सामने आना, इन दोनों बातों के समन्वय से अक्षरों की पहचान हो जाती है। इस ढंग से श्यामपट पर टँगा हुआ चार्ट क्लास को पढ़ाने के बाद विद्यार्थियों को आदेश दें कि वे वही भजन अपनी पहली पोथी में निकालें। शिक्षक जिन तीन क़दमों से अर्थात् (१) भजन का गाना-गवाना (२) शब्दों को अलग-अलग दिखलाना तथा (३) शब्द को हिगराना या उसके अक्षर अलग-अलग दिखलाना। उन्हीं तीनों क़दमों के सहारे से पोथी में के भजन पढ़वायें। पढ़ाते समय विद्यार्थी शब्द या अक्षर के नीचे अपनी उँगली रख रहे हैं, इस बात का ध्यान अध्यापक अवश्य रखें। विद्यार्थियों को दोहा या भजन का भली-भाँति परिचय होने के पश्चात् लिपि-पुस्तक में या साधारण नोट बुक पर एक पंक्ति की प्रतिलिपि (नक़ल) करने के लिये आदेश दें। इससे लाभ यह होगा कि हाल ही में आँखों के सामने से निकले हुए अक्षरों के सम्बन्ध में उनकी कल्पना अधिक स्पष्ट होगी।

गीत पढ़ाने का ढंग

गीत पढ़ाने के लिए निम्नलिखित क़दम हैं:—

(१) सुस्वर से आदि से अन्त तक पूरा गीत गाकर सुनाइये तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार उसका अर्थ समझाइये। तदनन्तर एक-एक पंक्ति या, पंक्ति बहुत लम्बी हो तो, उसके खण्ड करके उसे दो या तीन बार गाइये और गवाइये।

(२) प्रत्येक पंक्ति पढ़ाते समय उसके एक-एक शब्द का उच्चारण स्पष्ट करके दो-तीन बार छात्रों से उसको पढ़वाइये तत्पश्चात् पूरी पंक्ति या उसके खण्ड, गीत के ढंग पर दो तीन बार पढ़वाइये। और अन्त में जब गीत के शब्दों से तथा उनकी पंक्तियों से यथेष्ट परिचय हो

जायगा तब समूचा गीत गाने के ढंग पर गाइये—गवाइये। इस पद्धति को पूर्ण और खण्ड पद्धति (Part and whole method) कहते हैं, जिसका वर्णन हमने अगले अध्याय में किया है।

अक्षर मात्रा और मिलावट पढ़ाने का ढंग

(१) अक्षर-ज्ञान—सोलह भजन चार्टों का पढ़ाना, बहुत हुआ तो, दो सप्ताह में समाप्त होता है। तीसरे सप्ताह में अध्यापक इन्हीं सोलह भजन चार्टों को दुहरावें और इसके साथ ही साथ गिरिधर कवि की कुण्डलियाँ पढ़ावें। विद्यार्थी जिस समय छोटे-छोटे भजन पढ़ते हैं और चार्टों के अक्षर हिगराते हैं, उस समय उनके मस्तिष्क में अक्षर के सम्बन्ध में स्पष्ट कल्पनाएँ उत्पन्न होती हैं। परन्तु, वे अक्षर कितने हैं और किस क्रम से हैं इसे नहीं जानते। अध्यापक को चाहिए कि आठ-दस दिन पढ़ाई होने के पश्चात् पाँच-छः दिन नित्य दो बार अक्षरों का चार्ट पढ़वालें। परन्तु, यह पढ़ाई हाज़िरी (उपस्थिति) के रूप में होगी अर्थात् कोई अक्षर रटाया नहीं जायगा। जिस ढंग से कक्षा में विद्यार्थियों की हाज़िरी ली जाती है और नाम लेने पर विद्यार्थी खड़े हो अपनी शकल दिखाकर बैठ जाते हैं, उसी तरह अक्षरों का नाम पुकारकर प्रौढ़-छात्र उँगली से अक्षर दिखाते हैं। इस प्रकार का अभ्यास अध्यापक तीसरे सप्ताह में प्रतिदिन चार-पाँच मिनट तक कराते रहें। कुछ छात्रों का यदि वर्णमाला का ज्ञान एक महीने के पश्चात् अस्पष्ट रहा तो उस समय क्रमशः वर्णमाला रटाने से कुछ हानि न होगी और छात्र भी बिना थकावट अनुभव किये दो-तीन दिन के भीतर वर्णमाला अच्छी तरह सीख जायेंगे, क्योंकि अक्षरों के प्रति छात्रों की बहुत-सी धारणा स्पष्ट बनी ही रहती है।

तीसरे सप्ताह में एक ओर तो आधे चार्टों का दुहराना, पुराने गानों का दुहराना और नये गीतों की कुछ पंक्तियों का पढ़ाना

चलता रहेगा और दूसरी ओर अक्षरों की पूरी पहचान दिलाने का काम प्रचलित रहेगा। वह इस ढंग से कि अध्यापक श्यामपट पर ट से ड; ड से ड़; ड़ से ह; ट से ठ और ढ; और ढ से द कैसे बनता है यह दिखलाएँ। सारांश यह कि अक्षरों की समता और भिन्नता विद्यार्थियों को समझा दें। इस तरह से श्यामपट पर दो-तीन दिन सात-आठ मिनट तक समझाना उसका काम रहेगा।

(२) मात्रा-ज्ञान—पहले दस-बारह दिन चार्ट तथा गीत पढ़ते समय विद्यार्थी मात्रा समेत अक्षर पढ़ते हैं और कई एक मात्राओं के सम्बन्ध में उनकी कल्पना अस्पष्ट रूप से बनती रहती है। ऐसे समय पर मात्राओं का स्पष्टीकरण करना समयोचित होगा। दूसरे महीने से मात्रा-चार्ट का पढ़ाना प्रारम्भ कर देना चाहिए, और वह भी पर्य्यालोचन प्रणाली (Inductive method) अर्थात् उदाहरणों से नियम बनाने की पद्धति के सहारे कि जिसका वर्णन हमने अगले अध्याय में किया है। बहुत से उदाहरण देकर उसके सम्बन्ध में नियम बनाया, जैसा कि हमने अपने मात्रा-चार्ट में किया है। यह आवश्यक नहीं कि सब मात्रा-चार्ट एक सप्ताह में समाप्त किये जायँ। मात्रा-चार्ट सब सात ही हैं। पाँचवें और छठे सप्ताह में वे पढ़ाये जायँ और दुहराये जायँ। छठे या सातवें सप्ताह में क्रमशः ककहरा या बारहखड़ी भिन्न-भिन्न अक्षरों के साथ लिखने का अभ्यास विद्यार्थियों से कराया जाय।

(३) मिलावट-ज्ञान—मिलावट का ज्ञान पाँच नियमों में पूर्ण होता है। परन्तु, मिलावट के नियम शिक्षा के प्रारम्भ से दो महीने तक न पढ़ाये जायँ। इन दो महीने में गीत तथा गद्य पढ़ने में विद्यार्थियों की दृष्टि के सामने से बहुत से संयुक्ताक्षर निकलेंगे। मिलावट के चार्ट नवें और दशवें सप्ताह में पढ़ाये जायँ।

गीतों के पढ़ाने का क्रम

यह आवश्यक नहीं है कि जिस क्रम से पुस्तक में गीत दिये गये हैं उसी क्रम से पढ़ाये जायँ। गीतों के पढ़ाने का क्रम अध्यापक तथा

विद्यार्थियों की रुचि पर निर्भर रहेगा। अधिकतर आल्हा पहले पढ़ाना कभी-कभी अधिक श्रेयस्कर ज्ञात होगा। इसके दो कारण हैं एक तो देहाती आल्हा बहुत पसन्द करते हैं दूसरे आल्हा में शब्द प्रयोग बहुत ही सरल हैं।

हमारी शिक्षा-शैली तथा पहली पोथी में दिये हुए पाठ देखकर पाठकगण सशंक होंगे। उनके मन में प्रथम यह शंका उत्पन्न होगी कि बिना अक्षर पढ़े कृषकगण कैसे साक्षर बन सकते हैं। इस स्थल पर हम केवल यही कहना चाहते हैं कि हमारी पद्धति से कृषकगण गीत गाते-गाते और देखते-देखते ही शीघ्रता से साक्षर बन जाते हैं।

हमारी शिक्षा-शैली आधुनिक शैक्षणिक मनोविज्ञान के सिद्धान्त पर आधार भूत है और वे मनोविज्ञान के सिद्धान्त कृषकों के मस्तिष्क पर अचूक प्रभाव डालते हैं। इन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का विवेचन हमने अगले अध्यायों में करने का निश्चय किया है।

पाठकों का मन और जिस दूसरी बातसे आकर्षित तथा सशंक होगा वह यह है कि विद्यार्थियों को साक्षर बनाने के लिए जो प्राथमिक पुस्तकें निर्माण की जाती हैं उनमें अधिकतर कहानियाँ रहती हैं। इसके विपरीत हमारी पहली पोथी में आदि से अन्त तक गाने और भजन दिये गये हैं। पाठ्य विषय का ऐसा निर्वाचन करने में हमारे विचार समझने की जिज्ञासा सम्भवतः पाठकों में उत्पन्न होगी। अतएव हम अपने विचार यहाँ प्रकट कर देना चाहते हैं।

हमारे विचार सामाजिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तपर निर्धारित हैं। यह योजना (Social Psychology) जिनके लिए हम बना रहे हैं वे हमारे विद्यार्थी प्रौढ़-कृषक हैं। उनकी मनोवृत्ति भक्तिभाव की ओर झुकी हुई है। वे बहुधा कण्ठस्थ भजन और गानों से प्रेम रखते हैं। अतएव हमें अपनी शिक्षा-प्रणाली भी ऐसी रखनी चाहिए जो उनकी मनोवृत्ति से मिलती-जुलती हो। यदि हम अपने पढ़ाने का ढंग उनकी रुचि के अनुकूल रखेंगे तो वे विद्यार्थी बड़े चाव तथा प्रेम से पढ़ेंगे और हमें शिक्षण में अधिक सफलता मिलेगी।

शिक्षा-शास्त्र का प्रमुख सिद्धान्त है कि शिक्षा का विषय ऐसा हो जो विद्यार्थियों को जीवन में कार्य-क्षम बनाता हो। हम प्रति दिन देखते हैं कि हमारे देहाती किसान अधिकतर रामायण, आल्हा, फाग और विरहा से बहुत प्रेम रखते हैं, अतः उनके पढ़ाने के विषयों में इन बातों का समावेश क्यों न किया जाय? इस प्रकार शान्तिपुर-पद्धति के द्वारा शिक्षा देने से शिक्षा-शास्त्र के इस सिद्धान्त का मन्तव्य भी पूरा होता है।

आज तक का अनुभव कहता है कि देहात के स्कूलों से उत्तीर्ण चतुर्थश्रेणी के विद्यार्थी पाँच वर्ष के भीतर पुनः निरक्षर बन जाते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि उनके पठित विषयों में ऐसा कोई विषय नहीं रखा गया है जो उनके जीवन से सम्बन्ध रखता हो और वे उस विषय की पुस्तकें हर समय पढ़ते रहें और साथ ही उनका पढ़ने का अभ्यास भी निरन्तर जारी रहे। अभ्यास छूट जाने से ही वे अपने आप निरक्षर बन जाते हैं। शान्तिपुर-शिक्षा-पद्धति में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है।

ऊपर यह बात लिखी जा चुकी है कि देहात के किसान रामायण, आल्हा आदि से अत्यधिक प्रेम रखते हैं। पढ़ना-लिखना सिखाने के पूर्व उन्हें यह अनुभव होता है कि हमारे गाँव में एक भजन-मंडली स्थापित हो रही है। उस भजन-मंडली के साथ वे प्रेम से सम्मिलित होते हैं। इसी सिलसिले में उनसे यह प्रतिज्ञा ले ली जाती है कि जैसे बिना स्नान किये वे भोजन नहीं कर सकते, वैसे ही प्रौढ़ पाठशाला में शिक्षित होने के अनन्तर बिना रामायण की दो चौपाई पढ़े वे भोजन भी न करें। यदि वे अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन करते रहें तो यह निश्चित है कि उनके ऊपर निरक्षरता का कलंक फिर से नहीं लग सकता।

इस शिक्षा-शैली के प्रयोग से यदि हम देहात में स्थायी रूप से भजन-मण्डली स्थापित करके उसका संचालन सुचारु रूप से कर सकें

तो हम ग्राम-वासियों को निम्नाङ्कित लाभ पहुँचाकर उनका पुनरुत्थान करने में अवश्य सफल होंगे।

(१) पढ़े-लिखे मनुष्य फिर से अपढ़ न बनेंगे।

(२) देहात के लोगों में जो मनहूसियत तथा उदासीनता आगई है उसे हम भजन-मण्डली के द्वारा दूर कर सकेंगे।

(३) हर समय उनके कानों में ऐसा उपदेश सुनाई पड़ेगा जिससे उनका मानसिक तथा आचारिक सुधार होगा। दुराचार, पारस्परिक वैमनस्य एवं विश्वासघात आदि बुराइयों का नाश होगा। वे इन उपदेशों से लाभान्वित होकर स्वयं आदर्श समाज-नीति को स्थापित करने में समर्थ होंगे।

(४) देहात में भजन-मण्डलियों को स्थापना करके साक्षरता का प्रचार करने से हमें यह पूर्ण आशा है कि भजन-मण्डली में प्रति मंगलवार के दिन तुलसीदासजी की रामायण गाई जायगी। तुलसीदासजी की रामायण हिन्दी-साहित्य का एक अमूल्य रत्न है। साधारणतः देहात के मनुष्य तुलसीदासजी की रामायण बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। हिन्दी-साहित्य में इसके समान उच्च कोटि का भक्तिमय काव्य दूसरा मिलना दुर्लभ है। यह काव्य सदाचार, नीति और उच्च तात्विक-ज्ञान से ओत-प्रोत है। रामायण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आजतक किसी भी धर्मावलम्बी ने इसपर आक्षेप करने का साहस नहीं किया। इसे सभी मतानुयायी आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसकी रचना ऐसे अच्छे ढंग से की गई है कि सभी सम्प्रदाय और धर्म के लोगों को इससे अमूल्य शिक्षा मिलती है। रामायण की दूसरी विशेषता यह है कि इसके पठन में मूर्ख से मूर्ख एवं पण्डित से पण्डित को भी एक ही तरह का आनन्द प्राप्त होता है। हमारी यह आशा व्यर्थ न होगी कि सुशिक्षित और अशिक्षित जनों में जो अन्तर आज दिखाई पड़ता है वह रामायण की भजन-मण्डली द्वारा शीघ्र ही दूर हो जायगा। तुलसीदासजी की रामायण आध्यात्मिक विषय तथा सांस्कृतिक प्रगति में साम्यभाव उत्पन्न करनेवाला अमूल्य ग्रन्थ है।

ग्यारहवाँ अध्याय

मनोवैज्ञानिक भूमिका—(पहला खण्ड)

परिशिष्ट 'व' में जो भजन-चार्ट दिये हैं, इनसे हम अपठित सयानों को अक्षर—ज्ञान देने का श्रीगणेश करते हैं, पिछले अध्याय में इस चार्ट के पढ़ाने की शिक्षा-शैली के सम्बन्ध में हमने विवरण तथा उसके 'क़दम' दिये हैं। पाठकों के ध्यान में यह वात शीघ्र आ जायगी कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली से हमारी शिक्षा-प्रणाली भिन्न है और हमने शिक्षा-शैली में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्त्तन किये हैं। अतएव इस स्थान पर परिवर्त्तन करने की उपयुक्तता तथा उसके पीछे छिपे हुए मनोविज्ञान के तत्वों का विवरण देना अनुचित न होगा।

(१) व्यक्तिगत (V. S.) सामुहिक शिक्षा-शैली हमारी प्रणाली के अनुसार कक्षा के तीस-चालीस प्रौढ़ छात्र एकत्र पढ़ते हैं अर्थात् पाठ्य पद्य रहे या गद्य रहे, दोहा हो या गीत हो एक स्वर से पढ़ते हैं। इसे अँगरेज़ी में कोरस (Chorus) में गाना कहते हैं। पढ़ाने का ढंग व्यक्तिगत के स्थान पर सामुहिक है, इस ढंग से पढ़ाने में अध्यापक को निम्न लिखित लाभ होते हैं:—

(अ) क्योंकि सब छात्र इकट्ठा पढ़ते हैं और उनकी प्रगति बरावर रहती है इससे अध्यापक की प्रत्येक छात्र के पढ़ने की ओर यथेष्ट ध्यान देने की कठिनाई दूर होती है। सामान्य रीति से प्रौढ़-पाठशाला में जो दृश्य देखने में आता है कि आठ-दस छात्र अध्यापक का ध्यान पुकार-पुकार कर अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं और कभी-कभी कोई विद्यार्थी इसी हेतु धोती खींचता है, तो कोई क़मीज़, ऐसी आपत्ति से हमारा अध्यापक पूर्ण बच जाता है।

(ब) उपर्युक्त कक्षा का प्रबन्ध सुचारु रूप से करने में शिक्षक को जो लाभ होता है इसके अतिरिक्त शिक्षा-प्रदान में दो वैज्ञानिक लाभ उसको और मिलते हैं, जो सामुहिक मनोविज्ञान (Mass Psychology) शास्त्र पर निर्भर है।

(स) संघ-चेतना—समुदाय के व्यक्ति जिस समय किसी एक ही काम में जुटे रहते हैं और कार्य भी साथ ही साथ करते हैं उस समय एक अद्‌भुत चेतना या भावना हर एक व्यक्ति के हृदय में पैदा होती है। उसकी अव्यक्त शक्ति व्यक्त होने लगती है और अपनी शक्ति के विषय में रहनेवाला उसका अविश्वास दूर हो कर वह निर्भय हो जाता है। कार्य चाहे सामाजिक विचार से अच्छा रहे चाहे बुरा, एक विशिष्ट चेतना उत्पन्न होती है। साम्प्रदायिक झगड़े में, जहाँ सैकड़ों आदमी इकट्ठे होते हैं और अनिष्ट कार्य कर जाते हैं, ऐसे ही व्यक्ति अधिक पाये जाते हैं जो भीरु थे और अकेले अपनी हिम्मत पर अपने विचार से कभी ऐसा अनिष्ट कार्य न करते, किन्तु समुदाय में आकर उनकी विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है। हर एक व्यक्ति भावना-प्रद बनता है, उसकी भावना उसको एक विचित्र शक्ति देती है। वैसी ही बात अच्छे कार्य के सम्बन्ध में है। मेले-ठेले में जैसे ८—१० आदमी जाते हैं तो उनके साथ-साथ छोटे-छोटे बालक भी दूर-दूर तक पैदल चले जाते हैं, यह शक्ति छोटे बालकों में कहाँ से आई ? इसका उद्‌गम संघ-चेतना (Group Consciousness) में है।

हमारे देहाती सयाने किसान साक्षरता प्राप्त करने में वैसे ही निरुत्साही हैं। वे बहुत दिनों से जातीय निरक्षरता रहने के कारण वयस्क होने के पश्चात् साक्षरता प्राप्त करने के विषय में वैसा ही निरुत्साह दिखाते हैं अर्थात् अपनी देहाती भाषा में कहते हैं कि यह मेरी औक़ात या शक्ति के बाहर की बात है या मेरे मान या बश की बात नहीं। हमें उनका अपने शक्ति के सम्बन्ध में यह अविश्वास

दूर करना है। जब हमारी शिक्षा-प्रणाली के अनुसार देहात के किसान सामुहिक रीति से गाने के साथ पढ़ते हैं तब मन में अविश्वास रखनेवाले भी सब के साथ तान लगा देते हैं। धीरे-धीरे उनका अविश्वास दूर हो जाता है।

(द) संघ-चेतना के साथ और भी एक घटना देखने में आती है कि कार्य करने में उसको थकावट ज्ञात नहीं होती। जब देहात में रामायण, फगुआ, होली आदि सामुहिक गाने के लिए आदमी बैठते हैं तब कई-कई घंटों तक एक टोली दूसरी टोली के समक्ष अपनी आवाज़ की आज़माइश करती गाती हैं पर थकती नहीं हैं। वैसे ही मेले-ठेले में स्त्रियाँ गीत गाती मीलों तक चली जाती हैं, पर थकती नहीं। हमारी शिक्षा-प्रणाली में भी जब सयाने विद्यार्थी २-२ घंटे तक सामुहिक प्रकार से गाते हैं और दो-दो घंटों तक अपनी आँख अपनी पुस्तक की ओर लगाते हैं, तब अच्छे-अच्छे शिक्षा-विशारद भी आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। डेढ़ दो घंटे तक लगातार पुस्तक की ओर दृष्टि लगाने की शक्ति उनको सामुहिक शिक्षा-शैली रहने से ही प्राप्त होती है और इसी कारण उन्हें थकावट मालूम नहीं होती।

(२) सनातन काल से साक्षरता-प्रदान का कार्य अक्षर, शब्द और कहानियों द्वारा होता है अर्थात् पढ़ाने का विषय गद्य रहता है। इसके विपरीत, पाठकों को हमारी पहली पोथी देखकर ज्ञात होगा कि हम पद्य की सहायता से ही उनको साक्षर बनाने का प्रयत्न करते हैं। हमारी योजना में संगीत को एक विशेष स्थान मिला है। शिक्षा के प्रारम्भ में अक्षरों की पहचान हम संगीत के सहारे करते हैं; विद्यार्थियों के पढ़ने की गति, उनको गाने-बजाने की धारा में छोड़कर अर्थात् सङ्गीत से ही, पढ़ाते हैं। शिक्षा की अवधि समाप्त होने के पश्चात् छात्रों में रामायण, आल्हा इत्यादि देहाती गानों में रुचि बढ़ाकर

संगीत के बल पर ही, हम साक्षरता स्थिर करते हैं, सारांश यह कि प्रारम्भ, मध्य और अन्त में हमारी योजना की क्षमता संगीत पर ही निर्भर है। अतः इस स्थल पर शिक्षा-प्रदान में संगीत का समावेश हमने किस विचार से किया है, यह कहना अनुचित न होगा।

(अ) सङ्गीत में चित्त को आकर्षित करने की एक अद्भुत शक्ति है। मनुष्य ही नहीं, किन्तु पशु भी हिरन और सर्प इत्यादि संगीत की तान सुन आकर्षित हो स्तब्ध खड़े हो जाते हैं। हमारे कृपकगण साक्षरता में सङ्गीत रहने के कारण पढ़ने की ओर शीघ्र आकर्षित हो जाते हैं। उनकी उपस्थिति के सम्वन्ध में अध्यापक की कहीं से भी शिकायत नहीं आती, इसका मुख्य कारण यह है कि साक्षरता-प्रदान में शिक्षा की रूक्षता सङ्गीत ने हटाई है।

(२) सामुहिक शिक्षा-शैली में हमने कहा है कि छात्रों में एक संघ-चेतना उत्पन्न होकर वैयक्तिक अविश्वास नष्ट होता है। सङ्गीत में वैसे ही एक अन्य प्रोत्साहित करने की शक्ति है। कहा जाता है कि (American War of Independence) अमेरिका के स्वातंत्र्य-युद्ध में लाँगफेलो नाम का कवि बिगुल (ट्रम्पट) बजाकर हताश सेना को प्रोत्साहित करके आगे बढ़ाता था।

हमारी शिक्षा-प्रणाली में संगीत का समावेश करने से देहात में साक्षरता अधिक लोक-प्रिय होगी और संगीत रहने के कारण देहात के किसान साक्षरता बढ़ाने में उत्साहित होंगे।

(३) संघ-चेतना कभी-कभी तामसिक वृत्ति की भी होती है, किन्तु संगीत एक सात्विक शक्ति देनेवाली संजीवनी है। थके-माँदे को फिर से स्फूर्ति और आनन्द देकर थकावट दूर करनेवाली बूटी है। हमारी शिक्षा-प्रणाली में संगीत का समावेश होने के कारण साक्षरता-ग्रहण में थकावट तो होती ही नहीं, प्रत्युत दिन भर घर-गृहस्थी के शारीरिक कष्टों की थकावट संगीत से दूर होती है, विशेषतः देहात

की प्रचलित खिन्नता और मनहूसपन हटाने के लिये हमारी सङ्गीत मय शिक्षा-प्रणाली कार्य-क्षम होगी।

(४) सङ्गीत की सहायता से पढ़ाने के प्रयोग–जो हमने ६-७ वर्ष से किये हैं, उनसे एक बड़ा भारी निष्कर्ष निकला है। वह पढ़ने की गति बढ़ाने के विषय में है। पढ़ने की गति और अर्थ-बोध में घनिष्ठ सम्बन्ध है। पाठ्य-विषय जितना शीघ्र पढ़ाया जायगा, उतना ही शीघ्र पढ़नेवालों के हृदय में उसके अर्थ का बोध अच्छा होगा। पढ़ने की गति को बढ़ाने के लिये जितने साधन इस समय उपलब्ध हैं, उनमें संगीत की धारा में पाठक को छोड़कर पढ़ने की गति बढ़ाना ही सर्वोत्तम है। इस रीति से पढ़ने की गति बढ़ाने में आँखों की जो खींचातानी होती है वह बहुत ही कम कष्टदायक होती है; क्योंकि इस खींचातानी में स्वर की मधुरता और विषय की मनोरञ्जकता रहती है। आँखें ढकेली तो जाती हैं, किन्तु इससे उन्हें कष्ट नहीं होता। इस प्रकार पढ़ने की गति बढ़ाने का शिक्षा का महत्व पूर्ण कार्य सरलता से सिद्ध होता है।

(५) देहात के किसान साक्षर होने के पश्चात् प्राप्त की हुई साक्षरता का उपयोग साधारणतः कैसे करेंगे? समाचार-पत्र पढ़ना, मासिक-पत्र देखना तथा अन्य खेती, स्वास्थ्य और पशु-पालन आदि स्वार्थ के लिये वाङ्मय यथा-तथा ही करेंगे।

सामान्य जनता साक्षरता का प्रयोग अन्य देशों में भी वैसे ही करती है। उपन्यास, अद्भुत घटनायें, जैसे; नारी-हरण आदि स्फुट समाचार पढ़ने में ही वहाँ के साक्षर आदमी अपनी साक्षरता का प्रायः उपयोग करते हैं। हमारे देहात के किसान अधिकतर आल्हा, रामायण, चौताल, अद्भुत कहानियाँ, जैसे; तोता मैना इत्यादि के पढ़ने में ही अपनी साक्षरता का उपयोग करेंगे। उनके पाठ्य-विषय में अधिकतर सङ्गीत की किताबें, वह भी सामयिक गान की रहेंगी।

हमारी शिक्षा-प्रणाली में पहले से ही संगीत का समावेश रहने के कारण शिक्षा की अवधि समाप्त होने के पश्चात् भी साक्षरता की रक्षा और वृद्धि करने के लिये सङ्गीत ही आधार होगा।

३—पहली पोथी में दिये हुए दोहे और गीतों तथा प्रौढ़-पाठशाला का पद्य-पाठ्य-क्रम देखकर पाठकों को विचार होगा कि वे सब एक ही मेल के हैं अर्थात् वे भक्ति भाव से भरे हुए हैं, और विशेषकर यह वात भी उनके मनमें खटकेगी कि एक ओर तो आधुनिक शिक्षा-विशारद आधिभौतिक पाठ्य-विषय पर जोर दे रहे हैं, दूसरी ओर हम केवल आध्यात्मिक गीत ही ले रहे हैं। कुछ लोगों का हमारे ऊपर यह भी आक्षेप होगा, कि हम शिक्षा को धर्म का रंग दे रहे हैं और यह वात समाज के ध्यान से यदि अनुचित न हो तो उचित भी नहीं है। इस विषय में हम पाठकों के सामने तीन वातें उपस्थित करना चाहते हैं। ये तीनों वातें मनोविज्ञान तथा शिक्षा-शास्त्र में विशेष रूप से अटल हैं। इन गीतों का चुनाव करने में हमारे व्यक्तिगत मत का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

(अ) शिक्षा-प्रदान में मन का रुख (Mental set)—इस मनोवैज्ञानिक तत्त्व की उपेक्षा कोई शिक्षक नहीं कर सकता।

डाक्टर ड्यूई ने एक जगह कहा है, "You can take horse to water but you cannot make him drink" अर्थात् आप घोड़े को पानी के पास ले जा सकते हैं, परन्तु उसे पानी पीने के लिए वाध्य नहीं कर सकते। आप बालकों तथा सयानों की शारीरिक उपस्थिति कक्षा में करा सकते हैं, लेकिन यदि वे न चाहें तो उनके मस्तिष्क में वलात् ज्ञान नहीं भर सकते। जब तक पाठ्य-विषय उनकी अभिरुचिका न होगा, तव तक वे ठिकाने से न पढ़ेंगे और इसके साथ ही साथ पाठ्य-विषय जितनी अधिक मात्रा में उनकी अभिरुचि का होगा, उतनी ही अधिक तल्लीनता से वे पढ़ेंगे। हिन्दुस्थान के सभी धर्मानुयायी

ग्रामीण प्रौढ़ों के मन का झुकाव भक्ति की ओर है। हमने अपने आज तक के देहात में किये हुए प्रयोगों से यह एक निष्कर्ष निकाला है कि यदि निरक्षर ईसाई को साक्षर बनाना हो तो बाइबिल की दस आज्ञायें (Ten Commandments) पढ़ने के लिये दी जायँ तो वह जल्दी सीख जाता है। यदि मुसलमान को साक्षर बनाना हो तो "अल्लाहो अकबर" से शुरू करने से वह जल्दी साक्षर हो जायगा। इसी तरह एक निरक्षर हिन्दू "राम लछमन जानकी" से शीघ्रता से साक्षरता को अपनाता है।

इस स्थल पर यदि हम यह कहें कि कभी-कभी व्यापारी लोग शिक्षकों की अपेक्षा मनोविज्ञान की अधिक जानकारी रखते हैं और उससे अधिक लाभ उठाते हैं, तो यह कथन अनुचित न होगा। यदि किसी जर्मनी के साबुन के कारखानेदार को बड़े दिन में यूरोप में साबुन की बट्टियाँ बेचना होगा तो वह लेबुल पर सेंटा क्रुज (Santa Cruz) का चित्र लगायेगा। यदि हिन्दुस्थान में बेचेगा तो श्रीकृष्णजी का चित्र, या चाँद-सितारा लगाकर भेजेगा और बर्मा में महात्मा बुद्धजी का चित्र लगाकर भेजेगा। चित्र लगाने से कारख़ाने के मालिक के व्यक्तिगत मत का प्रश्न उपस्थित नहीं होता, वह तो ग्राहकों की अभिरुचि पर निर्भर रहता है। यदि उपमात्मक विचार से कहा जाय तो यह कहना ठीक होगा कि हमने साक्षरता की दुकान लगाई है। अब हम इसकी बिक्री के लिये इसे वैसा ही रूप और रंग देंगे, जिससे हमारे ग्राहक अर्थात् देहाती प्रौढ़-छात्र साक्षरता को अपना लें। रूप और रंग का देना प्रौढ़छात्रों की मनोवृत्ति (Mental-set) पर निर्भर रहेगा।

(ब) शिक्षा-प्रदान का वातावरण भाव पूर्ण रहना चाहिये, जिसको मनोविज्ञान शास्त्र में Warming up atmosphire अर्थात् निश्चेतन

को चेताना कहते हैं। निस्तेज तथा भाव रहित वातावरण में विद्यार्थियों की और विशेषकर प्रौढ़ विद्यार्थियों की धारणा जागरित नहीं होती।

(स) हमारी प्रौढ़-शिक्षा-योजना का मुख्य लक्ष्य यह है कि प्रौढ़ों को जीवन में कार्यक्षम बनाना। आर्थिक, सामाजिक, नागरिक तथा आध्यात्मिक जीवन में हमें उन्हें कार्यक्षम बनाना है। इस बात से कोई इनकार नहीं करेगा कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में सांस्कृतिक जीवन एक महत्त्व पूर्ण पहलू है, जिसमें उसकी स्थायी लालसा (Abiding interest) केन्द्रित रहती है। ऐसी परिस्थिति में हमें शिक्षा-प्रदान के लिये आध्यात्मिक गीतों को संग्रह करने तथा पढ़ाने में हिचकने की आवश्यकता नहीं है।

(४) प्रचलित शिक्षा-प्रणालियों में अक्षर-ज्ञान का प्रदान वर्ण-माला से करते हैं। इसके पश्चात् दो-दो तीन-तीन अक्षरों के शब्द पढ़ाये जाते हैं। कुछ दिन के बाद दो-दो तीन-तीन शब्दों के वाक्य पढ़ने के लिये दिये जाते हैं। पढ़ाने की यह शैली संश्लेषणात्मक (Synthetic) है। इसमें व्याकरणों से रचित तर्कयुक्त वर्णमाला जिसमें कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, और पवर्ग एवं कण्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दन्त्य और ओष्ठ्य इत्यादि वर्ण होते हैं, पहले रटाये जाते हैं। इस शैली को तर्क-सङ्गत (Logical) कहते हैं। इसके विरुद्ध हमारी शैली है। इसमें अर्थ-पूर्ण दोहे चौपाई या गीत पहले पढ़ाये जाते हैं। इसके पश्चात् विद्यार्थी का ध्यान शब्दों की ओर आकर्षित किया जाता है। और अन्त में वर्णों या अक्षरों की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया जाता है। इस शिक्षा-शैली में अर्थ-पूर्ण दोहे या गीत क्रमशः शब्दों और अक्षरों में खण्डित किये जाते हैं। अतएव इसे विश्लेषणात्मक (Analytical) पद्धति कहना उचित होगा। सचमुच मनोविज्ञान-शास्त्र में इसे मनोवैज्ञानिक शैली (Psychological method) कहते हैं। वर्णमाला से अक्षर-ज्ञान कराने की पद्धति अत्यन्त नीरस, थकावट

पैदा करनेवाली और उत्सुक विद्यार्थियों को भी विमुख करनेवाली है। हम इस अध्याय में इस तर्क-संगत-पद्धति का खण्डन करना चाहते हैं और उसके साथ ही साथ डाक्टर ह्यूए (Dr. Huey) और डाक्टर जड्ड (Dr. Judd) की पठन-क्रिया के किये हुए अन्वेषण के ऊपर रची हुई मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का समर्थन भी करना चाहते हैं। सबसे पहले तर्क-सङ्गत-पद्धति व्यवहार-बुद्धि से कितनी विसंगत है, यह दिखाने के लिये हम यहाँ केवल एक ही उदाहरण देना चाहते हैं।

यथार्थ में पढ़ना और पहचानना एक ही बात है। पढ़ने तथा पहचानने की क्रिया में तनिक भी अन्तर नहीं है। पहचानने में दुनिया की स्थूल चीज़ों को आँखों से देखकर उनका अर्थ पढ़ते हैं और पढ़ने में काग़ज़ पर लिखे हुए चिह्नों का मतलब पहचानते हैं। वास्तव में इन दोनों क्रियाओं में दृष्टि से सञ्चालित मानसिक क्रिया एक ही है।

पहचानने में हमें हज़ारों स्थूल वस्तुओं तथा आदमियों का ज्ञान रखना पड़ता है, किन्तु पढ़ने में केवल वर्णमाला के ३५-४० भिन्न-भिन्न चिह्न से परिचय रखना पड़ता है। ये वर्णमाला के चिह्न या अक्षर वार-वार कभी लाठी, कभी टोपी, कभी झंडी, कभी तिलक लगाकर वहुरूपियेपन से काग़ज़ पर अवतरित होते हैं। कितना भी हुआ तो भी लिखित पृष्ठ के ऊपर यह ३५-४० अक्षरों का ही खेल है। इनकी तथा इनके परिवर्त्तित रूपों की दृष्टिपात के साथ पहचान करना ही पढ़ना है।

संसार में हज़ारों वस्तुओं को पहचानना सयाने तथा बालक सीख गये हैं, परन्तु इस पहचानने की क्रिया में यह परिश्रम कभी किसी ने नहीं किया गया कि एक-एक वस्तु को लेकर उसका नाम रटा हो और वह भी किसी क्रम से।

इनकी पहचान सबको स्वाभाविक रूप से होती है, वस्तुओं के नामोच्चारण के साथ वार-वार आँखों के सामने आने से ही उनकी

पहचान होती है। वही बात पढ़ने में भी है। अक्षरों की पहचान उनके बार-बार स्वाभाविक अर्थ-पूर्ण परिस्थिति में अवतरित होने से होती है। इन ३५-४० अक्षरों को क्रमशः रटना, अपरिचित ३५-४० आदमियों को उनसे पहचान करने के लिए क्रमशः एक-एक को पकड़ कर उनके नाम रटते-बैठने के समान हास्यास्पद और अस्वाभाविक है। अक्षरों की पहचान उनको बार-बार स्वाभाविक परिस्थिति में लाकर कराना उचित और व्यवहार-सम्मत होगा।

प्रचलित शिक्षा-परिपाटी में लिपि के सब अक्षरों से पहले परिचय करा दिया जाता है। उसके पश्चात् अक्षरों के योग से बने हुए दो-दो या तीन-तीन अक्षरों के शब्द पढ़ाये जाते हैं। शब्द के पश्चात् मात्रा और मात्रा के पश्चात् वाक्य पढ़ाने का अभ्यास कराया जाता है। यह शिक्षा-प्रणाली अत्यन्त नीरस, क्लिष्ट और मानसिक थकावट पैदा करने-वाली है। सम्भव है, अध्यापक के भय से छोटे-छोटे बच्चे इस पद्धति से भी कुछ दिनों में कुछ सीख भी जायँ, परन्तु प्रौढ़-छात्रों को इस ढंग से कुछ सिखाना असम्भव है; क्योंकि उनका मन बच्चों की तरह परिवर्त्तनशील नहीं होता। दूसरी बात यह है कि थके हुए प्रौढ़ छात्रों के सामने जब अक्षर-प्रणाली रखी जायगी तो संभव है वे यों ही १५-२० दिन तक आकर स्कूल में पढ़ेंगे। परन्तु कई स्थानों के अनुभव से पता चलता है कि प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की नीरसता तथा क्लिष्टता से उकताकर प्रौढ़-छात्र पाठशाला छोड़ बैठते हैं। अतएव हमारी शिक्षा-शैली मनोरंजक, सरस और काम की होनी चाहिये। पाठशाला बन्द करते समय प्रौढ़ छात्रों के हृदय में एक ऐसा विश्वास पैदा करके उन्हें छुट्टी देना चाहिये कि वे अपने मनमें उत्साह से कहें कि आज हम एक नयी बात सीख आये हैं। इसी प्रकार प्रतिदिन उनके उत्साह और विश्वास को बढ़ाते जाने की आवश्यकता है।

हमने ऊपर कहा ही है कि वर्णमाला रटाकर पढ़ने की कला में श्रीगणेश करना अव्यावहारिक तथा हास्यास्पद है। किन्तु, अक्षर

रटाकर पढ़ाने की पद्धति सनातन से तथा प्रत्येक भाषा में और राष्ट्रों में जारी रही है और अभी भी अधिकतर वही जारी है। इस स्थल पर जो आधुनिक मनोवैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं और जिनमें से बहुतसे मनोवैज्ञानिक प्रयोग-शाला में नियन्त्रित वातावरण में किये गये हैं, उनका आधार लेकर हम दिखलाना चाहते हैं कि अक्षरों से पढ़ाने की पद्धति अरुचि पैदा करने के अतिरिक्त अनावश्यकीय है और यह भी दिखलाना चाहते हैं कि इस शैली से पढ़ाने से छात्रों की पठन-प्रगति में रुकावट भी होती है। प्रयोगशाला में जो नये आविष्कार हुए हैं उन सबका एक मत है कि अक्षरों से पढ़ाने की पद्धति सर्वथा त्याज्य है। जिन कारणों से मनोवैज्ञानिक इस प्रणाली को त्याज्य बताते हैं, उनमें से कुछ पाठकों के लाभार्थ नीचे देते हैं।

(१) सृष्टि की अन्य योनियों की भाँति मनुष्य को भी आँख (दृष्टि) जीवन और शरीर रक्षा के लिये मिली है। वह यह कि सङ्कट देखकर भगना और भोजनार्थ वस्तु देखकर उसका पीछा करना। दृष्टि की स्वाभाविक गति, दूर से भगनेवाले हरिन या किसी पक्षी को देखकर आकर्षित होना या दूर के वृक्ष पर लटकनेवाले फल को देख कर उसे तोड़ने के लिये लालायित होना स्वभावतः मिली है। किताब पर चिउँटी के समान छोटे-छोटे अक्षर पढ़ने के लिये क़तई नहीं मिली है। दृष्टि का पढ़ने के लिये उपयोग करना मानवी सभ्यता के विकास का दुष्परिणाम है। यह बलात्कार मानव-जाति के बालकों के ऊपर और भावी पीढ़ी में हिन्दुस्थान के सयानों पर केवल इस कारण से किया जाता है कि मानवी संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान पुस्तक के पृष्ठों पर महीन-महीन अक्षरों में अवतरित है। यह आधुनिक सभ्यता की एक विवशता है। हमें साक्षरता-प्रदान में इसका भी विचार करना है कि आँखों को अनावश्यक कष्ट न दें।

आँख का दृष्टि-कोण

आँख का दृष्टि-कोण ६०° का है। इस कोण के भीतर आई हुई सभी वस्तुओं को आँखें एक दम देखती हैं। दृष्टि पहले सम्पूर्ण वस्तु

पर जाती है न कि उसके किसी अवयव विशेष पर। जैसे किसी परिचित या अपरिचित मकान पर दृष्टिक्षेप हुआ तो नेत्र पहले सम्पूर्ण मकान को देखकर उसका पूरा चित्र ग्रहण करेंगे न कि उसके किसी भाग विशेष का। इसके पश्चात् यदि हम सूक्ष्म-दृष्टि से देखेंगे तो मकान की खिड़की दरवाजा, झरोखा आदि की ओर भी उसका लक्ष्य होगा।

सूक्ष्म-दृष्टि से देखने में आँख की पुतलियों को आकुंचित करना पड़ता है, यह बात सब के अनुभव की है। दृष्टि आकुंचित करने की क्रिया में आँखों को शारीरिक तथा मानसिक क्लेश होता है। जिस प्रकार परिचित और अपरिचित वस्तुओं की ओर देखते समय हमारी आँख समूचा पदार्थ देखती है और विशेप ध्यान देने के पश्चात् उसके अंगों की ओर ध्यान जाता है, उसी प्रकार जब हम किन्हीं परिचित और अपरिचित शब्दों की ओर देखते हैं तो स्वभावतः हम पूरे शब्द की आकृति देखते हैं। यदि अक्षर अलग-अलग और दूसरे अक्षरों से यथेष्ट अन्तर देने के पश्चात् आते तो सम्भवतः एक-एक अक्षर पढ़ने में आँख इतनी आकुंचित न करनी पड़ती, किन्तु शब्दों के अक्षर माला के दानों की भाँति सटे रहने के कारण उनकी ओर अलग-अलग देखने में बच्चों और सयानों को अपनी आँख बहुत आकुंचित करनी पड़ती है, और इस क्रिया में पढ़नेवालों को शारीरिक तथा मानसिक कष्ट होते हैं। अल्प समय में पढ़ने से पाठकों को यह भी ज्ञात होगा कि पठन-क्रिया में आँख क़तई अक्षर पढ़ती ही नहीं। अतः अक्षर-शैली से एक-एक अक्षर पढ़वाने का प्रयत्न अनावश्यक है पूरे शब्द की ओर दृष्टिपात करना और उसका आकार देखकर पहचानना यही अधिक स्वाभाविक है। मनोवैज्ञानिक शास्त्रज्ञों का पहला आक्षेप यह है कि अक्षर-शैली से पढ़ानेवाले छात्रों की आँखों को व्यर्थ थकावट देते हैं।

बारहवाँ अध्याय

वाचन-शिक्षण का ढंग

मनोवैज्ञानिक भूमिका-(दूसरा खण्ड)

हमने गत अध्याय में कहा है कि मनोवैज्ञानिकों का पहला आक्षेप अर्थात् अक्षर-शैली से पढ़ाने में छात्रों को एक-एक अक्षर की ओर आँखें लगाने में आँखों को आकुञ्चन करना पड़ता है, इस क्रिया में उनको मानसिक और शारीरिक कष्ट होते हैं। इस अध्याय में हम मनोवैज्ञानिकों के अन्य आक्षेपों के विवेचन करने का आयोजन करते हैं।

अक्षर-पद्धति से पढ़ाने की विधि

साधारण रीति से जिस पठन-शिक्षा-शैली में वर्णमाला के अक्षरों को रटाकर वाचन का श्रीगणेश किया जाता है उस पठन-शैली में अक्षरों की पहचान करने की तीन प्रकार की विधियाँ काम में लाई जाती हैं।

(१) बिना किसी चित्र या कहानी के वर्णमाला के अक्षर यों ही रटाये जाते हैं। यह पद्धति भारतवर्ष के पंचायत-शासन की पाठ-शालाओं में विशेष रूप से प्रचलित थी। चित्र या कहानी के साथ अक्षरों से परिचित करा देने की पद्धति आधुनिक अर्थात् ३०, ४० वर्ष की है। और यह Association of ideas अर्थात् दो कल्पनाओं का संयोग करके एक के स्मरण से दूसरे का स्मरण दिलाना, इस सिद्धान्त पर निर्भर है। अतएव इस स्थल पर अध्यापकों के लिये दो कल्पनाओं का संयोग और तत्पश्चात् होनेवाली पहचान या स्मृति या सिद्धान्त समझा देना उचित होगा।

80
70
60
50
40
30
20
10
SIGHT METHOD
TOUCH METHOD
TOUCH METHOD
SIGHT METHOD

पढ़ने में नेत्रों की छलाँग

अ

ब

A
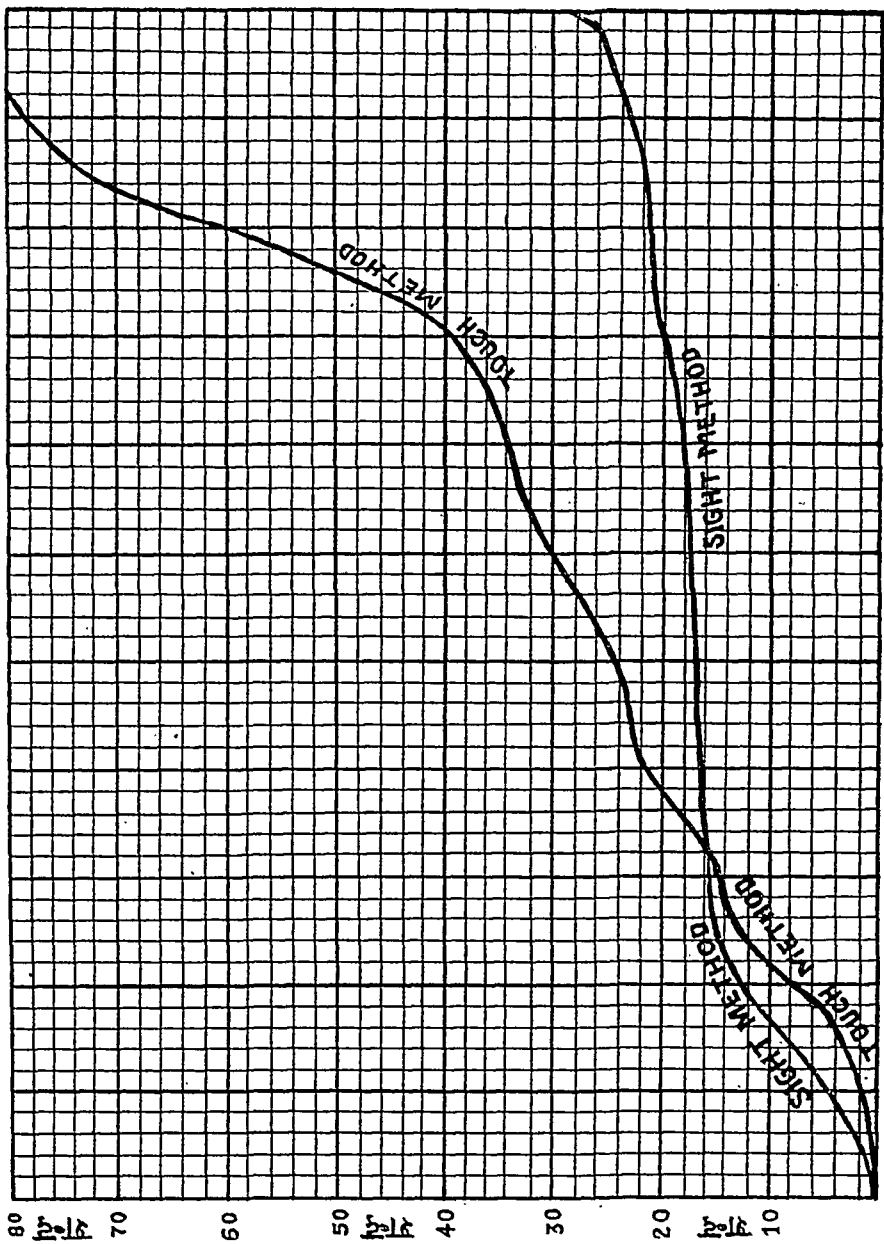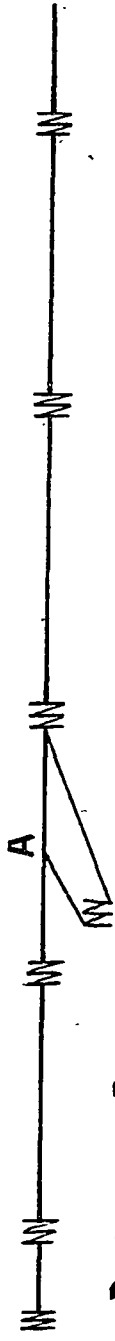
अक्षरः— मेरी माने कहा बाज़ार जाओ और फल लाओ

शब्दः— मेरी माने कहा बाज़ार जाओ और फल लाओ

वाक्यः— मेरी माने कहा बाज़ार जाओ और फल लाओ

गद्य पढ़ने में:— तुम जानते ही हो कि देहात में हमारे घरों में कैसी गन्दगी रहती है ! औरतें बच्चों को सफ़ाई से रखना नहीं जानतीं । बच्चे सदा बीमार ही बने रहते हैं ।

"हाँ तो सरकार ने लड़कियों की शिक्षा के लिए देहात में प्राइमरी स्कूल तथा नगरों में मिडिल और हाई स्कूल खोल रखे हैं ।

भजन में:—

राम लछमन जानकी ।
जय बोलो हनुमान की ॥

चौपाई में:—

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥

गीत गाने में:—

तुरत नगड़ची को बुलवायो, तुरतै हुकुम दियो लगवाय ।
बजै नगाड़ा टोडरपुर में, फौरन फौज देव सजवाय ।

एक रूसी मनोवैज्ञानिक सवेरे के कलेवा को बैठे थे, उनके हाथ में चाँदी का काँटा था और सामने चीनी मिट्टी की तश्तरी रखी थी। संयोगवश उसने कमरे के एक कोने में एक मकड़ी धरती पर से दीवार पर चढ़ती देखी, मकड़ी के ४-५ हाथ ऊपर चढ़ जाने के पश्चात् केवल विनोद से उसने तश्तरी पर काँटा मार दिया कि जिससे 'टन' से शब्द हुआ। आवाज होते ही मकड़ी 'फट' से धरती पर गिर गई। मकड़ी की जाति बड़ी प्रयत्नशील होती है, वह फिर से दीवार पर चढ़ने लगी। मनोवैज्ञानिक ने जिस स्थान से वह नीचे गिरी थी उस स्थान पर पहुँचने के साथ ही काँटे से तश्तरी पर फिर 'टन' से आवाज की। विचारी मकड़ी फिर 'दन' से गिर गई। मकड़ी तीसरी वार गई, चौथी वार गई और वैसे ही १५ वार उसने ऊपर चढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु मनोवैज्ञानिक ने उसी विशिष्ट स्थान पर पहुँचने के साथ ही प्रतिवार चीनी मिट्टी की तश्तरी से 'टन' की आवाज निकाल दी। मनोवैज्ञानिक ने मकड़ी का विशिष्ट स्थान तक चढ़ना और उस स्थान पर पहुँचने के साथ ही 'टन' से शब्द करना और आवाज होते ही मकड़ी का 'दन' से गिरने का खेल २० वार किया। मकड़ी फिर भी ऊपर जाने लगी, पर इस वार विशिष्ट स्थान पर पहुँचने पर मनोवैज्ञानिक ने 'टन' की आवाज नहीं की। इस वार आवाज के अभाव में भी मकड़ी 'दन' से नीचे गिर गई। फिर ४, ५ वार चढ़ी और विना आवाज सुने भी 'दन' से गिरती रही। मकड़ी वैसे ही ५, ६ वार गिर गई। ७ वें प्रयत्न में विशिष्ट स्थान पर पहुँचने के पीछे रुक गई, गिरी नहीं, किन्तु ऊपर चढ़ने लगी। अब यह देखना है कि ऐसी वात क्यों हुई ? मकड़ी का आवाज सुनकर भयात् गिरना स्वाभाविक है, किन्तु २१ वें प्रयत्न के पश्चात् विना आवाज वह क्यों गिर गई, यही देखना है। विशिष्ट स्थान का आवाज से इतना दृढ़ संयोग हो गया था कि उस जगह पर पहुँचने पर बिना आवाज किये हुए भी वह

आवाज सुनती रही। इस प्रकार के अनुभव पाठकों को भी अपने जीवन में कहीं न कहीं मिले होंगे। कभी-कभी विशिष्ट स्थान से किसी बात का स्मरण, किसी प्रकार की आवाज या आभास यों ही होजाता है। ऊपर दिये हुए उदाहरणों में स्थान और आवाज इन दोनों का एक साथ आना इसे दो कल्पनाओं का संयोग कहते हैं। दृढ़ संयोग होने के पश्चात एक बात देखकर या एक बात सुनकर दूसरी बात का स्मरण होना यह दृढ़ संयोग का परिणाम है।

अध्यापकों के लाभार्थ हम एक और उदाहरण देंगे। एक छात्रालय में जब भोजन की घंटी बजती थी तब साथ ही कुत्ते को भी रोटी दी जाती थी। यह क्रम बहुत समय तक चला। कुत्तों में एक बात स्वाभाविक पाई जाती है वह यह कि खाद्य पदार्थ देखकर उनकी जीभ से लार टपकती है, घंटी की आवाज के साथ भक्ष्य पदार्थ प्राप्त होना इन दो घटनाओं का संयोग कुत्ते के मन में हो गया था। अतः उसी समय उसके मुख से लार भी टपकती थी। कुछ दिन के पीछे यह देखा गया कि कुत्ते को बिना खाद्य दिये भी घंटी की आवाज होते ही उसके मुख से लार छूटने लगती थी।

ऊपर लिखे दो उदाहरणों में से एक में 'टन' से आवाज का आभास होकर मकड़ी का गिरना और दूसरे में घंटी की आवाज के साथ बिना खाद्य प्राप्त हुए भी उसकी स्मृति से कुत्ते की लार छुटना, दो कल्पनाओं के दृढ़ संयोग के परिणाम हैं।

वर्णमाला के अक्षर बालकक्षा में चित्रों के सहारे पढ़ाये जाते हैं। जैसे; कमल का 'क', चम्मच का 'च', रबर का 'र'। यह बात मानी जायगी कि जब दो कल्पनाओं के द्वारा किसी वस्तु का परिचय दिया जाता है तो उसमें अधिक मनोरंजन और थोड़ा-सा अर्थ भी रहता है। जैसे, केवल क-क-क कह कर 'क' रटाना और कमल के साथ 'क'

पढ़ाना इन दोनों में पहले ढंग से रटाने में बिलकुल ही रूक्षता है, पर दूसरे में थोड़ी मनोरंजकता है अर्थात् थोड़ा नमक, मिर्च लगाकर उसमें स्वाद लाना है।

(२) वही बात वहाँ भी पाई जाती है जहाँ कहानियों के द्वारा अक्षरों की आकृति की कल्पना दी जाती है। जैसे; मि० संगमलाल की स्कीम में अकासी-बंदर की कहानी कह कर 'अ' अक्षर की आकृति समझा देना। यही बात मि० यस० जी० डानियल साहब अपनी शिक्षा-प्रणाली में करते हैं। जैसे; मैजिक लैण्टर्न से मक्खी का चित्र दिखाकर तामिल भाषा के 'ई' अक्षर से परिचय करा देते हैं। तामिल भाषा में मक्खी का नाम भी 'ई' है और उसका आकार अँगरेज़ी की टी (' T) के नीचे दो वर्तुल आँख के समान (/o͞o) बनाकर दिखाना है मक्खी का आकार भी इसी ढंग का होता है। इस पद्धति में मक्खी का चित्र और 'ई' की (/o'o) आकृति इन दोनों का संयोग किया जाता है। वैसे ही तामिल भाषा में श्रीमती ए० देवाश्याम ने तामिल अक्षरों को पढ़ाने की योजना निकाली है। श्रीमतीजी नई-नई कहानियाँ सुनाकर श्यामपट पर अक्षरों की आकृति बनाती हैं। हिन्दी में; उदाहरणार्थ, इसे इस रीति से पढ़ा सकते हैं—जैसे; 'क' पढ़ाना है तो बीच में लाठी या कमल का डंठल है और उसके दोनों ओर कमल के दो ढोंठे लगे हैं। केवल अन्तर इतना ही है कि ढोंठे लाठी के बीच में लगाये हैं। इस प्रकार कहानी के द्वारा अक्षर बनवाते हैं। योजना चाहे मि० संगमलाल की रहे, चाहे मि० डानियल साहब की और चाहे श्रीमती देवाश्याम की, तीनों में ही अक्षर पहले पढ़ाते हैं और किसी क़िस्सा-कहानी के साथ उसका संयोग लगाकर उसका परिचय करा देते हैं।

यह बात मानी जायगी कि केवल एक-एक अक्षर लेकर ही रटने में अर्थ तनिक भी नहीं, वह शैली बिलकुल रूक्ष है, किन्तु उसमें

नमक-मिर्च लगा कर या उसी आकृति के किसी चित्र या कहानी से संयोग कराकर पढ़ाने की शैली में कभी थोड़ा-सा अर्थ और थोड़ी-सी मनोरंजकता आजाती है।

मनोरंजनार्थ जब यह संयोग किसी चित्र या कहानी से किया जाता है और उसमें दृढ़ता लाकर वर्णमाला के अक्षर जब पढ़ाये जाते हैं तब मनोवैज्ञानिक के विचार से अध्यापक अपने ऊपर नई विपत्ति मोल ले लेता है। वह यह है कि दोनों कल्पनाओं में से जब एक कल्पना मस्तिष्क के सामने खड़ी होती है तब तुरंत उसको प्रतिक्रिया स्वयं होती है। जैसे; कमल के चित्र से 'क' का संयोग या चम्मच शब्द से च' का संयोग दृढ़ कर दिया, तब यह आपत्ति खड़ी होती है कि छात्र जब 'क' देखेंगे तब तुरंत उसकी प्रतिक्रिया होगी। कमल का 'क' और चम्मच का 'च' वैसे ही जब अकासी बन्दर की कहानी के साथ 'अ' का संयोग किया जाता है या तामिल के 'ई' अक्षर का मक्खी के साथ दृढ़ संयोग किया जाता है तब छात्रों के मुख से 'अ' देखते ही अकासी बन्दर का 'अ' और मक्खी की 'ई' ऐसी प्रतिक्रिया निकलती है।

पाठकों में से बहुतेरों ने बालकक्षा में बच्चों के पढ़ने का एक दृश्य देखा होगा। यदि उसको 'क र' या 'च र' पढ़ना होगा तो बच्चा कमल का 'क' और रवि का 'र' कह कर 'क र' पढ़ता है तथा चम्मच का 'च' और रवि का 'र' कहकर च र पढ़ता है। इस दशा में अध्यापक डाट देकर उससे कहते हैं कि कमल का 'क' चम्मच का 'च' और रवि का 'र' न कहा करो, किन्तु चर, कर कहा करो। अक्षर देखते ही चित्र का स्मरण होकर उसकी प्रतिक्रिया में चिह्न का नाम लेने की टेव बच्चों से सरलता से छुटती नहीं। डाट के साथ उसे अध्यापक के डंडे भी खाना पड़ता है। तब वह टेव कहीं छुटती है। इस आपत्तिमय घटना में दोष किसका है? अध्यापक ने ही

चित्र के साथ अक्षर का दृढ़ संयोग कर दिया और संयोग दृढ़ होने के पश्चात् वही तोड़ने का भी प्रयत्न करते हैं। ऐसा करने में कौनसी बुद्धिमत्ता है।

सारांश वर्णमाला के अक्षरों को किसी चित्र या कहानी के साथ संयोग देकर पढ़ाने की शैली में यह आपत्ति है कि संयोग दृढ़ होने के पीछे उसे नष्ट करने में छात्र को बड़ा कष्ट होता है। और शक्ति की हानि होती है। यह आधुनिक मनोवैज्ञानिक का दूसरा आक्षेप है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में पढ़ने की क्रिया के साथ अन्य कला सीखने के सम्बन्ध में बहुतसे प्रयोग किये गये हैं। कला-प्राप्ति की प्रगति के चार्ट (नक़्शे) भी रखे जाते हैं। चाहे वह बढ़ईगीरी रहे, चाहे तैरने की कला रहे, चाहे टाइप रायटिंग रहे, उससे एक निष्कर्ष निकलता है कि कला पढ़ाने की शैली उस ढंग की रहे जिस ढंग से अच्छे कलावंत उसका अवलम्ब करते हैं। यह तत्त्व समझने के लिए हम निम्नलिखित प्रयोग पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं:—

मान लीजिए छात्रों को टाइपिंग की कला सिखाना है। अब प्रश्न है कि उनको किस ढंग से पढ़ाना उचित होगा ? टाइपिंग में दो रीतियाँ हैं जिनसे लोग टाइप करते हैं। एक रीति को दृष्टि-पद्धति (Sight Method) या अक्षर देखकर चाबी पर उंगली दबाना और दूसरी रीति को स्पर्श-पद्धति (Touch Method) कहते हैं। जिसमें निश्चित अक्षरों पर निश्चित उँगली रखनी पड़ती है।

प्रयोग-शाला में समवयस्क तथा कार्य-कुशलता में समान पुरुषों की दो टोलियाँ ली गई। एक-एक टोली में दस-दस व्यक्ति रहे।

एक टोली को दृष्टि-पद्धति से टाइपिंग सीखने की आज्ञा दी। दूसरी टोली को स्पर्श-पद्धति से टाइपिंग सिखाने की चेष्टा की। इस टोली को टाइपिंग जाननेवाले शिक्षक के आदेश से काम करना होता था। अर्थात् की-बोर्ड (Key Board) पर निश्चित उँगलियाँ रखकर टाइपिंग सीखना पड़ता था। दोनों टोलियों को केवल एक-एक घंटा अभ्यास करने को आज्ञा थी। दोनों टोलियों के प्रत्येक व्यक्ति की प्रति दिन की प्रगति का चार्ट अलग-अलग रखा गया था। अन्त में प्रत्येक टोली की माध्यम प्रगति निकाली गई। दस-दस व्यक्तियों का वा अधिक संख्या का माध्यमिक निकालने में लाभ यह रहता है कि यदि व्यक्तिगत बुद्धि और कौशल में अन्तर हो तो वह भी मिट जाता है। इसे अंगरेजी में सम्भवनीय भूलें (Probable Errors) मिटाना कहते हैं।

अध्याय के आरम्भ में दिये गये ग्राफ़ की ओर देखिये 'अ' रेखा दृष्टि-पद्धति से सीखनेवालों की प्रगति की है अर्थात् उस टोली की माध्यम प्रगति की है। जो स्वयं टाइप रायटिंग की 'की-बोर्ड' के अक्षर देखकर अपने ही मन से सीख रहे थे। 'ब' रेखा उस टोली के दस व्यक्तियों की माध्यम प्रगति की है, जिनको अध्यापक के आदेश से सीखना पड़ता था। खड़ी रेखा से दिन तथा पड़ी रेखा से शब्द टाइप करने की प्रगति सूचित की गई है।

पाठकों के देखने में यह बात तुरन्त आजायगी कि दृष्टि-पद्धति से सीखनेवालों ने पहले-पहल पढ़ने में अधिक चतुरता दिखाई और स्पर्श-पद्धति से सीखनेवालों को मात दी, किन्तु ३ सप्ताह के पीछे दोनों की प्रगति कुछ थोड़े दिन के लिए समान रही और डेढ़ महीने के पश्चात् दृष्टि-पद्धति से सीखनेवालों की प्रगति क़रीब-क़रीब रुक-सी गई अर्थात् स्थिर हो गई। इसके विपरीत स्पर्श-

पद्धति से पढ़नेवालों की प्रगति उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इन प्रगतियों में अन्तर होने के निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) दृष्टिपात-पद्धति से सीखनेवाले स्वतन्त्र थे। उनके ऊपर किसी नियम का बन्धन नहीं था। वे आँखों से 'की-बोर्ड' पर अक्षर देखते थे और अर्थ-पूर्ण शब्द टाइप करते थे, जिससे उनका उत्साह बढ़ता था। इसके विपरीत, स्पर्श-पद्धति से सीखनेवालों के ऊपर नियम का बन्धन था। नियुक्त अक्षर पर नियुक्त उँगली ही रखना, पहले-पहल अर्थ रहित अक्षरों को ही टाइप करना ही उनका काम रहा। इस ढंग से पढ़ने में न कुछ अर्थ था और न उनको रुचि थी। किन्तु २०-२१ दिन तक नीरस अभ्यास करने से निश्चित अक्षरों पर निश्चित उँगली गिरने की टेव जैसे-जैसे दृढ़ होने लगी वैसे ही टाइपिंग में उनकी प्रगति बढ़ती गई। तीन महीने के भीतर मिनट में ३०-३५ शब्द टाइप करने की उनमें क्षमता आगई। यदि वे वैसा ही अभ्यास एक वर्ष तक स्थिर रखते तो उनकी प्रगति और बढ़ जाती, और जो वैसा अभ्यास स्थिर रखते हैं उनके सम्बन्ध में यह देखने में आता है कि उनका निश्चित अक्षरों पर उँगलियों का स्पर्श करना आँख के पलक की भाँति अचूक हो जाता है। इसे अँगरेजी में Automatic action (स्वतः कार्य) कहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मिनट में १२५ शब्द तक वे टाइप करते हैं।

स्पर्श-पद्धति से बहुत से शौक़ीन मनुष्य अपने घरेलू काम के लिये टाइपिंग सीख जाते हैं। मिनट में १०-१२ शब्द टाइप करने की क्षमता आने के पश्चात् उनके कार्य में शिथिलता आती है। इनके टाइपिङ्ग में यह देखा गया है कि बायें हाथ के अँगूठे के अतिरिक्त बहुत हुआ तो दोनों हाथों की दो या तीन अँगुलियों का उपयोग करते हैं और टाइपिङ्ग की ख़ूबियाँ समझने के पश्चात् बहुत दिन तक

स्पर्श-पद्धति से टाइप करनेवालों का अनुकरण करते हैं। फिर छः सात महीने के पश्चात् स्पर्श-पद्धति पर पहुँच जाते हैं।

इन लोगों की प्रगति की रेखा देखिये। इसमें कई स्थान पर छोटे-छोटे प्लेटो या पठार देखने में आते हैं। स्पर्श-पद्धति से सीखनेवालों की प्रगति में भी ऐसे ही पठार आते हैं। पठार या प्लेटो का आना प्रत्येक प्रगति में अनिवार्य है। केवल अन्तर इतना ही है कि सुयोग्य पद्धति से सीखनेवाले की प्रगति में पठार कम आते हैं और वे अधिकतर काम की प्रगति प्राप्त करने के पश्चात् आते हैं; किन्तु दोष-मूलक पद्धति से पढ़ने से यह पठार बीच-बीच में बहुत आते हैं और वे भी प्रगति की आरम्भिक दशा में।

इस स्थल पर ये प्लेटो या पठार प्रगतियों में क्यों आते हैं, इसका विवेचन करना आवश्यक है। पठार आने के विशेषतः दो कारण हैं:—

(१) कार्य करने या सीखने में पहले-पहल निम्नश्रेणी की टेव बन जाती है। उच्चश्रेणी की टेव बनाने में पहला महत्त्वपूर्ण कार्य यह रहता है कि निम्नश्रेणी की टेव छूट जाय। केवल नवीन टेव लगा लेना कष्टमय नहीं है, किन्तु पहली पड़ी हुई टेव को छुड़ा कर उसके स्थान पर दूसरी टेव डालना मन के लिये अधिक कष्टकर है। इसको मनोविज्ञान-शास्त्र में पुरानी टेव का निर्मूल करना (Inhibition) कहते हैं। उदाहरणार्थ, बचपन में किसी बच्चे को मा की दुर्लक्षता से या किसी दूसरे कारण से बाएँ हाथ से रोटी खाने की टेव पड़गई। समाज में बाएँ हाथ से खाना घृणास्पद समझा जाता है। बच्चे की बाएँ हाथ से खाने की टेव जब दृढ़ हो जाती है तब उसको तोड़ने के लिये अथक परिश्रम करना पड़ता है। बार-बार निवारणार्थ टोकना पड़ता है, मारना पड़ता है और कभी-कभी लोहे से चहका देना पड़ता है, तब

कहीं जाकर वह टेव छुटती है। यही बातें किसी कला सीखने में और उसकी प्रगति में होती हैं। दृष्टि-पद्धति से सीखनेवाले अक्षरों पर उँगलियाँ रखने की नीचे दर्जे की, बहुत सी टेवें बना लेते हैं। उन नीचे दर्जे की टेवों को छुड़ाकर उच्च कोटि की टेव पर जाना पड़ता है, इसलिये उनकी प्रगति-रेखाओं पर बहुत से पठार आते हैं।

यही पढ़ने की कला में होता है। प्रचलित साक्षर बनाने की शैली में निम्नलिखित श्रेणी की टेवें बनती हैं:—

(१) अक्षर पढ़ने की टेव—क्योंकि पढ़ाने का आरम्भ अक्षरों से किया जाता है, छात्र पहली टेव में एक-एक अक्षर पढ़कर शब्द पढ़ते हैं अर्थात् शब्द के अक्षर पढ़ने में अक्षरों के बीच में अवकाश लेते हैं। जैसे, "राधा मोहन की मा ने कहा"—यह वाक्य छात्र रा-धा-मो-ह-न-की मा-ने-क-हा इस ढङ्ग से पढ़ते हैं। इन अक्षरों के बीच में अवकाश लेने की टेव से छात्रों को वाक्य का अर्थ-बोध नहीं होता है। हमने एक स्थल पर इस शिक्षा-पद्धति को संश्लेषणात्मक पद्धति के नाम से सम्बोधित किया है।

अध्यापक अक्षर पढ़ने की टेव स्वयं छात्रों में लगाता है और पीछे उसी टेव को छुड़ाने के लिये शब्द, अक्षरों को इकट्ठा करने, पढ़ने की चेष्टा करता है, अक्षर-अक्षर अलग-अलग पढ़ने की टेव छुड़ाने में और एक साथ पढ़ने की नई टेव डालने में बालकों को मानसिक तथा शारीरिक कष्ट होते हैं।

(२) शब्द पढ़ने की टेव—एक-एक शब्द पढ़ने की टेव बच्चों को होती है कि नहीं, इतने ही में अध्यापक वाक्यांश या वाक्य इकट्ठा पढ़ाने की चेष्टा करता है और उसमें भी डाट लगाता और बल का प्रयोग करता है।

(३) अन्त में बच्चों को वाक्य इकट्ठा पढ़ाने की टेव डालते हैं और तत्पश्चात् पैराग्राफ़ (संघट्टन) आदि की।

सारांश—अध्यापक नीचे दर्जे की टेव स्वयं लगाते हैं और फिर उसे तोड़ना चाहते हैं। सबसे अच्छा यह है कि उनको नीचे दर्जे की टेव आरम्भ में ही न लगाई जाय। नीचे के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी:—

उदाहरण (१) हमने दो पद्धति से टाइप राइटिंग सीखने का उदाहरणार्थ प्रयोग दिया है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कला चाहे जो हो बढ़ईगीरी रहे वा तैरने की रहे अथवा टाइपिङ्ग की रहे, शिक्षा का प्रारम्भ उसी ढङ्ग से किया जाय जिस ढंग से उस कला के निपुण व्यक्ति करते हैं। वाचन बढ़ाने की कला में यही सिद्धान्त लागू होता है। पहले से ही छात्रों को अर्थ-युक्त वाक्य पढ़ने की टेव लगाना सब से अच्छा ढंग समझा जाता है।

उदाहरण (२) प्लेटो या पठार आने का दूसरा कारण यह है कि चाहे प्रगति भौतिक विषय में रहे, चाहे वह सामाजिक रहे, चाहे वह मानसिक रहे, प्रगति समय-समय पर अपना रङ्ग पलटती है अर्थात् सर्व प्रकार की प्रगति रूपान्तर कर लेती है इसे अँगरेजी में Saltatory कहते हैं।

भौतिक वस्तुओं का रूपान्तर देखिये। जब कंडे में आग जलती है तो पहले उसे बहुत देर तक वायु देनी पड़ती है, बहुत देर तक केवल धुआँ ही दिखाई पड़ता है। कभी-कभी प्रतीत यह होता है कि उसमें से ज्वाला निकलेगी ही नहीं, किन्तु यह धुमसानेवाली आग अकस्मात् ज्वाला में प्रगट होती है अर्थात् अपना रङ्ग पलट देती है। दूसरा उदाहरण लीजिये—पानी गरम करने का—जब पानी आग पर गरम करने के लिये रखा जाता है, तब अग्निरूपी शक्ति बराबर दी जाती है। डिग्री के नाप से उसकी गरमी बढ़ती है, परन्तु पानी पानी ही रहता है। आग देते-देते एक समय ऐसा आता है जब कि १००° पर पहुँ-

चता है तब पानी उबलने लगता है। अर्थात् अकस्मात् रङ्ग पलटने लगता है। यही बात समाज की प्रगति में है।

उदाहरण (३) फ्रांस देश में कङ्गाली और संतोष ५०-६० वर्ष तक लगातार बढ़ता रहा, किन्तु समाज की रचना वही थी। एकतन्त्री राजा, अमीर और दबे हुए किसान यही समाज-रचना थी, परन्तु एकाएक बेस्टाइल नामक कारागार तोड़ दिया गया और राजा-रानी को फाँसी दे दी गई, एकतन्त्री राज्य से प्रजा-सत्तात्मक राज्य हो गया।

उदाहरण (४) लड़कियाँ १२ वर्ष की आयु तक तथा लड़के १४ वर्ष की आयु तक ऊँचाई में साधारण रीति से बढ़ते हैं और कभी-कभी यह ज्ञात होता है कि इनकी बाढ़ मारी गई है परन्तु फिर छः महीने पीछे ही एक हाथ ऊँचे हो जाते हैं।

उदाहरण (५) मानसिक प्रगति में भी यही होता है कि छात्र पढ़ते ही रहते हैं, बहुत देर तक ग्राफ़ पेपर पर ज्ञात होता है कि उनकी प्रगति स्थिर हो गई है। एक दिन ऐसा आता है कि उनकी प्रगति रूपान्तर होकर बढ़ती है अर्थात् पढ़ने के ढङ्ग में रूपान्तर हुआ ऐसा ज्ञात होता है।

हमने ऊपर भौतिक, सामाजिक, शारीरिक तथा मानसिक प्रगति में रूपान्तर होने के जितने उदाहरण दिये हैं, उनमें रूपान्तर क्यों होता है, यह देखना है। सत्य बात तो यह है कि प्रयत्न और प्रयत्न में होनेवाली शक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती। वह एकत्र होती रहती है और यथेष्ट बल पाने के बाद प्रकट होती है। टाइप राइटिंग में स्पर्श-पद्धति पढ़नेवालों की प्रगति-रेखा में जो पठार प्रकट होते हैं वे सब इसी मेल के होते हैं, अर्थात् इस अवकाश में प्रयत्न-रूपी शक्ति इकट्ठा होती है।

हमने अपनी वाचन-पद्धति के अनुसार छात्रों की प्रगति के ग्राफ़ रखे हैं। उनसे प्रतीत होता है कि उनको वाचन-प्रगति में तीन महीने के पश्चात् १५-२० दिन तक एक पठार आता है। दूसरा पठार ५वें महीने में एक सप्ताह तक आता है, यह पठार आने से अध्यापक को हताश होने की आवश्यकता नहीं है। पठारों का आना सब ही प्रगतियों में होता है। उस समय यही समझ लेना चाहिए कि शक्ति एकत्र हो रही है, और एक दिन अपना बल दिखा देगी।

मनोवैज्ञानिक शास्त्रज्ञों का आक्षेप है कि अक्षर-शैली से पढ़ाने से छात्रों में नीचे दर्जे की टेवें उत्पन्न होती हैं। उन-आदतों को हटाने और उनके स्थान पर नई टेवें लगाने में छात्रों और अध्यापकों का समय और शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है।

कुछ लोगों का विश्वास है कि हमने बच्चों को अक्षर-शैली से पढ़ाया और हम सफल भी हुए। उनके कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है। सम्भव है उन्होंने अक्षर-शैली से पढ़ाने का प्रयत्न किया हो, पर वास्तव में बच्चे उस ढंग से नहीं पढ़े। इसका प्रमाण यह है कि जब बाल-कक्षा के विद्यार्थियों की परीक्षा ली जाती है तब बच्चे पूरा रटा हुआ पाठ आद्योपान्त पढ़ जाते हैं। पर पाठ के बीच में किसी अक्षर को पृथक् पूछने पर प्रायः वे चुप हो जाते हैं और उसका नाम नहीं बतला सकते। हाँ, दोबारा जब वे पहले से उसी अक्षर या शब्द तक पाठ पढ़ते हैं, तब बतला सकते हैं कि अमुक अक्षर या शब्द है। सच बात तो यह है कि बच्चे पढ़ने की स्वाभाविक शैली ही से पढ़ते हैं। पहले उन्होंने वाक्य और शब्द कण्ठस्थ किये। बार-बार वे वही शब्द देखते गये और देखने से उनसे उनका परिचय हुआ, न कि एक-एक अक्षर के जोड़ से पहले शब्दों का, फिर वाक्यों का।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि अध्यापक चाहे जिस अरोचक और अस्वाभाविक पद्धति से पढ़ाये, किन्तु बच्चे सचमुच स्वाभाविक शैली ही से पढ़ना सीखते हैं। यह स्वाभाविक पद्धति शब्द और वाक्य द्वारा पढ़ाने की है। हमारी वाक्य-पद्धति आँखों की नैसर्गिक गति के आधार पर निर्मित है। हम अगले अध्याय में नेत्र की गति का वर्णन तथा उसके विषय में किये गये आविष्कारों का विवरण देने का प्रयत्न करेंगे।

अंत में मनोवैज्ञानिक का यह भी कहना है कि पढ़ने की क्रिया में अक्षर कभी आते ही नहीं, अर्थात् पाठक अक्षर कभी पढ़ता ही नहीं, उसके मस्तिष्क में शब्दों की तथा शब्द-समुच्चय की कुछ सामुहिक प्रतिभा रहती है और वह दृष्टि-क्षेप से उसको पहचान लेता या पढ़ता है। शब्दों के तथा वाक्यांशों के अन्तर्गत अक्षरों की ओर उसका ध्यान रहता ही नहीं। इस कथन का क्या अभिप्राय है, इसका परिचय पाठकों को अगले अध्याय में दिया जायगा।

तेरहवाँ अध्याय

पठन-विधि

मनोवैज्ञानिक भूमिका—(तीसरा खण्ड)

गत अध्याय में हम कह चुके हैं कि अक्षर-शैली से पढ़ाने का ढंग सनातन से है और यह भी कह चुके हैं कि आधुनिक मनोवैज्ञानिक इस ढंग से पढ़ाने को निन्द्य समझते हैं।

अक्षर-शैली से पढ़ाने का ढंग रचनात्मक है अर्थात् पहले अक्षरों को रटवाकर उसकी पहचान करा देना, पश्चात् दो-दो तीन-तीन अक्षरों के शब्द पढ़ाने की टेव डालना और अन्त में वाक्य पढ़ाना सिखाना। मनोविज्ञान-शास्त्र में इसको तार्किक-पद्धति कहते हैं। इस पद्धति का खण्डन निम्नलिखित रूप से किया गया है कि जिसका सविस्तार विवरण हम गत अध्याय में कर चुके हैं। पाठकों के स्मरणार्थ इस स्थल पर हम उसका संक्षिप्त विवरण देते हैं:—

(१) यह पद्धति अत्यन्त क्लिष्ट और अरुचि उत्पन्न करनेवाली और भाव-रहित है।

(२) यह पद्धति अकेले अक्षरों में कुछ अर्थ-हीन रहने के कारण मस्तिष्क में थकावट तथा बुद्धिमान्द्य उत्पन्न करनेवाली है।

(३) जिस अक्षर-शैली में अक्षर पहचान के लिये उसके साथ चित्र, कहानी अथवा अन्य प्रकार से रुचि उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है। उसमें अध्यापक अपने और छात्रों के लिये एक नई विपत्ति उत्पन्न कर लेते हैं अर्थात् पहले तो अक्षरों का चित्र तथा कहानी से दृढ़ सम्बन्ध कर देते हैं और फिर उस सम्बन्ध को तोड़ने की चेष्टा करते हैं।

(४) कुछ अध्यापकों का यह कथन कि हमने अक्षर-शैली से छात्रों को पढ़ाया सर्वथा तथ्यहीन है। जबकि तीन-तीन, चार-चार महीने अक्षर रटाने के पश्चात् भी पाठशालाओं के बालक अक्षरों के नीचे उँगली रखते हुए भी अक्षर नहीं पहचान सकते तो स्पष्ट ही है कि उनके अक्षर पढ़ाने का परिश्रम व्यर्थ गया।

(५) अक्षर-शैली से पढ़ाने से अर्थात् पहले अक्षर पढ़ना, पश्चात शब्द पढ़ना और अन्त में वाक्य पढ़ना आरम्भ करना। इस प्रथा से पठन-क्रिया की प्रगति में बहुत से पठार होते हैं अर्थात् नीचे दर्जे की टेवें छात्रों में पड़ जाती हैं। फिर उनके छुड़ाने में छात्र को मानसिक तथा शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता है।

(६) हम खण्डन करने में अन्त का कारण यह भी दे चुके हैं कि पढ़ने में अक्षर का स्थान ही नहीं अर्थात् पठन-क्रिया में अक्षर क़तई पढ़े ही नहीं जाते। इस अध्याय में इसी सिद्धान्त का विवेचन किया जाता है।

पचीस वर्ष पूर्व, पठन क्रिया क्या है, इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक को आन्तरिक कल्पना करके ही सन्तोष करना पड़ता था। पठन-क्रिया में मस्तिष्क क्या काम करता होगा तथा मस्तिष्क को पठन-क्रिया में नेत्र किस प्रकार सहयोग देते होंगे, इस सम्बन्ध में उनको केवल तर्कों और कल्पनाओं के ऊपर अपनी धारणा बनानी पड़ती थी। इसको मनोवैज्ञानिक-शास्त्र में Introspection अर्थात् आन्तरिक धारणा कहते हैं। इसके विपरीत जब से यान्त्रिक सुविधाएँ नापने के लिये उपलब्ध होने लगीं तब से पठन-क्रिया के सम्बन्ध में धारणा Objective अर्थात् अधिक प्रमाणिक होने लगीं। अब तो चिकागो यूनीवर्सिटी के प्रोफ़ेसर डाक्टर जड्ड पढ़ते समय छात्रों के फ़ोटो लेते हैं। यह फ़ोटो उसी प्रकार लिये जाते हैं, जिस प्रकार

सिनेमा के फ़िल्म लिये जाते हैं। छात्रों को पढ़ने का आदेश दिया जाता है, तब उनकी नेत्र-गति का फ़ोटो तथा उसकी पढ़ने की आवाज़ का ग्रामोफ़ोन रिकर्ड भी लिया जाता है। इन फ़ोटो और रिकर्डों की सहायता से छात्र किस समय और किस घड़ी पर क्या पढ़ता था और क्यों रुक गया, कब रुक गया, उसकी पढ़ने की गति कैसी थी और क्यों थी, इस सम्बन्ध में बराबर पता मिलता है। जब से फ़ोटोग्राफ़ी और पढ़ने की रिकर्ड लेने की सुविधाएँ प्राप्त हुई तब से पढ़ने के सम्बन्ध में केवल कल्पनाएँ हटकर उनके स्थल पर सप्रमाण धारणाएँ स्थापित हो रही हैं।

आँखों की गति नापने का पहला प्रयोग डा० ह्यूए ने किया। डा० ह्यूए नेत्रों पर शस्त्र-क्रिया करने के एक निपुण फ्रेंच सर्जन थे। उनका प्रयोग इस प्रकार था—पढ़नेवाले को बुलाना, उसकी एक आँख पर पट्टी बाँध देना, जिससे वह कुछ भी देख न सके। दूसरी आँख का पलक खोलकर उसके भीतर एक मशीन लगाकर उसके ऊपर पिन लगा देना। पढ़ते समय जैसे-जैसे आँख घूमती थी, ठीक वैसे ही पिन भी घूमती थी। अब उन्होंने शीशे पर कारिख लगादी, अतः पढ़ने के साथ-साथ घूमनेवाली पिन कारिख पर निशान करने लगी। इससे आँखों की गति का चिह्न कारिख पर उनको मिलता था। इन चिह्नों के आधार पर उन्होंने पठन-क्रिया के सम्बन्ध में अपनी धारणा स्थिर की। शीशे के कारिख पर जिस प्रकार के चिह्न होते थे उनका चित्र 'अ' और 'ब' आकृतियों में अध्याय १२ के आरम्भ में दिया गया है।

पढ़ते समय आँख की गति के चित्र से यह प्रतीत होगा कि आँख की गति धक्के (jerks) से चलती है, वह उड़ती है और खड़ी होती है। पक्षियों के फुदकने की भाँति उसकी चाल है। उसकी गति उड़ान और विश्रान्तिमय है (leap and pause) अर्थात् कुछ शब्द या वाक्यांश

हड़प मारकर अर्थ-पूर्ण शब्द समुच्चय या वाक्यांश के बाद खड़ी होती है। एक उड़ान में वह बहुत से शब्द और कभी-कभी पूरे वाक्य ग्रहण कर लेती है। आँख की गति का अवरोध बहुधा अर्थ-पूर्ण सम्बन्धित शब्दों के बाद होता है अथवा कभी-कभी बीच में अपरिचित शब्द आने अथवा छापे की खटकनेवाली अशुद्धि देखने पर आँख चट से खड़ी हो जाती है, ऐसे ही जैसे मोटर की गति ब्रेक से रुक जाती है और अर्थ-बोध के लिए पीछे जाती है। वह अर्थ-ग्रहण के पश्चात् और भूल ज्ञात हो जाने के पश्चात् फिर से उड़ती है और अर्थ-पूर्ण वाक्यांश के पश्चात् खड़ी होती है, वैसे तो साधारण अशुद्धियों की वह उपेक्षा कर जाती है। आँख की उड़ान में गति और बहुत शब्द समूहों को हड़प लेने की शक्ति का अनुभव प्रेस के नवशिक्षित प्रूफ़रीडर को ही हो सकता है। प्रूफ़ में अशुद्धियाँ निकालते-निकालते उनका दम नाक में आ जाता है, क्योंकि नेत्र अक्षर-अक्षर पढ़ते नहीं चलते, न प्रत्येक अक्षर के बाद विश्राम लेते हैं। नेत्र की स्वाभाविक गति अर्थ-पूर्ण शब्दों के अथवा शब्द-समूह के पश्चात् रुकती है।

नेत्र की गति का संचालन कैसे होता है, इस बात को समझाने के लिए हम यहाँ एक दृष्टान्त देते हैं :—

कल्पना कीजिये कि हम एक अत्यन्त परिचित-मार्ग से, जिसके दोनों ओर बने हुए मकानों, दुकानों, तार के खम्भों तथा वहाँ के स्थायी रहनेवाले बाल-बच्चे तथा स्त्रियों आदि से हमारा पूर्ण परिचय है, तेज़ मोटर में बैठकर जाते हैं। मोटर की गति तीव्र होने पर भी हम सभी पूर्व परिचित वस्तुओं को तथा व्यक्तियों को दृष्टि-क्षेप के अवकाश-मात्र में पहचान लेते और आगे बढ़ते हैं। यदि मोटर में बैठकर जाते समय उस मार्ग पर कल्पनातीत घटना देखने में आई या कोई अपरिचित मनुष्य देखने में आया या परिचित मनुष्य की सूरत बदली हुई-सी ज्ञात हुई और मन में कुछ सन्देह पैदा हुआ, तो खट से

ब्रेक दवा कर मोटर की गति रोकते हैं और उस कल्पनातीत घटना अथवा अपरिचित आदमी वा परिचित मनुष्य की वदली हुई सूरत को गौर से देखने लगते हैं। यदि मोटर की गति रोकने में कुछ विलम्ब हुआ और मोटर कुछ आगे चली गई अर्थात् यन्त्र को रोकने में मन के कुछ आगे मशीन वढ़ गई तो मन के द्वारा मशीन की गति वन्द होने के पीछे मोटर घटना-स्थल पर या परिचित व्यक्ति रहने के स्थान या वदली हुई सूरत के परिचित व्यक्ति के खड़े रहने के स्थान पर मोटर को "वैक" करके (पीछे हटाकर) खड़ा करेंगे और उसका पूर्ण ज्ञान-वोध होने के पश्चात फिर अग्रसर होंगे। यदि ऐसी कल्पनातीत घटना आदि मार्ग पर नहीं घटीं तो हम सुचारु रूप से उस मार्ग को पूर्ण कर जायँगे।

वस ऐसी ही वात पठन-क्रिया में होती है। परिचित मार्ग पर कम से कम एक हज़ार, डेढ़ हज़ार वस्तुएँ और व्यक्ति ऐसे होंगे कि जिनको हम पहले ही से पूर्णतः पहचानते थे और मोटर वेग से जाने पर भी दृष्टि-क्षेप मात्र से पहचानते या पढ़ते थे। पठन-क्रिया में यही क्रिया होती है। शब्द पहचान के रहते हैं अर्थात् शब्द वार-वार देखने से परिचित हो जाते हैं। शब्द समूह या वाक्यांशों में वही शब्द वार-वार आने से उनका परिचय सामुहिक हो जाता है और उनको भी एकत्र समझकर पढ़ जाते हैं। पठन-क्रिया में अक्षरों की ओर तो ध्यान रहता ही नहीं। शब्दों के अक्षर एकत्र होकर अपना व्यक्तिगत रूप सामुहिक रूप में विसर्जित कर देते हैं अथात् शब्द के सव अक्षर मिलकर एक निराला रूप और अर्थ धारण कर लेते हैं। डा० ह्यूए ने नेत्र-गति के सम्वन्ध में अपने जो आविष्कार किये और नेत्रों की गति के आधार पर पठन-क्रिया के सम्वन्ध में जो अपनी धारणा स्थिर की, उसका परिणाम पठन-पाठन-शैली पर वहुत-सा हुआ है। जगत भर में अक्षर प्रणाली से ही पढ़ाते थे, पर डा० ह्यूए के

आविष्कार के प्रसिद्ध होने के पश्चात् पठन-शैली में पाश्चात्य देशों में क्रान्तिकारक परिवर्त्तन हुए हैं और अब भी हो रहे हैं तथा नई-नई पठन-शैलियाँ आई हैं और आ रही हैं। इनके सम्बन्ध में कुछ अवकाश के बाद हम वर्णन करेंगे। पहले-पहल यह देखेंगे कि शीशे के कारिख पर चिह्न कैसे हुए और वे चिह्न क्या सूचित करते हैं। बारहवें अध्याय के आरम्भ में लगे हुए चित्रों को 'अ' और 'ब' आकृतियों को देखिये। 'अ' आकृति में खड़ी छोटी-छोटी लकीरें पिन से कारिख पर बनी हैं और वे भी जिस समय नेत्र विश्राम करते थे उस समय की। लम्बी और सीधी रेखाएँ सूचित करती हैं कि नेत्र ने इतने अन्तर का उड़ान किया अथवा एक विश्राम-स्थल से दूसरे विश्राम-स्थल तक छलाँग मारी। पठन-क्रिया में जितना समय व्यतीत होता है उसमें ९० प्रतिशत से अधिक समय विश्राम-स्थलों पर अथवा जिस स्थान पर आकृति में छोटी-छोटी रेखाएँ बनी हैं उन स्थलों पर व्यतीत होता है। खड़ी रेखाएँ नेत्रों के विराम-स्थल हैं मानों नेत्रों के खड़े रहने के यह अड्डे ही हैं। लम्बी रेखाओं से यही प्रकट होता है कि नेत्रों ने एक विराम-स्थल से दूसरे विराम-स्थान पर कितना अन्तर काटा अर्थात् वाक्यांश के कितने शब्द नेत्र पढ़ गये। यह अन्तर काटने में या छलाँग लेने में बहुत तनिक-सा समय व्यतीत होता है। 'अ' और 'ब' आकृति देखकर नेत्रों की गति के सम्बन्ध में दो बातें प्रकट होंगी :—

(१) नेत्र धक्के या झटके से आगे बढ़ते हैं।

(२) नेत्र की गति उड़ान और विश्रान्ति मय है, उनकी गति आदमियों के चलने की भाँति नहीं होती, किन्तु पक्षी जैसे फुदकते-फुदकते बढ़ते हैं, वैसी ही होती है।

(३) 'ब' आकृति देखिये—इससे A स्थल पर पहुँचने तक नेत्रों की गति ठीक चलती थी, किन्तु A स्थल पर पहुँचते ही कुछ

अपरिचित शब्द या छापे की खटकनेवाली या हास्यास्पद भूल देखते ही दृष्टि खद के साथ रुक गई। थोड़ी देर तक वहीं ठहर गई और अर्थ समझने के लिये पीछे हट गई। अन्त में अर्थ ग्रहण करने के पश्चात् अग्रसर होने लगी।

हमने ऊपर कहा ही है कि पठन में अधिक समय विश्राम-स्थलों पर व्यतीत होता है अर्थात् आकृति में दिखलाई हुई छोटी-छोटी रेखाओं के स्थलों पर होता है। यह भी हम कह चुके हैं कि वाक्यांश हड़प करने में या नेत्रों की छलाँग में बहुत ही कम समय वाचक लेते हैं। इस स्थल पर पठन-क्रिया में इन खड़ी रेखाओं या विश्राम-स्थलों पर क्या मानसिक क्रिया होती है, यह देखना उचित होगा। पढ़ना एक शारीरिक तथा मानसिक क्रिया है अर्थात् नेत्रेन्द्रिय के सहयोग से मन अर्थ-बोध कर लेता है या पढ़ता है। इन विश्राम-स्थलों पर तीन क्रियाएँ होती हैं। एक क्रिया शारीरिक है और दो क्रिया मानसिक हैं। ये तीनों क्रियाएँ साथ ही साथ होती हैं और परस्पर मिली हुई तनिक-से अवकाश में होती हैं। उनका पृथक्करण निम्नलिखित है :—

(१) नेत्र का सहयोग, यह शारीरिक कार्य है। नेत्र विश्राम-स्थल पर रुक जाते हैं, किन्तु नेत्र चञ्चल रहने के कारण एक ही स्थल पर नीचे ऊपर घूमते हैं। कारिख पर जो खड़ी-खड़ी रेखा दीखती हैं इनकी नीचे ऊपर की गति के चित्र हैं। नेत्र शारीरिक अङ्ग रहने के कारण कुछ श्रम के पश्चात् थोड़ा-सा आराम लेना चाहते हैं। इस विश्राम लेने में थोड़ा-सा समय व्यतीत होता है। अधिकतर समय निम्नलिखित दो मानसिक क्रियाओं के कारण व्यतीत होता है:—

(२) नेत्र छलाँग लेने के पूर्व अपनी छलाँग का अनुमान लगाते हैं अर्थात् जिस तरह खिलाड़ी लम्बा कूदने (Long jump)

में कूदते समय एक जगह तनिक-सा रुक जाते हैं, तब छलाँग मारते हैं, उसी तरह नेत्र रुक कर अपनी शक्ति एकत्र करके उड़ान लेते हैं अर्थात् एक वाक्यांश के दो-चार शब्द का अनुमान कर लेते हैं। यह मानसिक क्रिया उड़ान के अन्दाज लेने की होती है, जिसको अँगरेजी में Anticipation कहते हैं। इस क्रिया में मन आगे आनेवाले शब्दों का अनुमान कर लेता है।

(३) विश्राम-स्थल पर एक और मानसिक क्रिया होती है, वह यह कि मन सिंहावलोकन करता है, जिसको अँगरेजी में Retrospection कहते हैं। इस क्रिया में मन पीछे दृष्टि-निक्षेप करता है और वाक्यांश के जितने शब्द उक्त छलाँग में हड़प गये हैं उनका अर्थ-बोध करने के लिये रुकता है।

हमने ऊपर कहा ही है, ये तीनों क्रियाएँ अर्थात् विश्रान्ति, अनुमान तथा सिंहावलोकन साथ ही साथ विश्राम-स्थल पर होती हैं। विश्राम-स्थल या पढ़ने के अड्डे जितने कम होंगे उतना ही जल्दी आदमी पढ़ता है अर्थात् यह बात नेत्र की छलाँग बढ़ाने से होती है।

इस अध्याय के पूर्वार्द्ध में वाचन-क्रिया का हमने जो पृथक्करण किया है उसे पढ़कर तथा नेत्रों की गति के सम्बन्ध में दिया हुआ विवेचन देखकर पाठकों की अवधारणा होगी कि पठन-क्रिया में केवल दृष्टि-क्षेप से शब्द या वाक्यांश देखकर हम उनको पढ़ते हैं, न कि एक-एक अक्षर मिलाकर। सच बात यह है कि शब्द और शब्द-समुच्चय के सम्बन्ध में मस्तिष्क में कुछ प्रतिभा और धारणा बन जाती है जिसके द्वारा मस्तिष्क में अर्थ-बोध उत्पन्न होता है और तुरन्त प्रतिक्रिया यह होती है कि वाचा से उसकी आवाज निकलती है जिसको मनोविज्ञान-शास्त्र में Motor action कहते हैं।

इस अध्याय में एक स्थल पर वाचन-क्रिया को तीव्र-गति से जानेवाली मोटर में बैठकर जाने का उदाहरण दिया था। उस स्थल पर यह भी कहा था कि परिचित मार्ग के दोनों ओर के मकानों-दूकानों, तार के खम्भों और व्यक्तियों से हमारा पूर्ण परिचय था। पूर्ण परिचय रहने के कारण यद्यपि मोटर बड़े वेग से जाती थी, तो भी केवल दृष्टि-क्षेप मात्र से प्रत्येक वस्तु, आदमी तथा घटना को समझना कठिन नहीं था। अर्थात् सड़क पर उस समय होनेवाली घटना तथा दशा का जानना अथवा पढ़ना कठिन नहीं प्रतीत हुआ।

पठन-कला सिखाने में महत्त्वपूर्ण बात एक ही है, वह यह कि छात्रों की दृष्टि का शब्दों से तथा वाक्यांशों से इतना परिचय करादें कि वे देखते ही उनका अर्थ समझ लें और उच्चारण करें।

सत्य कहें तो हमारा दैनिक शब्द-कोश बहुत ही कम है। दैनिक कार्य में बहुत हुआ तो २००-३०० शब्दों का हम उलट-पलट कर प्रयोग करते हैं। यह बात मानी जायगी कि छोटे बच्चे भी केवल दृष्टि-क्षेप से हजारों वस्तुओं को पहचान लेते हैं अर्थात् बच्चों के मस्तिष्क में उन वस्तुओं के प्रति कुछ प्रतिभा बन जाती है जिससे उनकी दृष्टि के सामने आते ही वे उन्हें पहचान जाते हैं। इसी प्रकार दैनिक कार्य में आनेवाले शब्दों से विद्यार्थियों को पूर्ण परिचित करदें तो मानों हमने उनको पढ़ने की कला सिखा दी। इस हेतु से पाश्चात्य देशों में शिशु-पाठशालाओं की प्राथमिक पुस्तकें बनाने के लिये बार-बार दैनिक कार्य में आनेवाले शब्दों तथा वाक्यांशों का एक शब्द-कोश (Word book) बनाते हैं। बालकों के पाठों और वाक्यों में इन्हीं शब्दों को बार-बार लाते हैं और उनसे परिचय देकर पढ़ना सिखाते हैं। हिन्दुस्थान में भी डाक्टर मेके ने पञ्जाब प्रान्त के मोघा ग्राम में जो शिक्षा-संस्था स्थापन की है, उसमें भी हिन्दुस्थानी शब्दों का कोश बनाने का प्रयत्न किया है। यह देखा गया है कि मिडिल की

योग्यता रखनेवाले को ५००० शब्दों की आवश्यकता पड़ती है और प्राइमरी स्कूलों के छात्रों को २००० से ३००० शब्दों की तथा प्रथम कक्षा के छात्रों को १०० से १२५ शब्दों की। शब्द-कोश इस ढङ्ग से बनाया है कि पहले सब से अधिक आनेवाले शब्द और फिर कुछ कम आनेवाले शब्द और अन्त में सब से कम व्यवहार में आनेवाले शब्दों का क्रम रखा जाता है।

नेत्रों की गति पर डाक्टर ह्यूए के आविष्कार जब पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए और उनके ऊपर उन्होंने जो अपनी धारणा बनाई कि पठन-क्रिया में हमारा अक्षरों से कुछ सम्बन्ध रहता ही नहीं तथा पठन में केवल पूरा शब्द या वाक्यांश एकत्र समझकर मस्तिष्क में प्रतिभा बनती है, तब से शिक्षा-शैली में बहुत से परिवर्त्तन हुए और नई-नई योजनाएँ सामने आई हैं। इन सब योजनाओं में अक्षरों से पढ़ाना निन्द्य समझा जाता है। सामान्यतः इन योजनाओं का निम्नलिखित ४ प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है:—

(१) फोनैटिक मैथड (Phonetic method) या ध्वनि-युक्त-शिक्षण-शैली—इस शैली में एक ही आवाज़ के शब्दों को एकत्र करके छात्रों को परिचय कराया जाता है जैसे; दाल, ताल, खाल, बाल, लाल, गाल, थाल आदि अथवा cat, pat, mat, at, that, fat इत्यादि।

इस शैली में मैनपुरी के पादरी लारेन्स महाशय ने कुछ हेर-फेर करके हिन्दी में प्राथमिक "आसान प्राइमर" नाम की किताब लिखी है। पादरी महाशय अपनी शिक्षा-शैली को सिलेबिल मैथड (Syllable method) अर्थात् ध्वनि-पद्धति से सम्बन्धित करते हैं।

(२) Look and say अर्थात् "बोलो और देखो पद्धति"—इस शिक्षा-शैली में बारंबार शब्द दिखाकर उसका उच्चारण कराया जाता

और उसका परिचय दिया जाता है। जैसे, आम, आग, आठ आदि अथवा dog, cat, mat इत्यादि शब्द कार्डों पर लिखकर छात्रों को दिखाये जाते हैं और दिखाने के साथ तुरन्त ही पहचानने के लिये आदेश दिया जाता है।

इस शैली पर मोघा स्कूल में पहले पढ़ाया जाता था। इस शैली का समर्थन हमारे प्रान्त के शिक्षा-प्रसार-अफ़सर श्रीयुत पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी करते हैं। इस विषय पर उनकी लिखित कोई पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई।

(३) (Sentence method) या वाक्य-पद्धति—शब्द-कोश (Wordbook) के पर्याप्त शब्द लेकर उनसे ही वाक्य बनाकर छात्रों को पढ़ाने के लिए दिये जाते हैं। इस तरह शब्दों से परिचय कराया जाता है।

इस पद्धति से डाक्टर लबेक प्रेरित सयानों के लिए पहली किताब हिन्दुस्थान की प्रायः सभी भाषाओं में बनी है। विहार प्रान्त की प्रौढ़-योजना इसी तत्त्व पर निर्धारित है। इसी वाक्य-शैली के अनुसार नागपुर सेन्ट्रल जेल में हमने जो पहला प्रयोग १९२४ में किया था उसमें साक्षरता के चार्ट बनाने में इसी तत्त्व का अवलम्बन लिया था।

(४) (Story method) या कहानी-पद्धति—इस पद्धति से शब्दकोश के पर्याप्त शब्दों से कहानी बनाकर बालकों को प्रथम पढ़ने दी जाती थी, जिससे कहानी में छात्रों की रुचि भी रहे और शब्दों का परिचय भी दिया जाय।

इस पद्धति का वर्तमान काल में मोघा शिक्षा-संस्था से प्रचार किया जाता है। डाक्टर मैकी की स्वयं लिखित पहली किताब 'लाल-मुर्गी' नाम की प्रसिद्ध है। इस पुस्तक के पश्चात् मोघा से इसी ढङ्ग की छोटी-छोटी कितावें बहुत छप चुकी हैं। १५ वर्ष के पहले बीकन-पद्धति की किताबें भी इसी सिद्धान्त पर रची गई थीं।

सनातन से शिक्षा-शैली में अक्षरों से ही पढ़ना प्रारम्भ करते थे, किन्तु डाक्टर ह्यूए के आविष्कारों के पश्चात् नई-नई शिक्षा-शैलियाँ जारी हो रही हैं। इन शिक्षा-शैलियों के प्रवर्त्तकों के मन में विशेषतः ३-४ तत्त्व रहते हैं:—

(१) अक्षर-शैली की अरोचकता, क्लिष्टता, तथा अर्थहीनता हटा देना।

(२) क्योंकि पठन-क्रिया में अक्षरों की ओर ध्यान रहता ही नहीं और नेत्र केवल पहले से बनी हुई मानसिक प्रतिभा के बल पर शब्द और वाक्यांश पढ़ते हैं, तदर्थ समूचे शब्द और वाक्यांश को नेत्रों के सामने लाकर उससे दृढ़ परिचय करा देना।

(३) अक्षर-शैली की रूक्षता विशेषतः एक बात में थी कि अक्षरों में अर्थ नहीं रहता। शब्दों में पर्याप्त अर्थ रहता है, वाक्यों में उससे अधिक रहता है, और कहानी द्वारा पढ़ाने में पूर्ण अर्थ रहता है। अतएव शब्द-शैली, वाक्य-शैली और कहानी-शैली यह उत्तरोत्तर मनोविज्ञान-शास्त्र से श्रेय, श्रेयतर, और श्रेयतम समझी जाती है।

हमारी शिक्षा-प्रणाली इन्हीं सिद्धान्तों पर बनी है और निम्नलिखित बातों में दो क़दम आगे है:—

(१) हमारी शिक्षा-शैली में संगीत का समावेश है जिससे पठन-क्रिया में मधुरता आती है।

(२) पर्याप्त शब्द-कोश में से कृत्रिम कहानी बनाने के स्थल पर हम अपने प्रथम पाठों में उन्हीं वाक्यों और कहानियों को लेते हैं, जिनका उनके मस्तिष्क पर कई पीढ़ियों से घर बन चुका है और जो उनके मुख पर हर समय रहते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि रूक्षता के स्थान पर छात्रों के मन में रुचि, पाठ्य-विषय के निस्तेज स्थल पर भावना उत्पन्न होती है जिससे उनको अर्थ-पूर्ण और रस-पूरित पाठ पढ़ने के लिए मिलते हैं।

चौदहवाँ अध्याय

पठन-विधि

मनोवैज्ञानिक भूमिका—(चौथा खण्ड)

अध्याय १२ के आरम्भ में लगे चित्र की 'अ' 'व' आकृतियों को देखिये। उनमें नेत्र रुकने के अड्डे खड़ी रेखा से प्रकट किये हैं। ऐसे दो अड्डों के बीच के अन्तर को Comprehension span अर्थात् अर्थबोध-छलाँग कहते हैं। गत अध्याय पढ़कर पाठक समझ गये होंगे कि इन दोनों अड्डों के बीच उतने ही शब्द या वाक्य-खंड आते हैं, जहाँ अर्थ पूर्ण होता है।

पढ़ने को गति और पठित विषय के ज्ञान अथवा अर्थ-बोध के सम्बन्ध में अब तक बहुत से आविष्कार किये गये हैं। इन आविष्कारों से अनुभव हुआ है कि पढ़ने की गति जितनी तीव्र होगी उतना ही पठित विषय का ज्ञान अथवा अर्थ-बोध अच्छा होगा। हमारी देखी हुई बात है कि प्राथमिक कक्षाओं के बालक एक-एक अक्षर पढ़कर पूरा वाक्य समाप्त करते हैं। वाक्य कितना ही सरल क्यों न हो, वे उसका अर्थ नहीं ग्रहण कर सकते अर्थात् वाक्य के अन्तर्गत शब्दों का तथा पूरे वाक्य का अर्थबोध उनको नहीं होता। उदाहरणार्थ एक सरल वाक्य लीजिये, "मोहन की माँ ने कहा कि तुम बाज़ार जाओ।" यह एक साधारण वाक्य है, पर यदि बालक उक्त वाक्य को एक-एक अक्षर पढ़कर पूरा करे तो यह उसका अर्थ ग्रहण न कर सकेगा।

अब 'इ' आकृति की ओर देखिये। इसमें बालक के अक्षर-पद्धति से पढ़ने के प्रयोग प्रदर्शित किये गये हैं। इससे ज्ञात होगा कि नेत्र रुकने के अड्डे प्रत्येक अक्षर के पश्चात् आते हैं। यदि वही

बालक 'सोहन की माँ ने कहा' एक साथ कहे और दूसरी बार 'तुम बाज़ार जाओ' इकट्ठा कहे तो उसका अर्थ-बोध होना कठिन नहीं है। उक्त उदाहरण से सिद्ध होगा कि पढ़ने की गति जितनी तीव्र होगी अर्थ-बोध उतना ही स्पष्ट होगा। अतएव अध्यापक अपने छात्रों को अक्षर-अक्षर पढ़ाने की टेव क़तई न डाले। केवल एक-एक शब्द पढ़ाने की टेव डालना भी बहुत संतोषजनक पद्धति नहीं है, तथापि उसको त्याज्य भी नहीं कह सकते। अध्यापकों का ध्येय यही रहना चाहिये कि छात्र अर्थ-बोधक शब्दों के पश्चात् रुके।

भारतवर्ष में इस समय जो साक्षरता-प्रसार-योजना प्रचलित हो रही है उसमें से यदि हम कुछ शिक्षा-प्रणालियों के एक विशिष्ट अंग की आलोचना करें तो अनुचित न होगा। यदि हमारी आलोचना से अनुदारता प्रकट हो तो उसके लिये हम योजना-संचालकों से क्षमा माँगते हैं।

आगामी अध्याय में प्रचलित शिक्षा-प्रसार-प्रणालियों का जो परिचय दिया है उसे पढ़कर पाठकों के विचार में यह बात अवश्य आयेगी कि बहुतसी शिक्षा-प्रणालियाँ ऐसी भी प्रचलित हो रही हैं, जिनमें शिक्षा की अवधि ६ सप्ताह की और किसी-किसी में ४-६ पाठों ही में सीमित अर्थात् दो सप्ताह की ही अवधि रखी गई है। इस अवधि में छात्रों को अधिकतर अक्षरों की और कई मात्राओं की पहचान ही कराई जा सकती है। योजना-प्रचारक भी यह बात भली-भाँति जानते हैं, किन्तु यह बात मानते हुए भी इस बात पर विश्वास करते हैं कि जिन छात्रों को केवल अक्षर-पहचान हो गई वे प्रतिदिन कुछ न कुछ पढ़ते रहेंगे, जिससे उनका अक्षर-परिचय स्थिर रहेगा और कालान्तर में उनकी पढ़ने की गति भी बढ़ेगी। हमें यह कहने में दुःख होता है कि उनका यह विश्वास व्यर्थ है। केवल अक्षर-

पहचान होने के पश्चात् ही छात्रों को छोड़ देने का परिणाम एक ही हो सकता है कि वे फिर से निरक्षर हो जायँ। इसका मुख्य कारण यह है कि अक्षर-परिचय करा देना ही पढ़ने की कला देना नहीं है। जब तक पढ़ने की गति छात्रों में नहीं बढ़ती, तब तक पठित-विषय का अर्थ-बोध या ज्ञान उनको नहीं होगा अर्थात् पढ़ने में स्थायी रुचि उनमें न बढ़ेगी। चार-छः सप्ताह में अक्षर-ज्ञान देकर छात्रों को छोड़ देने के विषय में हमें एक और भी आक्षेप है। उसका विवेचन थोड़े अवकाश से ही करेंगे। यहाँ डाक्टर विसमन साहब के किए हुए प्रयोग तथा आविष्कारों के प्रमाण उपस्थित करेंगे।

पढ़ना सिखाने में मुख्य प्रश्न पढ़ने की गति बढ़ाने का ही है। केवल अक्षर-बोध वा अक्षर-परिचय कोई वस्तु नहीं है। पढ़ने की गति तबही बढ़ सकती है जबकि अर्थ-बोध-छलाँग अथवा (Comprehension span) लम्बे हों अर्थात् पंक्तियों पर से घूमते समय नेत्र कम स्थानों पर रुकें। अर्थ-बोध-छलाँग बढ़ाना पठन-शैली में प्रधान बात है। इस स्थल पर पढ़ने की गति बढ़ाने के लिये जो उपाय किये जाते हैं उनका विवरण हम दे रहे हैं:—

साधारणतः पढ़ने की गति बढ़ाने के लिये अध्यापकों को सूचित किया जाता है कि पहले वे कहानी पढ़ें। कहानी को सुचारु रूप से छात्रों को समझा दें। समझाने के पश्चात् भी और एक बार स्पष्ट आवाज़ से सुनायें। इसके पश्चात् छात्रों को पढ़ने का आदेश देने के पूर्व, अर्थ-पूर्ण शब्दों या वाक्यांशों के अन्त में स्वल्प विराम करने का आदेश करें। विद्यार्थियों को अर्थ-पूर्ण वाक्यांशों के पश्चात् ही रुकने का आदेश दें, बीच-बीच में रुकने की टेव न डालें और यदि छात्र रुकें तो उनको रोकते रहें।

जिस विचार से कहानी पहले पढ़ी जाती है और उसका अर्थ

समझा दिया जाता है, तदनन्तर स्पष्ट उच्चारण से पढ़ाई जाती है, इसका उद्देश्य यह है कि कान के पटलों पर से शब्द एक बार गिरे, क़िस्सा-कहानी का परिचय रहने के कारण पढ़ने में सुगमता आये, तथा पठन-क्रिया में मानसिक-क्रिया जाग्रत होजाय, जिससे पढ़ते समय नेत्र और मन आनेवाले शब्दों का पहले से ही अनुमान करते रहें। इस क्रिया को हमने (anticipation) नाम से सम्बोधित किया है।

यह पद्धति अच्छी है और पाठशालाओं में कहीं-कहीं प्रचलित भी है। अध्यापकों को चाहिए कि अपनी पाठशालाओं में गद्य पढ़ाते समय उपर्युक्त सूचनाएँ व्यवहार में लाएँ। पद्य पढ़ाते समय भी पहले पद्य मधुर ध्वनि से गाकर सुनादें, पद्य का अर्थ समझा दें, इसके पश्चात् पढ़वायें।

हमने गत ८-१० वर्ष से संगीत की सहायता से पद्य पढ़ाने के प्रयोग किये हैं। उनसे पढ़ने की गति बढ़ाने के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाला है। वह यह कि छात्रों को गाने की धारा में छोड़ दीजिये। उदाहरणार्थ रामायण की कोई भी चौपाई लीजिये। पढ़ाने से पूर्व पूरे तौर से उसका प्रसंग समझा दीजिये। इसके पश्चात् आप गाकर सुनाइये और छात्रों से पढ़ते हुए गवाइये। ऐसा करने से उनमें पढ़ने की गति बढ़ेगी। इस रीति से पढ़ने की गति बढ़ाने में आँखों को जो खींचातानी होती है वह बहुत कम कष्टदायी होगी, क्योंकि इस खींचातानी में स्वर की मधुरता और विषय की मनोरंजकता रहती है। आँखें ढकेली तो जाती हैं किन्तु उनको कष्ट नहीं होता। इस प्रकार पढ़ने की गति बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण कार्य सरलता से सिद्ध होता है।

इसी अध्याय में एक स्थान पर हम कह चुके हैं कि प्रौढ़ों को छः-सात सप्ताह तक साक्षर-ज्ञान देने के पश्चात् छोड़ देने में आपत्ति

है। उस सम्बन्ध में हम यह भी कह चुके हैं कि डाक्टर विसमन के स्मरण-शक्ति के विषय में किये हुए आविष्कारों से यह बात प्रमाणित है कि अशिक्षित प्रौढ़ों को कई दिन अथवा कई सप्ताह तक पढ़ाकर छोड़ देने से केवल अर्थ-हानि तथा शक्ति-हानि ही होगी। अतएव इस स्थल पर उदाहरणार्थ डाक्टर विसमन का एक प्रयोग देते हैं:—

डाक्टर विसमन ने समान आयु और समान बुद्धि के छात्रों की दो टोलियाँ लीं। दोनों टोलियों को कण्ठस्थ करने के लिये Nonsense syllables अर्थात् अर्थ-रहित स्वर तथा शब्द दिये। अर्थ-रहित शब्द देने का मुख्य मन्तव्य यह रहा कि छात्रों में से किसी छात्र पर रटने में पूर्व-शिक्षा का किसी प्रकार का प्रभाव न पड़े। पहली टोली को पाठ १५ बार नित्य रटने के लिये आदेश दिया, किन्तु दूसरी टोली को केवल ३ बार उस पाठ को दुहराने को आज्ञा दी। पहली टोली उस पाठ को २० दिन में कण्ठस्थ करने में समर्थ हुई और दूसरी टोली ने उसे कण्ठस्थ करने में ३५ दिन लगाये। अब यहाँ देखें कि इन दोनों टोलियों की अर्थ-रहित शब्दों के रटने में कितनी शक्ति व्यय हुई।

पहली टोली ने नित्य १५ बार पढ़कर २० दिन में ३०० बार रटा।

दूसरी टोली ने नित्य ३ बार पढ़कर ३५ दिन में १०५ बार रटा।

ऊपर दिये हुए अंकों से पता चलेगा कि दूसरी टोली ने पाठ कण्ठस्थ करने में १५ दिन अधिक लगाये, परन्तु पाठ को १०५ बार रटकर ही अर्थात् पहली टोली की अपेक्षा एक-तिहाई शक्ति व्यय करके कण्ठस्थ किया।

डाक्टर विसमन ने दोनों टोलियों को छोड़ दिया। दोनों टोलियों ने पुनः उन अर्थ-रहित शब्दों को दुहराने का कभी प्रयत्न

नहीं किया। डाक्टर साहब ने छः महीने पीछे एक साथ दोनों टोलियों को बुलाया और पहले के अर्थ-रहित रटे हुए पाठ को सुनाने को कहा। देखने में यह आया कि दूसरी टोली के व्यक्ति अर्थ-रहित शब्दों में से कुछ शब्द स्मरण रख सके, किन्तु पहली टोलीवाले, जो अधिक शक्ति व्यय करके कम अवकाश में रट गये थे, सब का सब भूल गये। इस ढंग के प्रयोगों के बल पर, डाक्टर विसमन ने स्मरण के सम्बन्ध में एक नियम बनाया है कि पाठ्य-विषय जितने अधिक अवकाश में पढ़ा जायगा उतना ही वह अधिक समय तक स्मृति में रहेगा। जितनी अवधि में पाठ पढ़ा जाता है उसको उन्होंने Age of learning अर्थात् विद्या-ग्रहण की अवधि कहा है। जितनी अधिक लम्बी पढ़ने की अवधि होगी उतना ही अधिक पाठ्य-विषय स्मृति में रहेगा।

कतिपय सप्ताह में साक्षरता ग्रहण करने का परिणाम केवल यही होगा कि छात्र कतिपय सप्ताह ही में उसे भूल जायँगे। इसी से हमारी शिक्षा-प्रणाली के अनुसार प्रमाण-पत्र पाने के लिये पाठशाला में प्रौढ़ छात्रों की उपस्थिति कम से कम १२० दिन रहनी चाहिये, ऐसा बन्धन लगाया है।

ट्रेनिंग क्लास में निरे अपठितों को साक्षरता-प्रदान के लिए जो डेमॉन्स्ट्रेशन (Demonstration) क्लास चलता है, उसकी शिक्षा-शैली देखकर अध्यापकों को ज्ञात होगा कि हम किसी पाठ को पूर्णतः रटाते नहीं, केवल प्रतिदिन एक-दो बार पढ़वाते हैं। दुहराने की क्रिया में जैसे पहले-पहल पाठ कण्ठस्थ होते हैं, वैसे ही नित्य नये-नये पाठ वा नवीन गीत व गीतों के खण्ड, हम पढ़ाना आरम्भ करते हैं, अर्थात् किसी गीत को हम एक ही दिन पूर्णतया रटाते नहीं। गीत तथा भजन के शब्द नित्य दिखाकर परिचय कराते और इस अक्षर-परिचय के साथ गीतों का स्मरण भी कराते हैं, किन्तु

किसी एक पाठ को पूरा रटने अथवा कण्ठस्थ करने की शैली का हम खण्डन करते हैं। इसका एक कारण यह है कि वह पाठ बहुत दिन तक पढ़ाया जाता है वा उसकी पठन-क्रिया की अवधि विस्तृत की जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि गीतों का स्मरण बहुत दिन तक रहता है।

हमारी शिक्षा-शैली की एक और बात अध्यापकों के कान में आई होगी कि पहले हम पूरा गीत छात्रों को गाकर सुनाते हैं, तब उसका अर्थ समझाते हैं। तदनन्तर गीत की एक दो पंक्ति का उच्चारण करते और छात्रों से सामुहिक उच्चारण कराते हैं। इस ढंग से प्रत्येक शब्द का तीन-तीन बार परिचय देने के पश्चात् गाने की ताल पर पूरी पंक्ति गाते और छात्रों से शब्द देखते हुए गवाते हैं। इस पद्धति से शब्दों का तथा उनकी पंक्तियों का दो-चार बार परिचय देने के पश्चात् दूसरे दिन जब हम उस गीत को दुहराते हैं तो गीत आदि से अन्त तक पहले हम स्वयं पढ़ते हैं, तब विद्यार्थियों से पढ़वाते हैं। मनोविज्ञान-शास्त्र में इसको Whole and part method अर्थात् समूची तथा खण्ड-पद्धति कहते हैं। इस पद्धति की उचितता भी डाक्टर विसमन के प्रयोगों के ऊपर आधारित है। डाक्टर विसमन ने स्मरणशक्ति के सम्बन्ध में जो बहुत से प्रयोग किये थे, उनमें से एक इस प्रकार का था। उन्होंने समान वय और समान बुद्धिवाले छात्रों की दो टोलियाँ लीं। दोनों टोलियों को एक अपरिचित गीत कण्ठ करने को दिया। पहली टोली को आदेश दिया कि वे छोटे-छोटे खण्ड से उसको रटते रहें, जैसे कि आजकल हमारे स्कूलों के लड़के रटते हैं। दूसरी टोली को आदेश दिया कि वह उस गीत को आदि से अन्त तक पढ़ती रहे। दोनों टोलियों को गीत रटने के लिए केवल बीस मिनट प्रतिदिन दिये जाते थे। इस प्रयोग से उनको पता चला कि समूची पद्धति से पढ़नेवाले

कम दिन में पाठ कण्ठस्थ कर लेते हैं। किन्तु खण्डतः शब्द-शब्द पढ़नेवाले अधिक दिन में कण्ठ कर पाते हैं। उनके देखने में एक और बात आई कि खण्ड-पद्धति से पढ़नेवाले पंक्ति के अन्त में पहुँचने के पश्चात् कभी-कभी इधर-उधर की पंक्ति गाना प्रारम्भ करते थे अर्थात् उनके स्मरण में पंक्तियों का क्रम ठीक नहीं रहता था। इसके कारण यह हैं—शब्दों और पंक्तियों के बीच में जो पारस्परिक सम्बन्ध बनते हैं वे सुयोग्य बनते हैं। यह बात निम्नलिखित गीत से पाठकों की समझ में आजायगी:—

लाठी में गुणवहुत हैं,—सदा राखिये संग।
गहिर नदी नारा जहाँ,—तहाँ बचावै अंग॥
तहाँ बचावै अंग,—झपटि कुत्ता कहँ मारै।
दुश्मन दावागीर होयँ,—तिनहूँ को मारै॥
कह गिरिधर कविराय,—सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छाँड़ि,—हाथ में लीजै लाठी॥

ऊपर दी हुई पंक्तियों से पाठकों को पता चलेगा कि उनके क्रम में एक पंक्ति के अन्त के शब्द और उससे आगे आनेवाली पंक्ति के पहले शब्द में तथा एक ही पंक्ति के पहले खण्ड के अंतिम शब्द और उसी के दूसरे खण्ड के पहले शब्द में यथेष्ट सम्बन्ध है, उनमें एक गाँठ-सी बँध जाती है। यदि गीत लम्बा हो तो कुछ समय तक उसके खण्डों से थोड़ा-सा परिचय करा देने के पश्चात् अर्थात् खण्ड-पद्धति का थोड़ा-सा अवलम्बन लेने के पश्चात् समूची-पद्धति से गीत पढ़ाना अधिक व्यावहारिक है।

अध्यापकों के ध्यान में और भी एक बात आई होगी कि हम अपनी शिक्षा-प्रणाली में सोलह भजन-चार्ट और एक दो गीत समाप्त होने तक वर्णमाला के अक्षर छात्रों को क्रमशः दिखाते ही

नहीं अर्थात् शिक्षा आरम्भ होने के पश्चात् १२ या १५ दिन में उनके सामने अक्षर-चार्ट रखकर उनकी हाज़िरी लेते हैं।

अध्यापकों के ध्यान में यह भी बात आई होगी कि भजनों में तथा गीतों में बहुत दिन तक मात्रा समेत अक्षर छात्र पढ़ते हैं, किन्तु ककहरा या बारहखड़ी क्रमशः एक-डेढ़ महीने के पश्चात् पढ़ाना आरम्भ करते हैं। अध्यापकों ने यह बात भी देखी होगी कि संयुक्त अक्षर के सम्बन्ध में जो नियम हैं, जिनको हमने मिलावट-चार्ट में समझाया है, उन्हें हम ढाई महीने के पश्चात् पढ़ाना आरम्भ करते हैं।

गत अध्याय में एक स्थान पर हम कह चुके हैं कि हमारी शिक्षा-प्रणाली अधिक पर्य्यालोचनात्मक (Inductive) अर्थात् उदाहरणों से नियम निकालनेवाली है।

प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में वर्णमाला के अक्षर पहले रटाये जाते हैं। इसके विपरीत, हमारी शिक्षा-प्रणाली में छात्र १५ दिन तक अक्षरों को भजनों तथा गीतों में देखते हैं। वे सब ही अक्षरों को अध्यापक की सहायता से पढ़ जाते हैं, पर इस अवधि में किसी अक्षर को भी ठिकाने से पहचानते नहीं। इस १५-२० दिन की अवधि हम छात्रों के मन को अक्षरों के प्रति अपनी स्वतन्त्र धारणा बनाने का अवसर देते हैं। अध्यापक की सहायता से जब वे अक्षर पढ़ते हैं, तब उनका मन ही काम करता रहता है और बार-बार विशिष्ट आवाज़ उठाना और उसी के साथ-साथ विशिष्ट चिह्न का नेत्रों के सामने आना, इन दोनों के संयोग से वे अपने मन में अक्षरों के प्रति अस्पष्ट कल्पना बनाना आरम्भ करते हैं। जब वे अक्षरों के प्रति अस्पष्ट धारणा करने लगते हैं, तब ऐसी स्थिति में हम उनके समक्ष क्रमशः अक्षरों को उपस्थित करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि दिन-प्रति दिन अक्षरों की उपस्थिति (हाज़िरी) लेने से

उनकी अक्षरों के प्रति धारणा अधिक मज़बूत होती जाती है। अन्त में चार सप्ताह वा एक महीना पूरा होने के पश्चात् थोड़े परिश्रम से ही उनके मस्तिष्क में अक्षरों का क्रम समा जाता है, तब उनसे क्रमशः अक्षर पढ़वाते भी हैं, और लिखवाते भी हैं।

लगातार डेढ़ महीने तक भजनों तथा गीतों में अक्षरों को मात्रा समेत छात्र देखते हैं। हम उनसे कुछ रटवाते नहीं, न मात्रा के सम्बन्ध में छात्रों को हम कुछ कल्पना देते हैं। डेढ़ महीने की अवधि में भिन्न-भिन्न अक्षरों के साथ एक ही प्रकार की मात्रा आती है और वह अक्षर के उच्चारण में थोड़ा-सा अन्तर करती है। यह देखकर छात्र मात्राओं के प्रति अपनी स्वतंत्र कल्पना मनमें बनाना आरम्भ करते हैं। ऐसे अवसर पर हम मात्राओं के सम्बन्ध का ज्ञान स्पष्ट करना आरम्भ करते हैं।

यही बात अक्षरों की बनावट के विषय में है। छात्र अस्पष्ट धारणा पहले बनाना आरम्भ करते हैं, तब हम उनकी सहायता के लिये पहुँचते और संयुक्त अक्षरों के सम्बन्ध के नियम उनको समझाते हैं।

यदि हम उनको क्रमशः अक्षर न पढ़ायें या उनके समक्ष अक्षर-चार्ट कभी न उपस्थित करें और न अक्षरों को ठिकाने से क्रम दें तो यह न समझना चाहिये कि उनकी अक्षरों के प्रति धारणा स्पष्ट कभी न होगी। अध्यापक के बिना बताये वैसे ही तीन महीने के भीतर प्रत्येक अक्षर को छात्र ठीक पहचान जायँगे। केवल अन्तर इतना ही रहेगा कि वे उनको क्रम न दे सकेंगे, जैसा कि हमारी वर्णमाला के कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग आदि में दिया गया है। यदि चार-छः महीने के पश्चात् उनकी ही मदद से हम क्रम लगाना चाहें तो अत्यन्त कुशाग्र-बुद्धि के सहयोग से कण्ठ्य अक्षर कौन से हैं, दन्त्य कौन से हैं, औष्ठ्य कौन से हैं आदि पूछ-पूछकर उनसे अक्षरों का क्रम अथवा परिभाषा

छात्रों से ही ठीक-ठीक बनवा सकेंगे। पाठकों को यह विदित होगा कि वर्णमाला का क्रम वैयाकरणों का बनाया हुआ है। जगत् में हम ऐसी कितनी ही वस्तुओं को पहचानते होंगे, किन्तु उनकी परिभाषा कल्पना करने में कुछ देर तक असमर्थ होंगे। जैसे; वृक्ष, फल, मकान, दुकान इत्यादि वस्तुओं के सम्बन्ध में हमारी धारणा स्पष्ट है। किन्तु हमसे जो पूछा जाय कि वृक्ष, फल, मकान इत्यादि की शास्त्रोक्त परिभाषा बताओ तो हम सम्भवतः न कह सकेंगे और कहना चाहें तो भी कुछ देर तक हमें सोचना ही पड़ेगा।

वही बात पहले-पहल हमारी शिक्षा-प्रणाली में तथा बिना किसी का सहारा लिये जो रामायण पढ़ना सीख गये उनके सम्बन्ध में है। संसार की वस्तुओं के सम्बन्ध में जीवमात्र की धारणा धीरे-धीरे होती है। जैसे-जैसे विविध अनुभव बढ़ता है वह अधिकतर स्पष्ट होती जाती है। वस्तुओं तथा अक्षरों के, मात्राओं तथा मिलावट के सम्बन्ध में धारणा दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई स्पष्ट होती है, इसका एक उदाहरण इस स्थल पर देंगे।

यह एक साधारण बात है कि दस या पन्द्रह साल के बालक का कुत्ते के वर्णन और उसकी परिभाषा के संबंध में प्रसंगानुसार क्रमशः किस प्रकार परिवर्त्तन हुआ होगा। इसका काल्पनिक चित्र खींचकर यहाँ हम अपने पाठकों को समझाने का प्रयत्न करेंगे।

कदाचित् जब बालक एक अथवा दो वर्ष का रहा होगा, तब वह एक छोटे से पशु के साथ खेलता रहा होगा, जिसे लोग कुत्ते के नाम से पुकारते हैं। उस समय उसके मनमें कुत्ते की परिभाषा यह बनी होगी कि कुत्ता साथ में खेलनेवाला एक सखा है। किसी दिन उसने कुत्ते को जोर से भौंकते देखा होगा, तब झट उसने अपनी परिभाषा में यह शब्द और जोड़ लिये होंगे कि कुत्ता साथ में खेलनेवाला सखा और क्रोध में भौंकनेवाला प्राणी है। अभी तक उसने श्वेत

कुत्ते देखे थे, इसलिये उसकी परिभाषा में सभी कुत्ते श्वेत होते हैं; यह विचार काम कर रहा होगा, परन्तु जब उसने कबरे, लाल और काले आदि अनेक रङ्ग के कुत्ते देखे, तब उसके मन में कुत्तों के रङ्ग रूप की परिभाषा बदलकर इस रूप में परिणत हो गई कि कुत्ते कई रङ्ग के होते हैं। फिर एक दिन उसने देखा कि किसी-किसी कुत्ते की पूँछ और कान कटे तथा किसी के समूचे होते हैं और कुत्ते आदमी को काटते भी हैं। अब उसके मन में कुत्ते के विषय में प्रसंगानुकूल परिवर्त्तन होते-होते यह परिभाषा बनी कि कुत्ते खेलते, भौंकते, भिन्न-भिन्न रङ्ग के होते और पूँछ व कान के कटे तथा समूची पूँछ और कानवाले भी होते हैं। कहने का सारांश यह है कि यदि कोई ज्ञान क्रमशः ठीक विधि से पूर्ण न हुआ हो तो उत्तरोत्तर अनुभव से वह क्रम-बद्ध और पूर्ण हो सकता है। सचमुच मन इसी ढंग से ज्ञानार्जन करता है न कि विद्वानों की बनाई हुई परिभाषाओं और उनके बनाये क्रम को रटाने से।

सम्भव है हमारी इस शिक्षा-प्रणाली पर कुछ शिक्षा-विशारद आक्षेप करने का कष्ट करें। वे कहें कि इस साक्षरता-प्रणाली के द्वारा छात्रों को जो अक्षर-ज्ञान दिया जायगा वह भ्रमात्मक होगा; क्योंकि वह क्रम से नहीं दिया गया। उनकी शैली का मूल सिद्धान्त यह है कि जो चीज पढ़ाई जाय, वह क्रम से पूर्णतः पढ़ाई जाय। उनके विचार से ज्ञान-दान में थोड़ी-सी भूल भी भयङ्कर है, क्योंकि ज्ञान-दान वा शिक्षा ग्रहण में जो त्रुटि हो जाती है वह उसी दशा में पड़ी रहती है। इस अशुद्ध छाप को बालकों के मानस-पटल से हटाना बहुत दुस्तर है।

हमारी शिक्षा-प्रणाली में, यह बात सही है कि छात्र १६ भजन-चार्ट वैसे ही रट जाते हैं और दौड़ती हुई दृष्टि से शब्दों को भी दिखला सकते हैं; किन्तु पहले-पहल बीच का शब्द या अक्षर पहचानने

के लिये जब उनको कहा जायगा तो वैसे ही स्तब्ध हो जायँगे। उनकी यह स्थिति शिक्षारम्भ से अनुमानतः तीन सप्ताह तक रहती है। तोते की तरह छात्रों का इस भाँति पढ़ाना और शब्द दिखलाना देखकर सम्भव है कि पुरानी परिपाटी के अभिमानियों का अभिप्राय यह हो कि हमारी साक्षरता-प्रणाली बालू पर भीत उठाना है। बालू कब खिसक जायगी और दीवार कब गिर जायगी, इसके सम्बन्ध में कोई गारण्टी नहीं दी जा सकती।

पुराने तार्किक शिक्षा-पद्धति के अभिमानी अपने ही ढङ्ग से पढ़ाते हैं। यदि उनको ज्यामेट्री या भूमिति पढ़ाना होगी तो पहले विन्दु, रेखा, सरलरेखा, वक्ररेखा, वृत्त, चतुष्कोण इत्यादि की परिभाषाएँ रटाकर पढ़ायेंगे और अन्त में ज्यामेट्री के ज्ञान का व्यवहार में उपयोग करना सिखा देंगे। यदि उनको भूगोल पढ़ाना होगा तो पहले-पहल अन्तरीप, झील, खाड़ी, द्वीप आदि की परिभाषाएँ रटाकर रूक्षता से नक़शे पर स्थलों का ज्ञान देंगे और बहुत वर्षों के पश्चात् इस भूतल पर मानव जाति किस ढंग से बसी है और अपना जीवन कैसे व्यतीत कर रही है, पढ़ायेंगे। तार्किक-पद्धति से पढ़ाने वाले पहले परिभाषाओं को रटाकर जो ज्ञान बड़े-बड़े विद्वानों ने एकत्र करके विशिष्ट योजना के साथ रचा है, उसको क़दम-क़दम से पढ़ाना, इसको ही क्रमपूर्वक पढ़ाना समझते हैं। इनके विचार से क्रम वही है, जो बड़े-बड़े विद्वानों ने लगाया है और इस क्रम के विपरीत दूसरे मार्ग से ज्ञान-प्रदान करने में वे त्रुटि समझते हैं। तार्किक-पद्धतिवाले दो बातों पर विशेष बल देते हैं। एक तो क्रम और दूसरे शिक्षा-प्रदान में अचूक ज्ञान। सारांश में वे चाहते हैं कि ज्ञान-प्रदान में क्रम तो रहे, किन्तु विद्वानों के निकाले हुए नवनीत पर ही छात्रों को तुष्ट रखा जाय, चाहे इस प्रकार उनको अजीर्ण ही क्यों न हो जाय। उनका सिद्धान्त अन्ध-विश्वास की भित्ति पर टिका है। इस सिद्धान्त के

पीछे कुछ विचार परम्परा भी है। ऐसी दशा में हम सिद्धान्तों का संक्षिप्त समीक्षण करना उचित समझते हैं।

ब्रिटिश तत्त्ववेत्ता लॉक ने इस सिद्धान्त को पाठकों के सम्मुख इस रूप में रखा था कि मन (Table Rosa) एक शीशा या कोरे सफ़ेद काग़ज़ के समान है। उसके ऊपर चाहे जैसी छाप लगाई जा सकती है, जैसी छाप होगी वैसा ही मन का झुकाव होगा। यदि मन रूपी श्वेत-पत्र पर छाप ग़लत होगी तो मुद्रण भी ग़लत होगा। जान पड़ता है कि लॉक साहब का कहना यह था कि जैसे ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड या फ़ोटोग्राफ़ी के फ़िल्म पर क्रम से ध्वनि और प्रकाश की मुहर लगती है वैसे ही मन के ऊपर भी देखी, सुनी तथा शिक्षार्जित वस्तुओं की सील-मुहर लगती है। यदि इन छापों में ग़लती होगी तो ज्ञान भी ग़लत होगा। कदाचित् लॉक साहब ने दृष्टान्त के रूप में मन को शीशा रूपी कहा हो, परन्तु समझनेवाले उसका अर्थ दूसरा ही समझ गये; क्योंकि मन वैसा नहीं है। उसकी ग्रहण-शक्ति फ़ोटोग्राफ़ी के फ़िल्म या ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड की तरह जड़ नहीं है। मन तो अत्यन्त प्रतिगामी और सजीव है, वह वाह्य वस्तुओं के प्रभावानुसार उनके ग्रहण और त्याग में स्वतन्त्र है।

अध्यापकों को प्रत्येक कक्षा में चार प्रकार के बालक मिलेंगे। इससे उन्हें विदित होगा कि मन कितना सजीव, प्रतिगामी तथा कल्पना की धारणा बनाने में स्वतन्त्र रहता है।

(१) वे छात्र, जो अध्यापक के पढ़ने की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते।

(२) वे छात्र, जिन्हें अध्यापक एक बात समझा रहा है, पर वे कुछ दूसरी ही समझ रहे हैं।

(३) वे छात्र, जो अध्यापक के समझाये हुए विषय को भली प्रकार हृदयङ्गम कर लेते हैं।

(४) वे छात्र, जो अध्यापक के पाठ्य-विषय को समझते हुए एक क़दम और आगे बढ़ते नज़र आते हैं।

अब हमको इस बात पर विचार करना है कि चार प्रकार की भिन्नताएँ कक्षाओं में क्यों होती हैं। पहले प्रकार के विद्यार्थी का मन कक्षा में नहीं था, वह मन दूसरे विचारों में रँगा हुआ था, उसके कान और नेत्र तो बाहर से खुले देख पड़ते थे, पर वे यथार्थ में अन्दर से बन्द थे; क्योंकि उसकी विचार-धारा अन्यत्र बह रही थी।

दूसरे प्रकार का कारण यह है कि उसकी अन्तर्य्यामी विचार-धारा एक ओर से प्रवाहित हो रही थी, इतने में बाहर से शब्द सुनाई पड़ा। अब दोनों के मेल से उसकी विचार-धारा एक तीसरे ही मार्ग से बहने लगी।

तीसरा प्रकार उन छात्रों में पैदा होता है, जिन्होंने मन से अन्य विचार तो बिल्कुल हटा दिये हैं, पर जो सावधानी से सुनते तथा समझते रहे हैं।

चौथा प्रकार उन शिक्षार्थियों में उत्पन्न होता है, जिनकी विचार-गति अध्यापक की विचार-धारा में तल्लीन होकर उत्साह के वेग से दो क़दम आगे चली जाती है।

यह सब ग्रहण-शक्ति पर निर्भर है, पर इनका प्रमुख आधार मनोवृत्ति है। मन प्रतिगामी और सजीव है, उसमें उत्तरोत्तर अनुभव के बल पर स्वयं परिभाषा बनाने की शक्ति है। मनोवैज्ञानिक-पद्धति से छात्रों को व्यवहार में आनेवाले उदाहरणों से ज्ञान-प्रदान का प्रारम्भ किया जाता है। छात्रों को स्वयं परिभाषा बनाने का अवसर दिया जाता है और अन्त में छात्रों को ज्ञान-रचना में उसी स्थान पर लाया जाता है, जिस स्थल पर विद्वान् पहुँचे हैं। ज्ञान-दान की दोनों पद्धतियों में चेष्टा की जाती है, किन्तु एक क्रमशः क्लिष्टता से देते हैं

और दूसरे ज्ञान-ग्रहण को सुगम करके ज्ञानार्जन के शिखर पर पहुँचाते हैं।

छात्रों को केवल अक्षर-ज्ञान दे देना ही अध्यापक का प्रधान लक्ष्य नहीं है, वरन् उनमें पढ़ने की स्थायी रुचि उत्पन्न करना ही उसका प्रमुख कर्तव्य है। ग्रामीण जनता में स्थायी-रुचि उनके दैनिक जीवन के प्रयोग में आनेवाले विषयों के पढ़ाने से पैदा हो सकती है। जैसे; रामायण, आल्हा, विरहा और फाग इत्यादि। अभी तक ग्राम-वासियों के पढ़ने योग्य साहित्य का निर्माण नहीं हुआ। इसलिये तब तक हमें उपर्युक्त विषयों के द्वारा पढ़ना सिखाकर सन्तोष करना चाहिये। ये विषय उनके दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले और उनकी रुचि के अनुकूल हैं। इन्हीं के द्वारा हम उनकी पढ़ने की रुचि को स्थायी बनाने में समर्थ होंगे। यही ध्यान में रखकर उनकी मनोवृत्ति के आधार पर, जिस शिक्षा-प्रणाली का हम समर्थन कर रहे हैं, आशा है, वह अधिक रुचिकर ग्राह्य, और उपयोगी प्रमाणित होगी।

इस शिक्षा-प्रणाली के प्रचलित करने में हमारा एक और महत्त्व-पूर्ण उद्देश्य है, जो इस जमाने में किसी सूरत से पूरा नहीं हो सकता और जिसमें सफल होने के लिये बहुत-सी कठिनाइयों का हमें सामना करना पड़ेगा; वह है ग्रामीण बहू-बेटियों में साक्षरता का प्रचार करना। जहाँ बच्चों और प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिये यथेष्ट अध्यापक नहीं मिलते और साथ ही आर्थिक असुविधा की समस्या भी सामने आकर खड़ी हो जाने का अनुभव होता हो, वहाँ बहू-बेटियों को शिक्षा देने की कल्पना ही व्यर्थ है। परन्तु, इस शिक्षा-प्रणाली को प्रचारित करते समय हमें यह आशा है कि हमारा यह ध्येय भी बहुत कुछ पूरा हो सकेगा। इस प्रणाली से घर में बैठे-बैठे हमारे प्रौढ़ छात्र स्त्री-शिक्षा का काम भी सफलता-पूर्वक कर सकेंगे। यदि वे अपनी ओर से अपनी बहिन-बेटी तथा स्त्रियों को पढ़ाने का प्रयत्न करें, तो प्रत्येक गाँव में ४ या ६ रामायण पढ़ने की

अच्छी योग्यता रखनेवाली स्त्रियाँ तैयार हो जायँगी। इस सरल शिक्षा-प्रणाली से प्रौढ़-किसान अपनी वहिन-वेटियों को आसानी के साथ पढ़ा सकेंगे, हमारा ऐसा विश्वास है। हम अपनी शिक्षा-प्रणाली के अनुसार उन्हें ऐसी छोटी-छोटी भजन की किताबें तथा कजरी आदि गीत देंगे जो ग्रामीण स्त्रियों को पढ़ने की ओर आकृष्ट कर सकेंगे। अध्यापकों को चाहिये कि वे अपने प्रौढ़ छात्रों को स्त्री-शिक्षा के लिये विशेष रूप से प्रोत्साहित करें। जो प्रौढ़ अपनी गृहिणी में रामायण पढ़ने की योग्यता पैदा कर दें, उसे यदि हो सके तो शिक्षाधिकारी ५) पारितोषिक देने का प्रबन्ध करें। पारितोषिक देने के पूर्व किसी योग्य अध्यापिका के द्वारा उसकी परीक्षा लेने का आयोजन भी किया जाय। इसमें दो बातें साध्य होंगी—प्रौढ़ छात्रों को पढ़ने में विशेष रुचि होगी और मकान के अन्दर, जहाँ हमारी पहुँच भी असम्भव है, शिक्षा का प्रकाश पहुँच जायगा।

पन्द्रहवाँ-अध्याय

साक्षरता—योजनाओं का तुलनात्मक विवेचन

[प्रथम खण्ड]

इस अध्याय में भारत भर में प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार करने के लिए जो योजनाएँ प्रचलित हैं, उनकी तुलनात्मक आलोचना का विचार किया है। आलोचना करने का विशेष हेतु यह है कि अध्यापकों तथा पाठकों को विदित हो जाय कि इस देश में प्रचुर जन-समूह की निरक्षरता तथा अज्ञान दूर करने के लिये कौन-कौन व्यक्ति किस प्रकार परिश्रम कर रहे हैं। हम इन प्रचारकों का संक्षिप्त परिचय देकर उनको प्रौढ़-शिक्षा-सम्बन्धी साहित्य और उनकी विचार-धारा की समालोचना करेंगे।

समालोचना करने का कार्य बड़ा ही कठिन है। हम इस अध्याय में उनकी साक्षरता-योजनाएँ जिन सनो वैज्ञानिक तत्त्वों पर निर्धारित हैं, केवल उन्हीं की समालोचना करेंगे, जिससे अध्यापकों तथा पाठकों के ध्यान में तुलनात्मक विशेषताएँ आजायँ। सारांश, हमारे समालोचना करने के निम्नलिखित कारण हैं:—

(१) अध्यापकों तथा पाठकों के लाभार्थ भारत के प्रचुर जन-समूह को साक्षरता-ज्ञान के लिये कौन-कौन व्यक्ति अहर्निश काम कर रहे हैं, उनका परिचय और उनकी विचार-धारणा का दिग्दर्शन कराना।

(२) रचनात्मक या तार्किक-शिक्षा-पद्धति तथा विश्लेषणात्मक या मनोवैज्ञानिक-शिक्षा-पद्धति इन दोनों पद्धतियों का तुलनात्मक विवेचन करना।

(३) साक्षरता-प्रसारार्थ जो योजनाएँ प्रचलित हैं उनका मनोविज्ञान-शास्त्र से वर्गीकरण करना तथा यह दिखलाना कि पठन-शैली में जो उत्तरोत्तर मनोवैज्ञानिक नवीन-नवीन आविष्कार हो रहे हैं, उनका इन शैलियों में कैसा उपयोग किया गया है।

(४) इन योजनाओं की महत्त्वपूर्ण बातें पाठकों के दृष्टिगोचर कराना तथा उनके बन्धन के परिणाम दिखाना।

इन योजनाओं की समालोचना करने में हमारा विचार कोई आक्षेप या अनुदारता प्रदर्शन करने का नहीं है।

समालोचना करने में हमारा और भी एक लक्ष्य है। वह यह है कि आज तक किसानों में साक्षरता-प्रसार में पर्याप्त मात्रा में धनव्यय हो चुका है, पर उसके देखते फल अत्यन्त अल्प मात्रा में देख पड़ा है। अब समय आगया है कि भारतवर्ष के पदाधिकारी तथा साक्षरता-प्रचारक प्रौढ़-शिक्षा-योजना प्रचलित करते समय उस योजना का सार्वांगिक विचार करके सुयोग्य योजना को सुचारु रूप से चलावें।

सार्वांगिक सुयोग्य योजना निर्धारित करते समय तथा उसका प्रचार करते समय विशेषकर किन अङ्गों पर ध्यान रखना चाहिये, पहले इसी का विचार करेंगे:—

(१) शिक्षा की व्याप्ति—भारतवर्ष में देहात के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन तथा रहन-सहन में जो परिवर्त्तन हो रहे हैं उनकी ओर देखते हुए और देहात की सर्वसाधारण जनता में आधुनिक ज्ञान का अंधकार फैला देखते हुए, क्या हमारा काम केवल साक्षरता से चलेगा, यही पहले देखना है। क्या सभी निरक्षर आदमी मूर्ख होते हैं? क्या केवल साक्षरता से हम उनको कार्य-कुशल और ज्ञानी बना सकेंगे "साक्षरता केवल साक्षरता के लिये" ऐसी घोषणाओं का रहस्य समझ में आना कठिन है। जिनका कहना यह है कि साक्षर होने के

पश्चात् देहात के मनुष्य ज्ञानार्जन के लिए किताबें पढ़ेंगे और सुयोग्य नागरिक बनेंगे, यह उनकी केवल काल्पनिक आशा ही रहेगी; क्योंकि अनुभव से पता चलता है कि साक्षर पुनःनिरक्षर हो जाते हैं।

डा० लबेक और महात्मा गान्धी में साक्षरता के सम्बन्ध में जो संलाप हुआ था, उसका सारांश पाठकों के लाभार्थ हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

डा० लबेक साहब ने साक्षरता-प्रसार का महत्त्व महात्मा गांधी को समझाने की चेष्टा की। उसके उत्तर में महात्माजी ने अपना निम्नलिखित मत "हरिजन" पत्र में प्रदर्शित किया था:—

"भारत में निरक्षरों को साक्षर बनाना, यही प्रधान समस्या नहीं है। आर्थिक समस्या अत्यावश्यक है। केवल साक्षरता से लाभ के बदले हानि भी हो सकती है। कभी-कभी साक्षरता से अश्लाघ्य वाङ्मय से भी परिचय हो सकता है और पाश्चात्य संस्कृति से सम्बन्ध जुड़ जाता है, जिसे हम अच्छा नहीं समझते। बहुत से मनुष्यों के यह विचार हो गये हैं कि पढ़ने की कला प्राप्त करने से विचार-शक्ति बढ़ती है, यह कल्पना भ्रमात्मक है। जगत् में ऐसे अनेक बड़े ज्ञानी हो गये हैं जो लिखना-पढ़ना जानते ही न थे।"

यह बात सत्य है कि अकबर और शिवाजी लगभग निरक्षर ही थे। महात्मा कबीर ने काग़ज़ क़लम और दवात को कभी हाथ से छुआ ही न था। ऐसे ज्ञानी, तत्त्ववेत्ता, योद्धा और राज-धुरन्धर भी संसार में हो गये हैं, जो निरक्षर थे। महात्मा जी के कथन का सारांश यही है कि यदि साक्षरता अच्छी हो तो किसी काम की तो हो (If literacy is good it must be good for some thing). साक्षरता से यदि सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक

लाभ हो सके तभी वह श्रेय है। महात्माजी के विचार से केवल साक्षरता-प्रदान की जो योजनाएँ प्रचलित की जाती हैं, वे सब त्याज्य तथा निरर्थक हैं।

(२) साक्षरता का प्रसार हमें प्रौढ़ किसानों में करना है। वे, वैसे ही अपनी उपजीविकार्थ जो दिनभर श्रम करते हैं, उसीसे थके-माँदे रहते हैं। शिक्षा-प्राप्ति के लिये बहुत हुआ तो कई महीने तक रात्रि के नित्य १॥—२ घंटे दे सकते हैं।

भारत में जातीय-निरक्षरता परम्परा से रहने के कारण वे साक्षरता के सम्बन्ध में वैसे ही निरुत्साही रहते हैं। आर्थिक कठिनाइयों से झगड़ते हुए हर समय चिन्ता-ग्रस्त तथा उदासीन रहनेवाले प्रौढ़ किसानों के लिये साक्षरता की योजना प्रचलित करना है। इन सब बातों का विचार करते हुए यह कहना आवश्यक होगा कि साक्षरता की शिक्षा-प्रणाली वही चल सकती है जो किसानों को ग्राह्य होगी अर्थात् उनकी मनोवृत्ति, उनके व्यवहार, रीति रिवाज इत्यादि के अनुकूल हो।

(३) यदि यह प्रमाण माना जाय कि केवल साक्षरता से हमारा काम न चलेगा, वरन् हमें ऐसी शिक्षा देनी पड़ेगी कि जिससे देहात के किसान अपने सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कार्यों में समर्थ हों तो उनके लिये पाठ्य-विधि तथा पाठ्य-पुस्तकें भी वैसी ही निर्धारित होनी चाहियें अर्थात् पाठ्य-पुस्तकों में किसानों के जीवन की बातों का ही समावेश होना चाहिये।

(४) चौथा महत्त्व-पूर्ण अङ्ग है साक्षरता की व्याख्या स्पष्ट-रूप से बनाना अर्थात् हम किसको साक्षर कहेंगे, यह निश्चय करना चाहिये। क्या जो केवल हस्ताक्षर कर सकता है वह साक्षर कहा जायगा? केवल अक्षर पढ़ सकता है पर लिख सकता नहीं, क्या वह भी साक्षर कहा जायगा? साक्षरों में कोई-कोई ऐसे भी

पाये जायँगे, जो भली-भाँति लिख-पढ़ सकते हैं और कोई-कोई साधारण पढ़े-लिखे इनमें से किसको साक्षर कहें, और किसको निरक्षर? अतएव यह निश्चय करना परम आवश्यक है कि साक्षर कहलाने के लिये कोई मर्यादा स्थिर की जाय, जिससे कम योग्यता रहने पर उसका समावेश भी निरक्षरों में किया जाय। साक्षर कौन और निरक्षर कौन? इसकी व्याख्या अनेक देशों के शिक्षा-विशारदों ने तथा मनुष्य-गणना करनेवालों ने की है। इन सब व्याख्याओं में भारतवर्ष को सरकारी मनुष्य-गणना करनेवालों की व्याख्या श्रेष्ठ समझी जाती है। वह इस प्रकार है:—

"जो व्यक्ति अपने मित्र को छोटा-सा पत्र लिख सकता है और उससे आया हुआ उत्तर पढ़ सकता है, वही साक्षर है।"

इस व्याख्या के ऊपर पत्र की भाषा के सम्बन्ध में कुछ आक्षेप भी हुए हैं। उपर्युक्त व्याख्या बनाने में कहीं यह नहीं कहा कि पत्र की भाषा साहित्यिक रहे, न यही कहा है कि पत्र की भाषा किताबी या व्याकरणानुसार शुद्ध रहे। यह परिभाषा बनाने में मन्तव्य यह है कि एक आदमी दूसरे आदमी को अपना विचार लिखकर भेज सके और उसी समाज के उतनी शैक्षणिक योग्यता रखनेवाले का उत्तर पढ़ सके, चाहे दोनों पत्रों की भाषा ग्राम्य रहे। भारत सरकार के जन-संख्या-गणकों की यह व्याख्या अत्यन्त सन्तोषजनक है; क्योंकि इससे कम मात्रा में साक्षरता रहने का कुछ मतलब ही नहीं है। मनुष्य जिस कला को अल्प रहने के कारण अपने काम में नहीं ला सकता, वह अल्प कला उसके पास रहे या न रहे, समान है।

उपर्युक्त जो व्याख्या हमने दी है वह इस विचार से दी है कि जिस योजना में केवल अक्षर पहचानने तक ही शिक्षा दी जाती है, वह भारतवर्ष की मनुष्य-गणना-नायक की की गई व्याख्या के अनुसार

व्यर्थ है। इतना ही नहीं, वह व्यावहारिक दृष्टि से भी त्याज्य समझी जानी चाहिये।

हमने अपनी आलोचना में जो स्कीमें दी हैं उनमें से बहुत-सी ऐसी हैं जिनमें साक्षरता की मर्यादा निश्चय नहीं की गई। उनमें शीघ्रता से कार्य पूर्ण करने के विचार से, प्रौढ़ों को अक्षर पहचानने की योग्यता आनें के पश्चात् ही छोड़ देते हैं।

(५) साक्षरता की व्याख्या बनाने के पश्चात् और भी कई प्रश्न उपस्थित होते हैं।

प्रश्न १—साक्षरता का ज्ञान हम कितने दिन के भीतर देंगे? यह बात असम्भव है कि देहात के प्रौढ़-किसान ३-३, ४-४ वर्ष तक शिक्षा-क्रम सँभालने के लिये तैयार होंगे। इसके साथ ही साथ यह भी अनुचित है कि ५-६ पाठ पढ़ाने के पश्चात् या ५-६ सप्ताह पढ़ाने के पश्चात्, जबकि सयानों में केवल अक्षर पहचानने की योग्यता आती है, उनको छोड़ दें, क्योंकि इस अवधि में पढ़ने की गति कम रहने के कारण उन्हें पठित विषय का अर्थ-बोध नहीं हो सकता और वह स्वीकृत की हुई साक्षरता की व्याख्या से कम रहती है।

प्रश्न २—आज तक के प्राइमरी स्कूलों में पढ़े हुए मनुष्य निरक्षरता में परिणत हो जाते हैं, यह दृश्य देख कर योजना में दी हुई साक्षरता स्थिर रखने का भी विचार रखना चाहिये। ५-६ पाठों या ५-६ सप्ताह में शीघ्रता से शिक्षा पाये हुए साक्षर ५-६ सप्ताह में ही निरक्षर बन जायँगे। इतना ही नहीं, ५-६ महीनों तक पढ़नेवालों को भी ६-७ महीने के पश्चात् निरक्षर होने का भय है। अतएव साक्षर बनने के पश्चात् उनकी साक्षरता स्थिर रखने का उत्तरदायित्व योजना पर है।

यह लक्ष्य साक्षरता-प्रचारकों के सामने स्पष्टता से न रहेगा, तो निश्चित है कि अन्त में साक्षरता-प्रचार में किया हुआ व्यय और शक्ति

निरर्थक हो जायगी। हमारी शिक्षा-प्रणाली में ६ महीने के पश्चात् प्रौढ़-पाठशाला, भजन-मण्डल या रामायण-क्लब में परिवर्त्तित होती है। और उस रूप में साक्षरता स्थिर रखने में, वह साक्षरता पाये हुए छात्रों की, स्थायी अध्यापक के नेतृत्व में या मानीटर के नेतृत्व में, सहायता करती है।

(६) शिक्षा-प्रसार की व्यवस्था—प्रौढ़-शिक्षा की योजना बनाने में और भी छोटे-छोटे अङ्गों पर विचार करने को आवश्यकता होती है। जैसे; अध्यापक का निर्वाचन। यदि साक्षरता प्रचार के लिये, कुछ काल के लिये, बाहरी आदमी, जैसे; डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का अध्यापक या नगर का मिडिल पास अध्यापक, केवल साक्षरता-प्रदान के लिये नियुक्त किया जायगा, तो यह भी बात सही है कि प्रौढ़-शिक्षा की अवधि समाप्त होने के साथ-साथ अर्थात् अध्यापक का वेतन बन्द होने के साथ-साथ प्रौढ़-पाठशाला तथा साक्षरता भी अपने आप समाप्त हो जायगी। प्रौढ़-साक्षरता की रक्षा के विचार से अध्यापक के निर्वाचन में गाँव के स्थायी निवासी को नियत करने की शर्त सब से श्रेयस्कर प्रतीत होगी; क्योंकि प्रौढ़-पाठशाला के आरम्भ से पहले वह किसी का नौकर नहीं था और न कहीं से वेतन पाता था; तैसे ही प्रौढ़-पाठशाला समाप्त होने पर भी वह गाँव छोड़कर न जायगा। इतना ही नहीं, वह अपना नेतृत्व स्थिर रखने के लिये, अपने पूर्वभूत छात्रों को पढ़ने तथा गाने-बजाने के लिये कम से कम सप्ताह में एक दिन तो शौक़ से बुलावेगा ही। और, वह अपने गाँव में चन्दा करके कम से कम किसी समाचार-पत्र को मँगाकर संसार की घटनाओं के सम्बन्ध में ज्ञान-प्रसार करेगा ही। उससे इतनी आशा रखना अव्यवहार्य नहीं है। अध्यापक के निर्वाचन के साथ दूसरा प्रश्न उसकी ट्रेनिंग का है। साधारणतः यह कल्पना फैली है कि प्रौढ़-पाठशाला में कुछ अक्षर-परिचय करा देना ही बस है। इस लक्ष्य से चाहे जो लिखा-पढ़ा

आदमी, अध्यापक का काम कर सकेगा और यही बात क़रीब-क़रीब सब प्रौढ़-पाठशालाओं में प्रचलित है। अध्यापक यदि मिडिल पास मिल गया तो सञ्चालकों को प्रसन्नता होती है। सत्य बात तो यह है कि प्रौढ़-पाठशालाओं में पढ़ाने के लिये अध्यापकों को प्रौढ़ों की मनो-धारणा तथा प्रौढ़-शिक्षा के ध्येय के सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान होना चाहिये। इसके अतिरिक्त **"अध्यापन एक कला तथा शास्त्र है।"** कला सम्भवतः अनुभव से अध्यापक प्राप्त कर सकता है, किन्तु शास्त्र के लिये उसे ट्रेनिङ्ग को आवश्यकता है। जिस योजना में प्रौढ़-पाठ-शाला के अध्यापकों की ट्रेनिङ्ग का विचार नहीं किया गया, वहाँ अवश्य मान लीजिये कि २० प्रति शतक, बहुत हुआ तो ३० प्रति शतक अध्यापक येन-केन प्रकारेण स्कूल का काम चला सकेंगे और ७० प्रति-शतक अपना उत्तरदायित्व ठिकाने से न समझेंगे और पाठशाला का कार्य चलाने में असमर्थ होंगे।

प्रश्न ३—पाठशाला के निरीक्षण के सम्वन्ध में है। यदि प्रवर्त्तकों की दृष्टि के सामने प्रौढ़-शिक्षा का ध्येय स्पष्ट न होगा और यदि प्रौढ़-पाठशालाओं का निरीक्षण बार-बार न होगा तो अध्यापकों में जल्दी ही शिथिलता आजायगी।

अन्त में, प्रौढ़-शिक्षा के लिये यदि हमें देहात में उसी ग्राम के निवासी कर्मचारी मिल सकते हैं, तो व्यावहारिक दृष्टि से प्रश्न उपस्थित होता है कि खेल-कूद और स्काउटिंग का पुनरुत्थान क्यों न करें? गाँव में अच्छे खेती के बीज, औज़ार और सिंचाई आदि खेती की उन्नति में हम अपने कर्मचारी की सहायता क्यों न लें? सारांश यह कि प्रौढ़-शिक्षा से आरम्भ करके ग्राम-सुधार की नींव ग्राम में क्यों न डालें? ग्राम-वासियों में सहकारिता बढ़ाकर गाँव का शासन चलाने के लिये तथा गाँव की समस्याएँ हल करने के लिये हम अपने अध्यापकों

का उपयोग क्यों न करें? एवं प्रौढ़-पाठशाला, ग्राम-सुधार तथा देहात के सम्बन्ध में राष्ट्र की भावी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए हम क्यों न प्रयत्न करें? जिस प्रौढ़-शिक्षा-योजना में केवल साक्षरता ही हो, वह चाहे कितनी ही अधिक मात्रा में दी जाय, केवल इतना ही लक्ष्य है तो, राष्ट्र के पुनर्निमाण के लिये अधूरी है।

साक्षरता-योजना के प्रवर्त्तक

प्रौढ़-शिक्षा तथा साक्षरता प्रसारार्थ भारतवर्ष में बहुत सी संस्थाएँ स्थापित हैं। इन संस्थाओं द्वारा बीच-बीच में कभी-कभी परिषदें भी बुलाई जाती हैं। हिन्दुस्थान की सरकार के शिक्षा-विभाग में एक "अडल्ट एज्यूकेशन कमेटी" भी नियुक्त है। इन संस्थाओं और कमेटियों का कार्य, सामान्य जनता में प्रौढ़-शिक्षा प्रसारार्थ, शिक्षित लोगों तथा प्रान्तीय सरकारों में अनुकूल मत-प्रचार करने का है।

इन संस्थाओं द्वारा कभी-कभी शिक्षित श्रोताओं के लाभार्थ व्याख्यान भी सुनाये जाते हैं, किन्तु प्रौढ़-शिक्षा तथा साक्षरता-प्रसारार्थ जिन व्यक्तियों ने जो योजनाएँ बनाई हैं और साहित्य निर्माण किया है, हम केवल उन्हीं का परिचय देने का आयोजन करते हैं।

भारतवर्ष में बहुत सी भाषाएँ तथा लिपियाँ जारी हैं। बहुत से मनुष्यों का मत है कि साक्षरता-प्रसार में और राष्ट्र के एकीकरण में विभिन्न लिपियाँ अड़चन डालनेवाली हैं। विशेषतः क्रिश्चियन पादरी अखिल भारत में फैले हुए अपने धर्मानुयायियों को धर्मग्रन्थ पढ़ने के लाभार्थ एक ही लिपि की आवश्यकता का अनुभव करते थे। इतने ही में सन् १९३५ में डा० लबेक साहब फ़िलीपाइनद्वीप-समूह से भारतवर्ष में प्रथम बार आये। उन्होंने रोमन लिपि द्वारा वहाँ की मोराव नामक जाति की निरक्षरता दूर की थी, अतः अपना अनुभव

मिशनरी तथा भारतीय नेताओं के सामने उपस्थित किया। मिशनरी लोगों को समस्त भारतवर्ष की एक ही लिपि रोमन हो जाय, यह विचार बहुत पसन्द आया, और भारतवर्ष के कई राष्ट्रीय नेताओं को भी, हिन्दी, उर्दू के नित्य के झगड़े मिटाने का एक अच्छा साधन जान, प्रसन्नता हुई। समस्त भारतवर्ष के लिये एक ही लिपि रहे, इसकी उचितता तथा उपयोगिता प्रकट हुई। किन्तु, सामान्य जनता तथा अधिकांश नेताओं को इससे उदासीनता रही। उड़ीसा प्रान्तीय सरकार के कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल ने तो अपने प्रान्त में शिक्षा-विभाग द्वारा रोमन लिपि जारी करने का विचार निश्चय कर लिया था, किन्तु महात्मा गांधी के 'हरिजन' पत्र में प्रकाशित लेख से उनको निराशा हुई। इधर बहुत काल से फ़ौज में हिन्दुस्थानी निरक्षरों को, रोमन लिपि में थोड़ा लिखना पढ़ना तथा हस्ताक्षर करना सिखाते हैं, परन्तु रोमन लिपि में कृषकों और साधारण जनता के पढ़ने के लिये किताबें नहीं बनीं।

पहले-पहल डा० एस० सी० वाउडन ने रोमन लिपि में तामिल भाषा सिखाने की पहली प्राइमर लिखी थी। डा० लूकस, मैनपुरी के डा० लारेन्स और मदुरा की श्रीमती ई० डबल्यू० वाइलडर कई वर्ष तक रोमन लिपि में किताबें लिखने का अविश्रान्त परिश्रम कर चुकी हैं। डा० वाउडन ने रोमन लिपि में एक अच्छी प्राइमर लिखी थी, पर सार्वजनिक निरुत्साह रहने के कारण नहीं चली। वर्तमान समय में तामिल भाषा और रोमन लिपि में श्रीमती ई० डबल्यू० वाइलडर की लिखी हुई केवल दो किताबें उपलब्ध हैं:—

(*a*) Rōman thamiɹ Mudhal Pusthaham.

(*b*) Roman thamiɹ mārku yeɹudhina suvisesham.

साक्षरता प्रसार में एक ही लिपि रहने से अधिक लाभ होगा। यह बात निस्संशय है कि एक लिपि रहने से एक राष्ट्रीयत्व का भाव

बढ़ेगा। अब यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वह लिपि कौनसी रहेगी ?

लिखने के अक्षर भारत की विभिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु सूक्ष्मता से देखने पर पता चलेगा कि भारत भर में केवल दो लिपि-पद्धतियाँ प्रचलित हैं—एक यूनानी अक्षरों से उत्पत्ति पाई हुई, अन्य अक्षरों से बनी हुई उर्दू-लिपि और दूसरी संस्कृत अक्षरों से स्वर-बद्ध बनी हुई वर्णमालाएँ। पहली पद्धति की वर्णमाला में ग्रीक भाषा के अलफ़ा, बीटा, गामा और डेल्टा इत्यादि अक्षरों से अर्थात् अलिफ़, बे से आरम्भ होता है। दूसरी पद्धति की वर्णमालाओं में अ इ उ आदि स्वरों से प्रारम्भ करने के पश्चात् कण्ठस्थ, तालव्य, मूर्द्धन्य, दन्त्य तथा औष्ठ्य इत्यादि व्यञ्जनों के अक्षर आने के पश्चात् और भी १०-१२ अक्षर आते हैं। इन सब भारतीय लिपियों में चाहे वह कन्नड रहे, चाहे तामिल, चाहे गुजराती रहे, चाहे बङ्गाली, वर्णमाला-पद्धति स्वर-बद्ध है। मात्रा लगाने और संयुक्त अक्षर मिलाने के नियम नियत हैं और वर्णमाला के अक्षर एक ही क्रम के हैं। केवल अन्तर है तो चिन्हों का। पाठकों के लाभार्थ हम यह भी विदित करना चाहते हैं कि सीलोन, बर्मा, और कोरिया की लिपियों में भी अक्षरों का क्रम और मात्राओं का प्रयोग संस्कृत के सदृश है।

एक लिपि स्थिर करने के सम्बन्ध में काका कालेलकर की अध्यक्षता में कांग्रेस ने एक कमेटी नियुक्त की थी। इस कमेटी के विचार में नागरी-लिपि ही भारतीय समस्त भाषाओं के लिये प्रचलित की जाना निश्चय हुआ। इस कार्य की पूर्ति के लिये उस कमेटी के हिन्दी-प्रचारक दक्षिण-भारत और आन्ध्र-प्रदेश में प्रचार कर रहे हैं।

इस स्थल पर प्रश्न है लिपि के निर्वाचन का। प्रत्येक लिपि में कुछ लाभ और कुछ त्रुटियाँ रहती हैं उनका दिग्दर्शन निम्नलिखित हैः—

(१) रोमन लिपि—इस लिपि को प्रचलित करने से ५-६ स्वर और १५-२० व्यञ्जनों से काम चलेगा। इस लिपि को जारी करने से दूसरा लाभ यह है कि मात्रा लगाने और संयुक्त अक्षर बनाने में अक्षर एक दूसरे से नहीं मिलते। व्यञ्जन के पश्चात् मात्रा व स्वर लगाने से काम चल जाता है तथा संयुक्त अक्षरों की आवाज़ में आनेवाले अक्षर पहले लिखे जाते हैं और उसके पश्चात् बोले जानेवाले उनके आगे लिखे जाने से ही संयुक्ताक्षर बन जाते हैं। अर्थात् मात्रा और संयुक्त अक्षरों के नियम सुगम होते हैं। अन्त में इस लिपि से टाइपिंग के आविष्कार में एक अक्षर का दूसरे अक्षर से मिलाप न होने के कारण बड़ी सुविधा होती है।

(२) उर्दू-लिपि—लिखने में इस लिपि में सुविधा है इसका कारण यह है कि यह लिखने की लिपि है।

(३) नागरी-लिपि—यह लिपि अत्यन्त स्वर-बद्ध है। स्वर-शास्त्र का अभ्यास करके और स्वरों का पृथक्करण करके बनी है। जगत् की कोई लिपि फोनेटिक (Phonetic) या स्वर-शास्त्र में इसका सामना नहीं कर सकती। इस लिपि से छात्र और विशेषतः प्रौढ़-छात्र सबसे जल्दी लिखना पढ़ना सीख जाते हैं। इस लिपि में छपी हुई किताबें पढ़ने में अक्षरों की सरलता रहने के कारण नेत्रों को कम थकावट होती है।

यह कहा जाता है कि राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक भावना से प्रेरित होकर भारतवासी अपनी लिपि छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं। हम ऊपर नागरी-लिपि के गौरव में कुछ कह भी चुके हैं, किन्तु इस गौरव और राष्ट्रीय सांस्कृतिक भावना के अतिरिक्त एक बड़ा भारी महत्त्वपूर्ण प्रश्न साहित्य का रहता है। वह यह कि तुलसीदासजी की चौपाई उर्दू या रोमन-लिपि में लिखने के पश्चात् बेढंगी जँचती है और लिखने में बहुत-सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। यदि फ़ारसी-कवि शेख़ शादी

का काव्य रोमन या नागरी-लिपि में लिखा जाय तो बड़ा बेढंगा लगेगा। अथवा शेक्सपीयर का नाटक उर्दू या हिन्दी-लिपि में लिखा जाय तो वह भी बेढंगा जँचेगा। सत्य बात तो यह है कि किसी भाषा की साहित्य-वृद्धि में उस भाषा की लिपि का नैसर्गिक प्रभाव होता है। शेक्सपीयर के नाटक रोमन-लिपि में ही लिखे गये हैं। किन्तु, रोमन-लिपि में स्पेलिंग की सरलता करने के विचार से उसमें सुधार करने की चेष्टा करें तो काव्य का रस लुप्त हो जाता है, यह बात प्रत्यक्ष है। यही कारण है कि इंगलिश भाषा में स्पेलिंग में सुधार करने की आज तक की सब चेष्टाएँ विफल हुई हैं। अन्त में अपनी आलोचना में हम इतना ही कहना चाहते हैं कि भारतवर्षीय भाषाओं के लिये रोमन-लिपि का लाना असम्भव है और न इसका प्रचार भविष्य में होगा। यह भी हम कहना चाहते हैं कि हिन्दी-साहित्य के लिये उर्दू न चलेगी और न उर्दू साहित्य के लिये हिन्दी। इससे काव्य और साहित्य दोनों का नाश होगा। यह आपत्ति तामिल, मलियालम, कन्नड, सिंघालीय तथा कोरिया की भाषा का साहित्य नागरी-लिपि में लिखने से न होगी; क्योंकि ये सब भाषाएँ एक ही स्वर-पद्धति की हैं, अन्तर केवल चिह्नों का है।

हस्ताक्षर आन्दोलन

साक्षरता-प्रसार के आन्दोलन के साथ संयुक्त प्रान्त में हस्ताक्षर करने की योग्यता (No Thumb Impression) नाम का आन्दोलन किया गया था। इसके जन्म-दाता हमारे प्रान्त के पूर्वभूत शिक्षा-मंत्री बाबू सम्पूर्णानन्द जी हैं। सम्भवतः इस आन्दोलन का साक्षरता-आन्दोलन से कुछ सम्बन्ध न होगा। किन्तु ये दोनों आन्दोलन साथ ही साथ होने के कारण जन-समाज में कुछ भ्रम उत्पन्न होने की सम्भावना है। केवल हस्ताक्षर भर करने की योग्यता देने से व्यक्ति तथा समाज को क्या लाभ होगा, यह समझना कठिन है। सम्भवतः इसके पीछे

कोई राजनीतिक कारण होगा। हमारा विश्वास है कि शैक्षणिक विचार से व्यक्ति और समाज का इससे कुछ भी लाभ नहीं हो सकता केवल हस्ताक्षर करने की योग्यता रखने से कभी-कभी उस व्यक्ति को हानि भी पहुँच सकती है। निरक्षर आदमी जहाँ अँगूठा लगाने के पीछे भी खुली कचहरी में हिम्मत से यह कह सकता था कि मैं लिखना-पढ़ना थोड़ा ही जानता हूँ वलात् मेरे अँगूठे का निशान लगवा लिया गया। वहाँ वकीलों के वाद-विवाद से पूर्ण साक्षरता का आक्षेप भी किया जा सकता है और रुक्के के ऊपर जाली हस्ताक्षर वना, निरक्षर होने पर भी उसको जाल में फँसाया जा सकता है कि इसने हस्ताक्षर जान बूझ कर ही किये हैं।

अन्त में हम अपने पाठकों से यही निवेदन करना चाहते हैं कि भारत के प्रचुर किसानों का निरक्षरता-निवारण का प्रश्न इतना सुगम और विना व्यय हल होनेवाला नहीं है, क्योंकि निरक्षरता-निवारण के सम्बन्ध में राष्ट्र इस समय जग गया है। अतः सम्भव है कि ऐसे वहुत से व्यक्ति उत्पन्न होंगे जो "येन केन प्रकारेण प्रसिद्धि पुरुषो लभेत्" न्याय से अपनी वुद्धिमत्ता का कौशल तथा काल्पनिक नवीनता के प्रदर्शन की चेष्टा करेंगे। किन्तु, इनमें शक्ति तथा अर्थ की हानि है। न तो दो चार पाठ में और न २-४ सप्ताह में प्रौढ़-कृषक स्थायी साक्षर वन सकते हैं और न 'Each one may teach one' अर्थात् 'हर एक आदमी एक आदमी को पढ़ाये' घोषणा करने से निरक्षरता दूर होनेवाली है। निरक्षरता निवारण के युद्ध में हमें धीरे-धीरे क़दम-क़दम और गम्भीरता से शिक्षा-शास्त्र तथा समाज-शास्त्र-सम्मत पद्धति के अनुसार ही चलना होगा।

सोलहवाँ अध्याय

साक्षरता-योजनाओं का तुलनात्मक विवेचन
(दूसरा खण्ड)

पढ़ना सिखाने के लिये केवल तीन प्रकार की शिक्षा-शैलियाँ हो सकती हैं। पहली—जिसमें अक्षर पहले पढ़ाये जाते हैं, इसके पश्चात् दो-दो, तीन-तीन अक्षरों के शब्द बनाकर पढ़ाये जाते हैं या कभी-कभी रटाये हुए दो-चार अक्षरों के शब्द तथा वाक्य बनाकर पढ़ने के लिये दिये जाते हैं। इस पद्धति में यही विचार किया जाता है कि अक्षर पहले पढ़ाये जायँ और अक्षरों के सम्बन्ध में धारणा दृढ़ होने के लिये उसके अर्थ-पूर्ण शब्द या वाक्य बनाकर दिये जायँ। अधिकतर पहले वर्णमाला के ४-५ अक्षर पढ़ाये जाते हैं और पढ़ने में जितने शब्द या वाक्य दिये जाते हैं वे सब इन्हीं अक्षरों को आगे-पीछे करके बनाये शब्दों के रहते हैं। यह शिक्षा-शैली रचनात्मक है, जिसमें परिचित अक्षरों को जोड़कर शब्द और वाक्य बनाये जाते हैं। इस शिक्षा-शैली को हम एक स्थल पर तार्किक पद्धति भी कह चुके हैं।

अक्षर-शैली से पढ़ाने की शिक्षा-पद्धतियाँ भारत में निम्नलिखित प्रचारकों की हैं, उनका साहित्य, उनकी शिक्षा-शैली तथा उनके कार्य का परिचय पाठकों के लाभार्थ नीचे देते हैं:—

(१) श्रीमती देवाश्याम—यह विदुषी तामिल भाषा के पहले दो-चार समान अक्षरों को श्यामपट पर लिखती हैं और उनसे छात्रों का नेत्र-परिचय करा देती हैं। जैसे; हिन्दी में ग, म, भ, झ अक्षर। ग से म बनाने में थोड़ी-सी ही रेखा बढ़ानी पड़ती है और इसी तरह थोड़े ही परिवर्त्तन में भ और झ बन जाते हैं। ऐसे ही समान अक्षरों से नेत्रों का परिचय करा देती हैं। इसके पश्चात् गम, गभ, गझ, मग, झग, भग आदि शब्दों की रचना बनवाकर पढ़वाती हैं।

(२) मिस्टर डानियल—आप मद्रास प्रदेश के शिक्षा-विभाग के डिपुटी डाइरेक्टर रह चुके हैं। आप अपने प्रयोग तंजौर में कर रहे हैं। वहाँ इन्होंने प्रौढ़ों के लिये रात्रि में ७ से ९ बजे तक क्लास चलाई, और दूसरी क्लास प्रौढ़-स्त्रियों के लिये दिन में २ बजे से ४ बजे तक, तथा तीसरी क्लास बच्चों के लिये प्रातः ९॥ से १२ बजे तक और २ से ४॥ बजे तक। आप का कहना है कि किशोरों को साक्षर बनाने के लिये २ वर्ष का कार्य-क्रम रखना चाहिये और प्रौढ़ों के लिये छः महीने का। आप अपनी शिक्षा-शैली को "लाइफ़ सेन्टर मैथड" (जीवन-केन्द्र-पद्धति) कहते हैं। आपकी शिक्षा-शैली वाई० एम० सी० ए० के० मार्तण्डम् केन्द्र में तथा कोयमबिटूर केन्द्र में जारी है। आपने निम्न लिखित पुस्तकें लिखी हैं:—

(*a*) First Steps in Tamil.

(*b*) A way of combating illiteracy.

(Tanjore Experiments)

शिक्षा-शैली– आप अक्षरों की पहचान कराते समय ऐसी ही वस्तु देखते हैं, जिनकी रूप-रेखा वा आकृति अक्षर से मिलती है। जैसे; तामिल में मक्खी को इ नाम से सम्बोधित करते हैं और इ अक्षर की आकृति भी मक्खी के आकार की है अर्थात /°।° बीच में एक टेढ़ी रेखा, उसके दोनों ओर दो नेत्र, सामने रस चखने के लिये सूँड और ऊपरी रेखा से शरीर प्रकट होता है। पहले मक्खी का वर्णन करना, जिससे उसके शरीर की आकृति समझ में आ जाय और अन्त में कहे कि बस यही 'इ' अक्षर है।

इसी तरह तामिल के अक्षरों से परिचय कराया जाता है और रचनात्मक पद्धति से अक्षरों से शब्द और शब्दों के पश्चात् वाक्य बना कर पढ़ने के लिये दिये जाते हैं। डा० डानियल साहब ने अपनी अक्षर-पद्धति समझाने के लिये मैजिक-लैण्टर्न के स्लाइड्स बनाये हैं, जिससे अक्षरों की आकृति शीघ्रता से समझ में आजाय तथा एक साथ ही बहुत से आदमी पढ़ें और इस प्रकार अक्षर-शैली अधिक लोक-प्रिय

हो। यह शिक्षा-शैली पाठकों की समझ में आई होगी, यह उसी तत्त्व पर निर्धारित है, जिसको मनोविज्ञान-शास्त्र में Association Ideas अर्थात् साहचर्य भाव अथवा दो कल्पनाओं की सन्धि कहते हैं।

(३) बाबू संगमलाल अग्रवाल का परिचय—आप इलाहाबाद के नामाङ्कित वकील हैं। प्रयाग-महिलापीठ के वाइस-चान्सलर हैं। कभी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और कभी म्युनिसिपैलिटी के सदस्य भी रह चुके हैं। आपने "स्कीम आफ़ अडल्ट लिटरेसी" या "लिटरेसी इन सिक्स वीक्स" नाम की योजना सन् १९३७ में प्रकट की।

कार्यक्षेत्र—इलाहाबाद के सिरसा नाम के गाँव में आपकी पद्धति के कुछ प्रयोग किये गये और मिर्जापुर, सुल्तानपुर, फ़तहपुर तथा इलाहाबाद के ग्राम-सुधार विभाग की सहायता से उक्त जिलों में प्रयोग किये गये।

शिक्षा-शैली—आप अपनी शिक्षा-शैली को कहानी-पद्धति (Story method) अर्थात् कहानी द्वारा पढ़ाने की शैली कहते हैं। किन्तु, शिक्षा-शास्त्र से इसको अक्षर-पद्धति ही कहना पड़ेगा; क्योंकि अ से ह अक्षर तक, अक्षरों की पहचान करने के लिये एक-एक अक्षर के पीछे एक-एक कहानी बनाई गई है, जिसकी सहायता से अक्षर की पहचान छात्र को होगी। कहानी का लक्ष्य अक्षर-परिचय है। अतः आप की शैली को भी अक्षर-शैली ही कहना पड़ेगा। बाबू साहब का कहना है कि कहानी के साथ अक्षर का परिचय करने से अक्षर की आकृति की पहचान ठीक रहती है।

आपकी 'अ' पढ़ाने की कहानी इस प्रकार है:—एक गाँव में अघोरी बाबा नाम के साधू रहते थे। उन्होंने अपने मनोरञ्जन के लिये एक बन्दर रखा हुआ था। बाबा जब भिक्षा माँगने जाते थे तब बन्दर को जंजीर में बाँध जाते थे। बाबाजी ने आँगन में एक खम्भा गाड़ दिया था और उसमें ऊपर एक खूँटी भी लगा दी थी

कि जिसके ऊपर वन्दर वैठ सके। वन्दर जव खूँटी पर वैठता था तव उसका सिर ऊपर और दुम नीचे लटकती थी। इस बन्दर का नाम अकाशी बन्दर रखा था। अ की आकृति अकाशी वन्दर के वैठने के समान है।

जैसे;
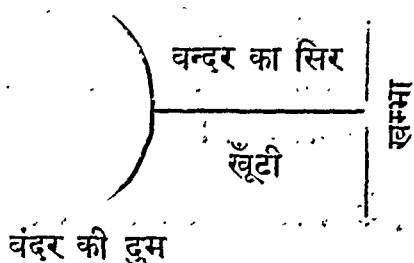
इस प्रकार ४०-४५ कहानियाँ बनाई गई हैं। वे अधिकतर अकाशी बन्दर की लीला के सम्बन्ध में हैं। इन कहानियों में से बहुत-सी मनोरंजक हैं, किन्तु कुछ विचित्र हैं। अनुभव से पता चलता है कि प्रौढ़-कक्षा के छात्र अध्यापक के अकाशी बंदर का नाम उच्चारण करते ही जोर से हँस देते हैं। आज तक ६ सप्ताह में आप के बनाये प्रयोगों से कोई साक्षर हो सका नहीं और न कहीं उनके प्रयोगों से सफलता मिली है।

उपर्युक्त उदाहरण ३ शिक्षा-शैलियों के दिये हैं। अन्य सव पाठशालाओं में अक्षर रटाने की और चित्रों के साथ अक्षर पढ़ाये जाने की पद्धति जारी है। यह सव अक्षर-शैलियों द्वारा पढ़ाने का ढंग रचनात्मक है, जिसका खण्डन, हम मनोवैज्ञानिक तत्त्वों के वर्णन में कर चुके हैं। पाठकों के स्मरणार्थ यहाँ उनकी संक्षिप्त सूची देते हैं।

(१) यह पद्धति अत्यन्त क्लिष्ट और अरुचि उत्पन्न करनेवाली तथा भाव रहित है।

(२) यह पद्धति अकेले अक्षरों में कुछ अर्थ हीन रहने के कारण मस्तिष्क में थकावट तथा बुद्धिमान्द्य उत्पन्न करनेवाली है।

(३) जिस अक्षर-शैली में अक्षर-पहचान के लिए उसके साथ चित्र, कहानी अथवा अन्य प्रकार से रुचि-उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है, वहाँ अध्यापक अपने और छात्रों के लिए एक नई विपत्ति उत्पन्न कर लेते हैं। वह यह कि पहले तो अक्षरों का चित्र तथा कहानी से दृढ़ सम्बन्ध कर देते हैं और फिर उस सम्बन्ध को तोड़ने की चेष्टा करते हैं।

(४) जिन अध्यापकों का कथन है कि हमने अक्षर-शैली से छात्रों को पढ़ाया, उनका यह कथन सर्वथा तथ्य-हीन है। यदि तीन-तीन, चार-चार महीने अक्षर रटाने के पश्चात् भी पाठशालाओं के बालक अक्षरों के नीचे उँगली रखते हुए अक्षर नहीं पहचान सकते, तब तो स्पष्ट ही है कि उनके अक्षर-पढ़ाने का परिश्रम व्यर्थ गया।

(५) अक्षर-शैली से पढ़ाने से अर्थात् पहले अक्षर पढ़ाना, पश्चात् शब्द पढ़ाना और अंत में वाक्य पढ़ाना आरम्भ करना। इस प्रथा से पठन-क्रिया की प्रगति में बहुत से पठार होते हैं अर्थात् निम्नश्रेणी की टेवें छात्रों में पड़ जाती हैं। फिर उनके छुड़ाने में छात्र को मानसिक तथा शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता है।

(६) पठन-क्रिया में किसी लिपि के दो-चार अक्षर कम रहें या अधिक रहें, उनकी लिखने की क्रिया चाहे जैसी रहे, वे पठन-शैली में बाधा नहीं डालते; क्योंकि पठन-क्रिया में नेत्र, शब्दों के तथा शब्द-वाक्यांश की प्रतिभा के आधार पर पढ़ते हुए बढ़ते हैं। आज तक के प्रयोगशाला में किये हुए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि लिखने में तथा पढ़ने में स्पेलिंग या हिज्जे का बेढंगापन रहने के कारण अड़चन नहीं पड़ती; क्योंकि शब्द से या उस अक्षर-समूह से नेत्र का बार-बार देखते रहने से इतना परिचय हो जाता है कि वह झट से पहचान लेते हैं। और, लिखने का ढर्रा बनने के कारण लिखने में भी अड़चन नहीं पड़ती। स्पेलिंग में सुगमता लाने के प्रयत्नों की ओर तथा लिपि को सुगम बनाने के प्रयत्नों की ओर साधारण और सुशिक्षित जनता की

उदासीनता है। इसका मुख्य कारण यह है कि पढ़ने-लिखने में अड़चन आती ही नहीं; या मनोविज्ञान-शास्त्र की भाषा में कहें तो पठन-क्रिया में अक्षर आते ही नहीं।

शब्द-शैली से पढ़ाना—छात्रों को साक्षर बनाने के लिये शैली बनाना भाषा की लिपि के ऊपर अधिक निर्भर रहता है। जिन लिपियों में स्पेलिंग या हिज्जे का प्रयोग रहता है, उन भाषाओं में पहले शब्दों से परिचय देकर साक्षर बनाने की पद्धति अक्षर-शैली से अच्छी है। भाषा के अत्यन्त साधारण तथा सरल ८–१० शब्दों से Flash card अर्थात् दृष्टि-कार्ड द्वारा परिचय देने के पश्चात् उन्हीं शब्दों से अर्थबोधक वाक्य बनाये जाते हैं। और, ऐसे ही वाक्यों से पहले-पहल पाठ बनाये जाते हैं। जैसे; घोड़ा, काला, सफ़ेद, खड़ा, बैठा, यह, है। इतने ही शब्दों से परिचय देने के पश्चात् निम्न प्रकार के वाक्य पाठ में दिये जा सकते हैं:—

(१) यह घोड़ा है (२) यह घोड़ा काला है (३) यह काला घोड़ा है (४) यह घोड़ा सफ़ेद है (५) यह सफ़ेद घोड़ा है (६) यह घोड़ा बैठा है (७) यह घोड़ा खड़ा है, इत्यादि।

किन्तु जिन भाषाओं की लिपि फ़ोनेटिक (Phonetic) या स्वर-बद्ध है उन लिपियों की भाषाओं में शब्द-पद्धति प्रचलित करने में विशेष लाभ नहीं है। इस पद्धति से मिलती-जुलती पद्धति मैनपुरी के रेवरैण्ड जे० एच० लारेन्स साहब ने जारी की है। वे अपनी पद्धति को सिलेबल मैथड अर्थात् शब्दों से पढ़ाना कहते हैं। किन्तु, उनकी शैली को शब्द शैली कहना यथार्थ नहीं है। लारेन्स साहब अपनी "आसान प्राइमर" नामक पुस्तक की भूमिका में कहते हैं (नीचे उनकी अँगरेजी भूमिका के कुछ अंशों का अनुवाद दिया जाता है): –

"यह किताब छात्रों को पहले अर्थ के साथ शब्द पढ़ाने को बनाई है। पहला पृष्ठ बहुत सुगमता से पढ़वाया जा सकता है। ध्यान इस ओर रहे कि शब्दों का अर्थ छात्र ग्रहण कर रहे हैं।

"किताब सिलेबल या स्वर-शैली से है न कि अक्षरशैली से पढ़ाना है। पढ़ाने में कठिन शब्द वही हैं जो तीन अक्षरों से बनते हैं। जैसे; 'लाल' (ल्+आ+ल)।

"इस किताब में पढ़ाने की शैली यह है कि शब्द ल+आ+ल ऐसी स्पष्ट ध्वनि हो। यह सुचारु रूप से जबान से ही हो सकता है। जब हम उस ध्वनि के मेल के दूसरे शब्द लेते हैं। जैसे ब+आ+ल, क+आ+न। ऐसा करने से स्वर व्यञ्जन से अलग होता है। इस क्रिया में बहुत अभ्यास करने की आवश्यकता है। इस ढंग से स्वर पढ़ाने के लिये आक, आम, आन इत्यादि समझाये जा सकते हैं। यह ध्वनि दो अक्षरों के शब्दों के साथ पढ़ाये जाते हैं। जैसे कोस, नेक, काम। 'अ' ध्वनि पढ़ाने में कुछ कष्ट अवश्य होगा। हम सूचित करना चाहते हैं कि जिस व्यञ्जन में 'अ' छिपा हुआ रहता है उसके नीचे अ लिखदो। जैसे मत में इस तरह म+अ+त।

"अध्यापक को चाहिये कि इस पुस्तक के अतिरिक्त स्लेट, श्यामपट तथा दृष्टि-कार्ड का भी उपयोग करे। पहले ४ पाठ में आनेवाले सभी शब्दों तथा ध्वनियों के कार्ड बनाले। पढ़ाने में ६-७ ध्वनि-कार्ड धरती पर बिछाकर छात्र को 'माला' शब्द निकालने के लिये कह देवे। इसके पश्चात् ध्वनि-कार्डों की सहायता से लला, माला, लाता बनाओ। इसके पश्चात् माला की जगह तोता बनाओ। फिर लला को नाना तथा लाला बनाओ। एक शब्द एक बार ही बदल सकता है।

"यदि कार्य ठीक से किया जाय तो सफलता मिलेगी। पढ़ाने की शैली सतत यही रहे। यदि इस ध्वनि पद्धति से विधिवत् पढ़ाया जायगा तो पठन की नींव दृढ़ होगी, और छात्र अपने बल पर पढ़ना सीख जायगा।"

हम यहाँ केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि निःसन्देह यह शब्द-शैली नहीं है। और लारेन्स साहब जिस शैली का प्रचार करना

चाहते हैं, वह शैली जिन लिपियों में स्पेलिंग का बहुत झंझट रहता है उनमें ही सफल हो सकती है। जैसे; cat, mat, hat, pat, catch, that में जहाँ 'ए' की ध्वनि छात्रों को समझाने की आवश्यकता पड़ती है। 'मत' शब्द में म और त दोनों अक्षरों में 'अ' अवश्य छिपा है, किन्तु इसका भेद वैयाकरणों के लिये है। आवश्यकता हो तो छात्रों को २-४ वर्ष के पश्चात् पढ़ाया जाय। किन्तु साक्षरता का प्रारम्भ करते समय स्वर तथा व्यञ्जन की ध्वनियों का वर्गीकरण करना पठन-क्रिया में और भी कठिनाई उपस्थित करना है। पाठकों के लाभार्थ उनकी "आसान प्राइमर" का प्रथम पाठ हम यहाँ देते हैं।

मा लला माला है लाला है माल है मैला है

लाला लाल माला ला

इस पाठ से पाठकों को पता चलेगा कि इस पाठ में विशेषतया म, ल और ह इन तीन अक्षरों का परिचय करा देना है अर्थात् इन तीन अक्षरों के खेल से पाठ बना है। यह शिक्षा-शैली अक्षर-शैली से अधिक अर्थ-पूर्ण रहने के कारण अच्छी है। किन्तु, तीसरे पाठ से रचनात्मक या तार्किक पद्धति प्रारम्भ होती है, जहाँ तीन-चार अक्षर घुम-घुमाकर शब्द या वाक्य बनाये जाते हैं। इससे छात्र के मन में थकावट तथा नीरसता उत्पन्न होती है।

मा—ता	तो—ला	आ—ता	ओ—ला
मल	माल	मोल	मैल
ओ,	लला,	तोता	आता है
अम्मा,	लाला,	ताला	लाता है
माता,	लाल,	आम	मोल लो

हम ऊपर लिख चुके हैं कि यह पढ़ाने की शैली शब्द-शैली नहीं है। और शब्द-शैली की और भी कोई किताब हमारे देखने में नहीं आई।

परिचय—रेवरैण्ड जे. एच. लॉरेन्स मैनपुरी के मिशन में काम करते हैं। आप बहुत समय से साक्षरता-प्रसार के लिये अहर्निश काम कर रहे हैं। मैनपुरी में आप का अध्यापकों के लिये ट्रेनिङ्ग-क्लास भी है। आप की शिक्षा-पद्धति विशेषतः बालकों के लिये है। इसका उपयोग प्रौढ़ों को साक्षर बनाने में भी किया जाता है।

साहित्य—बालकों के पढ़ने के लिये आप की बनाई निम्नलिखित पुस्तकें हैं:—

(१) आसान प्राइमर, (२) आसान बयान, (३) देहाती बयान, (४) छोटी कहानियाँ, (५) राम लाल, (६) भला चङ्गा रहना, (७) सच्ची कहानियाँ, (८) जीवदान बहादुर (ओल्ड टैस्टामेन्ट की कहानियाँ), (९) इमानदार गवाह (१०) कृपाल के सवाल, (११) दुःखी दुलारी, (१२) धर्म में रहम, (१३) ख़ुश राग (गीत), (१४) हिसाब की पहली किताब रोमन अङ्कों में।

यह सब किताबें "नौर्थ इण्डिया ट्रैक्ट सोसाइटी, इलाहाबाद" से मिल सकती हैं।

वाक्य-पद्धति से पढ़ाने की शैली

अक्षर-ध्वनि अथवा शब्द-पद्धति से पढ़ाने की शैलियों के पश्चात् वाक्यों से पढ़ाने की शैली मनोविज्ञान-शास्त्र से अधिक सम्मत है। पाठकों को यह विदित है कि शिक्षा-शैलियों का क्रमशः श्रेय, श्रेयतर और श्रेयतम वर्गीकरण निम्नलिखित दो बातों पर निर्भर रहता है।

(१) पाठ में कितना अर्थ है और कितनी मनोरञ्जकता आई है।

(२) प्रथम से ही पढ़ने की शैली का दिग्दर्शन तथा अनुकरण किया जाता है या नहीं। जिस शैली में इसका अनुकरण अधिक होता है वही शैली अधिक अच्छी समझी जायगी।

लड़के अङ्गरेजी वर्णमाला के २८ अक्षर पढ़ने के पश्चात् एक महीने के भीतर ही अपने मित्रों को रोमन-लिपि और अपनी भाषा में पत्र लिख लेते हैं और सबका नाम लिख सकते हैं। उतना ही मोरो सीख जाते थे। जिनकी भाषा में शब्द-कोश कम है, जहाँ लिखित साहित्य नहीं, उनको आदमियों के नाम और २-४ सौ शब्द लिखना पढ़ना सिखाना कुछ कठिन नहीं है। ऐसी लिखने-पढ़ने की कला हिन्दुस्तानी फ़ौज के सिपाहियों को सिखा दी जाती है। "मैं घर जाता हूँ" यह इस ढङ्ग से "men ghar jata hun" लिखना है। सबसे कठिन बात तो यह है कि जिस भाषा में साहित्य है, उस भाषा में उसके साहित्य को पढ़ने की कला देना, क्योंकि प्रत्येक भाषा में बोलने-चालने, बात चीत करने और किताबों की भाषा पृथक्-पृथक् होती है, उच्चारण और अक्षरों पर बल देकर बोलना और लिपि इनका मेल भी पूरा तार्किक नहीं रहता।

डाक्टर लबेक की स्कीम के निम्नलिखित ६ विशिष्ट अङ्ग हैं :—

(१) अक्षरों को शब्द तथा चित्र द्वारा स्वर-बद्ध-पद्धति (Phonetic method) से पढ़ाइये।

(२) छात्रों में अक्षर-ज्ञान उनकी रुचि के गाने पढ़वाकर पक्का करने की चेष्टा कीजिये।

(३) छात्रों को स्वयं पढ़ने के लिये सुयोग्य साहित्य देकर पढ़ने की रुचि तथा टेव बढ़ाइये।

(४) प्रत्येक छात्र भविष्य में अध्यापक बन जाय।

(५) प्रत्येक छात्र को अलग-अलग पढ़ाइये।

(६) डाक्टर लबेक अपनी शिक्षा-शैली को Project method अर्थात् संकल्प-शैली कहते हैं।

इस स्थल पर उनकी योजना के विशेष अङ्गों की आलोचना करना उचित प्रतीत होता है।

नम्बर १-२-३ अक्षरों को अर्थ-बोध शब्दों में लाकर या स्वर-बद्ध-पद्धति से पढ़ाना आरम्भ करना, इसके पश्चात् उनकी भाषा में छोटे-छोटे गीतों में अक्षर-पहचान का अभ्यास कराना और अन्त में अपनी हिम्मत पर उनके पढ़ने को उपयुक्त किताबें देना। इन बातों से शिक्षा-विशारदों का मत-भेद कम होगा। किन्तु, विशिष्टाङ्ग ४, ५, ६, ऐसे हैं कि शिक्षा-विशारद इनको भ्रम-मूलक ही समझेंगे।

विशिष्टाङ्ग ४—प्रत्येक छात्र भविष्य में अध्यापक बन जाय-भविष्य में अध्यापक बनें, यह क्या बात है? इसके समझने की पाठकों को अवश्य जिज्ञासा होगी। डाक्टर लबेक की पद्धति के द्वारा प्रौढ़ों के लिये 'हिन्दी प्रवेशिका' के लेखक श्री टी० एन० हिल अपनी पुस्तक के अन्त में लिखते हैं:—

पाठक के लिये सूचना

जब विद्यार्थी इस पुस्तक को पढ़ चुके तब अवश्य पहिले पृष्ठ के प्रण का दस्तखत कराइये। परन्तु नया विद्यार्थी दूसरा या तीसरा पाठ पढ़कर किसी अपढ़ सियाने को पढ़ाना आरम्भ कर सकता है।

इस योजना के अनुसार 'प्रण' नीचे लिखे ढङ्ग से लिया जाता है।

नाम···

प्रण

मैंने पढ़ना सीख लिया। अब मैं किसी दूसरे को पढ़ाऊँगा।

द०·····························

ता०·····························

श्रीयुत शङ्कर रामचन्द्र भागवत पूना, जिन्होंने डाक्टर फ्रांक

लबेक की पद्धति के अनुसार मराठी भाषा में पहली पुस्तक लिखी है, निम्नलिखित ढङ्ग से लेते हैं:—

मी कोणास शिकविले

१—
२—
३—
४—
५—
६—

सही...............

डा० लबेक साहब मोरी नाम की जाति में, रोमन-लिपि में साक्षरता का प्रचार करने के अनुभव के सम्बन्ध में कहते हैं कि "मैं एक पाठ एक आदमी को पढ़ाता था। वह सहर्ष ५ आदमियों को पढ़ाता था और वे ५ आदमी प्रत्येक ५-५ आदमी को पढ़ाते थे अर्थात् वहाँ साक्षरता ज्यामिति-प्रगति (Geometrical Progression) से बढ़ी।" कम से कम उनका कथन है कि दो-चार पाठ में या ५-६ सप्ताह में साक्षरता पाया हुआ दूसरे को पढ़ाये। इस प्रकार साक्षरता का प्रसार अंकगणित-प्रगति (Arithmetical Progression) से होगा और राष्ट्र की निरक्षरता दूर हो जायगी। आजकल के निर्घोष (नारे) (Each one teach one) अर्थात् हर एक आदमी एक आदमी को पढ़ावे, पाठकों ने सुने होंगे। इस अंग के सम्बन्ध में शिक्षा-शास्त्रानुसार इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारे विचार से ४-५ पाठ या ४-५ सप्ताह के भीतर जो साक्षरता पाता है, वह साक्षर ही नहीं है। और, जब इतनी छोटी साक्षरता की पूँजी के बल पर अध्यापक बनकर दूसरे आदमी को साक्षर बनाने की चेष्टा करता है, तब यह दृश्य देखकर हँसी आती है और कहना पड़ता है कि यह साक्षरता का अच्छा उपहास हो रहा है। इसके अतिरिक्त केवल सेवा के भाव से एक पठित कम से कम एक आदमी को या ५-६ आदमी को पढ़ावे,

सामाजिक दृष्टि से अव्यवहार्य है। युक्त-प्रान्त में १५ जनवरी, १९३९, को यह घोषणा बड़ी धूमधाम से हुई। अनुभव से पता चलता है कि यह कार्य-क्रम भी अव्यवहार्य है।

विशिष्टांग नं० ५—प्रत्येक छात्र को अलग-अलग पढ़ाइये।

डा० लबेक की योजना का यह सिद्धान्त भी अव्यवहार्य है। भारतवर्ष में लगभग ९० प्रतिशतक को साक्षर बनाना है। और उनमें से मनुष्य-गणना के विचार से ३५ करोड़ में से ४० प्रतिशतक प्रौढ़ों को अर्थात् १४ करोड़ प्रौढ़ व्यक्तियों को साक्षर बनाने के लिये यह योजना कहाँ तक काम में आयेगी ? इस स्थल पर डा० एडवर्ड थौर्न डाइक की सम्मति जिन्होंने डा० लबेक साहब के विशेष अनुरोध से उनकी "Toward a Literate World" नामक पुस्तक की जो प्रस्तावना* लिखी है, उसमें श्रीमान् डा० साहब लिखते हैं, "डा० लबेक साहब की योजना न प्रयोग-शाला की है, न गहरे विचार की है। आपकी योजना रणक्षेत्र और बाज़ार के लिये है और इस योजना के सम्बन्ध में बहुत से आक्षेप होंगे। उदाहरणार्थ श्रेणी में पढ़ाने की अपेक्षा एक-एक आदमी को पढ़ाना, एक-एक अक्षर या अक्षर-समुच्चय ध्वनि मिलाकर पढ़ाना और अन्य शैक्षणिक कार्यों की पूरी उपेक्षा करना इत्यादि आक्षेप के योग्य बातें हैं। सम्भव है कि डा० लबेक और उनके सहयोगी जिनके लिये योजना बना रहे हैं, उनके देश, काल और सभ्यता के अनुकूल हो।"

---

*"His planning is of the battlefield and market-place rather than the study and laboratory, and is open to question in certain particulars; for example in using tutorial teaching to the almost complete exclusion of class teaching, and in connecting letters and letter-combinations primarily with sounds, leaving real objects and acts to play subordinate parts."

नं० ६—डा० लबेक कहते हैं कि उनकी योजना डा० ड्यूई की संकल्प-योजना के आधार पर है। इस स्थल पर डा० ड्यूई की संकल्प-योजना का विवरण संकोच-वश हम देने में असमर्थ हैं। किन्तु, इतना ही कहना चाहते हैं कि आज तक जितनी भी शिक्षा-शैलियाँ निकली हैं तथा आज तक शिक्षा-शास्त्र पर जितनी तात्त्विक मीमांसा प्रकट हुई हैं, उन सब मीमांसाओं का "संकल्प-योजना" एक नवनीत है। संकल्प-योजना में छात्र ही अपने कार्य का संकल्प बनाले, संकल्प के सम्बन्ध में जो काम करना है, उसके विषय में अध्यापक की सहायता से अपनी धारणा निश्चय करले। संकल्प-पूर्त्ति के लिये उपकरणों को स्वयं इकट्ठा करे। उस सम्बन्धित ज्ञान की जानकारी की स्वयं चेष्टा करे, और अपनी हिम्मत पर संकल्प पूरा करे। अन्त में संकल्प-सिद्धि के सम्बन्ध में आप ही निर्णय कर ले। ये संकल्प-योजना के 'क़दम' हैं। डा० ड्यूई की संकल्प-योजना के क़दम डा० हरवर्ड के Five Steps in Teaching अर्थात् अध्यापन में पाँच क़दम साधारण प्रतिज्ञा, मुख्य प्रतिज्ञा, बनावट, उपपत्ति, फल, इन क़दमों के विपरीत हैं। हम इस स्थल पर यही कहना चाहते हैं कि आपकी योजना संकल्प-योजना के सिद्धान्तों पर निर्धारित नहीं है।

वाक्य-पद्धति

अध्यापकों तथा वाचकों के लाभार्थ वाक्य-पद्धति से पढ़ाने की शैली के आदर्श-पाठ देकर उनके आधार पर हम शैक्षणिक समालोचना करेंगे। हम ऊपर कह चुके हैं कि अक्षर-शैली से तथा शब्द-शैली से वाक्य-शैली अधिक सार्थक रहने के कारण, इन दोनों शैलियों से उच्च कक्षा की समझी जाती हैं परन्तु, वाक्य-पद्धति में भी कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं, जिनकी ओर हम उनके आदर्श-पाठ दिखाने के पश्चात् पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे।

डा० लबेक साहब की योजना के अनुसार इलाहाबाद के श्री० ए० लल्लाराम द्वारा प्रकाशित सयानों के लिये "हिन्दी सरल पुस्तक" के पाठ २ के केवल दो खण्ड यहाँ उद्धृत करते हैं:—

वकील बैल देख वा	तरवार टमाटर पर वा
बैल चाँद देख वा	जाल टमाटर पर वा
कौवा चाँद देख वा	उल्लू जाल पर वा

उपर्युक्त वाक्य-प्रयोग कृत्रिम तथा हास्यास्पद हैं। प्रथम तो बैल की दृष्टि कभी चाँद की ओर जाती ही नहीं। और यदि उक्त महाशय के लेखानुसार वे चाँद की ओर देखना आरम्भ करेंगे तो फिर उनको हल में जोतना भी कठिन हो जायगा और यदि कौवे भी चाँद के ऊपर अनुराग करने लगेंगे तो रात्रि में उनकी काँव-काँव से शिक्षा-विशारदों को दिन भर के महान् परिश्रम के पश्चात् विश्राम लेना भी असम्भव हो जायगा। इसी तरह 'तरवार टमाटर पर वा' इत्यादि...

इस स्थल पर देखना यह है कि ऐसे हास्यास्पद वाक्य-प्रयोग क्यों होते हैं। यदि पाठ का निर्माण करनेवाला सुगम पाठ बनाता तो वह बड़ी प्रसन्नता से ग्राह्य होते। पर उसके सामने समस्या यह थी कि दो-चार अक्षरों के भीतर ही घूम-घुमाकर शब्द बनाना और शब्दों से वाक्य बनाना। सारांश, उसने अपनी वाक्य-रचना में अक्षरों का क्षेत्र स्वयं संकुचित कर लिया। इसी का परिणाम है कि ऐसे हास्यास्पद वाक्य-प्रयोग हुए। अक्षरों का क्षेत्र संकुचित करने का कारण यह है कि पाठ-निर्माण करनेवाले के मन में हर समय एक बात का भय था। वह यह कि छात्रों को इस पद्धति से पढ़ाने में अक्षर पहचान होगी कि नहीं। ५-६ अक्षरों का पूरा परिचय कराने के लिये उन्हीं अक्षरों से घूम-घुमाकर शब्द बनवाना और उन्हीं से वाक्य-रचना करना इसी का यह परिणाम है। सन् १९२५ में जब हमने भी साक्षरता का पहला प्रयोग किया था, ऐसा ही भय हमारे मन में भी था। वाक्य-पद्धति में अर्थ-बोध लाने के लिये कृत्रिमता से

शब्दों की रचना तथा शब्दों से वाक्य रचना और एक वाक्य का दूसरे वाक्य से सम्बन्ध जोड़ने की कठिनाई इत्यादि आपत्तियाँ रहती हैं। बहुत कुछ प्रयत्न करने के पश्चात् भी कृत्रिमता प्रकट रहती है और यह बात प्रौढ़ छात्रों की समझ में शीघ्र आ जाती है; वे इसकी हँसी उड़ाते हैं।

उदाहरणार्थ—डा० लबेक की योजनानुसार जबलपुर मिशन के श्री० एन० हिल द्वारा मुद्रित 'सयानों के लिये हिन्दी प्रवेशिका' का निम्न पाठ देखिये:—

बा जा बाजा बजा	रा जा राजा जा
बा बा बाजा बजा	राजा आ
बाबा जा	आ राजा बाजा बजा
जा बाजा बजा	बाबा आ बाजा बजा
जा बाबा बाजा बजा	आज आ, राजा आज आ

इस उक्त पाठ में ब, ज, र दो-तीन अक्षरों के भीतर पाठ बनाने की चेष्टा की है। इस पद्धति को हमने तार्किक या रचनात्मक पद्धति के नाम से सम्बोधित किया है। इस पद्धति का यह एक आदर्श-पाठ है। इसमें अध्यापक देखेंगे कि दो-तीन अक्षरों को घूम-घुमाकर वाक्य-रचना की गई है। पाठ में अर्थ-बोध लाने के लिये जितना परिश्रम किया गया वह नीरसता रहने के कारण व्यर्थ गया।

अब डा० लबेक की योजना पर ही निर्धारित पूना के श्रीशंकर रामचन्द्र भागवत द्वारा प्रकाशित मराठी 'पुस्तक पहले' का पहला पाठ यहाँ उद्धृत करते हैं।

मराठी पाठ	हिन्दी भाषान्तर
कावळा खारी कडे पहात आहे,	कौवा गिलहरी को देखता है।
खार गायी कडे पहात आहे,	गिलहरी गाय को देखती है।
वाघ घागरी कडे पहात आहे,	शेर गागर को देखता है।

ऊपर जो आलोचना की गई है वही यहाँ भी लागू है।

अब देखिये :— विहार प्रान्तीय साक्षरता-योजना की "सयानों की पोथी" में निम्न संदेश प्रकाशित है :—

"अपने पढ़िये—दूसरे को पढ़ाइये ।"

पाठ १

आम दे	आराम दे
राम आम दे	आदम आरा दे
आदम आम दे	राम आरा दे
राम दाम दे	आम दे दे
आरा दे	दाम दे दे

आ, म, द, े, ा, र

इस पाठ में अर्थ-बोध लाने में वाक्यों की कृत्रिम रचना तथा वाक्यों में विसंगता प्रतीत होती है ।

वाक्य-पद्धति से पढ़ाने के लिये सुगम उपयुक्त पाठ पं० श्री-नारायण चतुर्वेदी के 'ग्राम-जीवन-पुस्तक माला' भाग पहले में मिलते हैं । पाठकों के लाभार्थ उनमें से एक पाठ यहाँ उद्धृत कर रहे हैं:—

क्या तुम पढ़ सकते हो ?	हाँ, मैं पढ़ सकता हूँ ।
क्या तुम लिख सकते हो ?	हाँ, मैं लिख सकता हूँ ।
क्या तुम लिख-पढ़ सकते हो ?	हाँ, मैं लिख-पढ़ सकता हूँ ।

पाठक उपर्युक्त पाठ की उपयुक्तता, सुगमता तथा रोचकता देखकर अवश्य हर्षित होंगे । पाठ-रचना में लक्ष्य यही रहता है कि बार-बार कई एक शब्दों को दृष्टि-गोचर कराकर उनसे छात्रों का परिचय करादें ।

खेद की बात यह है कि पं० श्री नारायण चतुर्वेदी जी ने ऐसी सरल तथा अर्थ-पूर्ण और रुचि-वर्द्धक पुस्तक को शिक्षा-विभाग के आफ़ीसर होने के पश्चात् प्रचलित करने के स्थान में भुला-सा दिया और उसके स्थान पर 'नई हिन्दी प्राइमर' श्री रामेश्वर सहाय सिंह, शिक्षाध्यक्ष म्युनिसिपल बोर्ड आगरा और श्रीकामेश्वरनाथ एम० ए०, भू० पू० आचार्य हिन्दी-विद्यापीठ मथुरा द्वारा लिखित प्रचलित की है। इस पुस्तक में प्रकाशित कई एक पाठ भी पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं:—

(१) (२)

रघुपति राघव राजा राम पतित पावन सीता राम

(३)

राम लछमन जानकी जय बोलो हनुमान की

(४)

रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय पर वचन न जाई।

यह किताब सन् १९३६ के दिसम्बर महीने में प्रकाशित हुई है। पाठकों को यह विदित है कि हमारी 'शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा की योजना' के यही पहले पाठ हैं। इन पाठों को देखकर पाठकों को सम्भवतः विस्मय होगा। इस पुस्तक के सम्पादक-द्वय अपने निवेदन में कहते हैं:—

हम सम्पादक श्रीयुत् ए० बी० माण्डे, एम० ए० की Scheme of Adult Education व श्रीमान् भगवती प्रसादजी वाजपेयी की प्रौढ़-शिक्षा-योजना की पुस्तकों से सहायता लेने के कारण इन दोनों सज्जनों के ऋणी हैं। विशेषतः पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी जी एम० ए० शिक्षा-प्रसार-अफ़सर के, जिनकी कोऑपरेटिव डिपार्टमेंट के लिये लिखी गई प्रौढ़-प्राइमर से भी सहायता ली गई है। और साथ ही उनके व्यक्तिगत अमूल्य परामर्श के भी।

कार्त्तिक शुक्ला ९; १९९७ निवेदक—सम्पादक

हमें अपनी साक्षरता-योजना का अनुकरण होता देखकर हर्ष ही होता है, लेकिन खेद की बात यह है कि जिस मनोवैज्ञानिक-शैली का हम प्रचार कर रहे हैं और जिस मनोवैज्ञानिक-सिद्धान्त और मीमांसाओं पर यह योजना निर्धारित है, उनसे सम्पादक-द्वय का अधूरा ज्ञान रहने के कारण तथा प्रयोगशाला के अनुभव न रहने के कारण पाठों की रचना बेढंगी हुई है। हम जहाँ विश्लेषणात्मक-पद्धति का प्रचार कर रहे हैं, वहाँ उन्होंने विश्लेषण से आरम्भ तो किया, परन्तु प्रचलित रचनात्मक-पद्धति का मिश्रण करके एक विचित्र खिचड़ी-सी बनादी, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस पुस्तक द्वारा साक्षरता-प्रदान का प्रयोग निष्फल हुआ। सुनने में आता है कि शिक्षा-विभाग द्वारा यह किताब पृथक् कर दी गई है।

कहानी की पद्धति

डा० ह्यूए ने २५-३० वर्ष पूर्व नेत्र-गति तथा नेत्रों की छलाँगों के जो अन्वेषण किये, उनके प्रयोगों से पठन-शैली में जो परिवर्त्तन हो रहे हैं और उनके परिणाम में फ़ोनेटिक Phonetic अर्थात् ध्वनि-पद्धति, Look and Say Method अर्थात् 'देखो और बोलो' शब्द-पद्धति, वाक्य-पद्धति और कहानी-पद्धति क्रमशः उच्च श्रेणी की शिक्षा-शैलियाँ आ रही हैं, इनके सम्बन्ध में हम पूर्व अध्याय में पर्याप्त पर्यालोचना कर चुके हैं। छात्रों को साक्षर बनाने के लिये कहानी-पद्धति मनोविज्ञान-शास्त्र में सबसे अच्छी समझी जाती है। इसका कारण यह है कि कहानी का समूचा अर्थ छात्रों की समझ में आता है। वाक्यों में विसंगतता रहती नहीं, कहानी का आकर्षण रहता है, जिससे पाठ्य-विषय में छात्रों का ध्यान भली भाँति लगा रहता है। इस पद्धति में पर्याप्त शब्दों को छात्रों के दृष्टिगोचर कराके परिचय दिया जाता है। अक्षर या शब्द पढ़ाने की हठ बिलकुल नहीं की जाती है, क्योंकि इस पद्धति से पाठ रचनेवालों के हृदय में अक्षर-पहचान के सम्बन्ध में बिलकुल भय नहीं रहता, वे भली-भाँति जानते

हैं कि अक्षर तो वैसे ही बराबर दृष्टिगोचर होंगे और वे भी स्वाभाविक परिस्थिति में अवतरित होंगे। उनका ध्येय पाठ की विशेष रोचकता बढ़ाने का रहता है।

भारतवर्ष में इस कहानी-पद्धति का डा० डबल्यू. जी. मैकी साहब ने अधिक प्रचार किया है। डा० मैकी ने अमेरिका की कोलम्बिया यूनीवरसिटी में डा० थॉर्न डाइक आदि शिक्षा-विशारदों से शिक्षा प्राप्त की है। कहानी-पद्धति से पढ़ाने के लिये उन्होंने पंजाब के मोघा स्थान में अध्यापकों के लिये एक ट्रेनिंग-स्कूल भी खोला है। इस ट्रेनिंग स्कूल से बालकों के पढ़ने के लिये बहुत अच्छी पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं। उनके नाम यह हैं:—

शिक्षकों के लिये—(१) शिक्षकों का पथ प्रदर्शक, (२) तेरह चित्रपट, (३) टीचर्स-गाइड (अँगरेज़ी में)।

विद्यार्थियों के लिये—(१) मेरी चित्र पुस्तक, (२) मेरी कहानियों की पुस्तक, (३) जानवरों की कहानियाँ।

सहायक पुस्तकें—(१) सोनू का छोटा बग़ीचा, (२) लाल मुर्ग़ी, (३) जंगल का राजा, (४) मेरी प्यारी चिड़िया, (५) छोटी-सी औरत, (६) भागनेवाली रोटी, (७) तीन बकरे, (८) भेड़िये का थैला।

भारतवर्ष में मोघा-ट्रेनिंग खोलने के पूर्व 'कहानी-पद्धति' 'बीकन-पद्धति' नाम से प्रसिद्ध थी। मिसेज़ एम० एच० ब्रिग्ज़ की सन् १९२१ की "कहानियों की प्राइमर" प्रसिद्ध है। इस पुस्तक की भूमिका में से पाठकों के लाभार्थ उपयोगी अंश नीचे उद्धृत किया जाता है:—

"इस पुस्तक का उद्देश्य यह है कि पढ़ाई के पाठों में पहिले ही से अच्छा साहित्य मिले। शब्द-सूचियाँ और असम्बद्ध विचार वाले वाक्य न देकर इस पुस्तक में बच्चों के पढ़ने के लिये पूरी-पूरी कहानियाँ दी

गई हैं। इस बात में यह पुस्तक उन बढ़िया से बढ़िया प्राइमरों का अनुकरण करती है जो अमरीका के संयुक्त राज्य में आजकल प्रचलित हैं।

"प्राइमरों" के कुछ लेखकों का विचार है कि नौ-सिखियों के पास जितना शब्द-संग्रह रहता है उसके द्वारा अच्छा साहित्य बनाना असम्भव है, इस पर भी तजरुबे से यह बात जानी गई है कि घरेलू कहानियों में सब बच्चों की रुचि बहुत बड़ी होती है। ये कहानियाँ अनेक चित्तों को साहित्य-विषयक फल हैं और सैकड़ों वर्ष से वैसी ही चली आती हैं, क्योंकि इनके द्वारा कुछ ऐसे तजरुबों का पता लगता है जो प्रायः मनुष्य जाति में सर्वत्र पाये जाते हैं, इन कहानियों से बच्चों की सब साधारण आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। पीढ़ियों से कहते-कहते इन कहानियों के रूप में एक सादगी और विचित्र साहित्य-विषयक सुन्दरता आगई है।

"इस पुस्तक की पढ़ाई का यह ढंग होना चाहिए कि हर एक कहानी बच्चों से बड़े विस्तार के साथ कही जावे, जैसे कि देसी लोग असली कहानी कहते हैं, तब यही कहानी पुस्तक में पढ़ने को दी जावे। हर एक कहानी पुस्तक में ऐसे रूप से दी गई है कि बच्चे के थोड़े ही शब्द-संग्रह से कही जासके, या उसमें ऐसे शब्द आवें जिन्हें बच्चा बड़ी सरलता से सीख सके। वही शब्द बार-बार दोहराये जाते हैं, परन्तु कहानी में बँधे रहने के कारण उनकी आकर्षण-शक्ति कम नहीं होती।"

कहानी-पद्धति का नमूना—

"काली देसी मैना। काली देसी मैना ने एक दाना पाया। वह एक छोटा दाना था। काली ''। वह जौ का दाना था। काली'''। काली देसी मैना बोली। दाना कौन बोयेगा? कौवा बोला मैं नहीं

बोता। तोता बोला मैं नहीं बोता। बया बोला मैं नहीं बोता। काली देसी मैना बोली तो मैं बोऊँगी। काली देसी मैना बोली। कौन जौ काटेगा। कौवा बोला मैं नहीं काटता। तोता बोला मैं नहीं काटता। बया बोला मैं नहीं काटता। काली देसी मैना बोली मैं तो काटूँगी···।"

उपर्युक्त ढंग से काटने, पीसने, रोटी बनाने और रोटी खाने के सम्बन्ध में वाक्य-प्रयोग किये गये हैं और वही शब्द बार-बार दृष्टिगोचर करा दिये जाते हैं।

कहानी-शैली पद्य के द्वारा कैसे पढ़ाई जाती है उसका नमूना पं० इन्द्रनारायण अवस्थी बी० ए०, सी०-टी० लिखित 'पहली बालपाटी' से नीचे उद्धृत करते हैं:—

दूध लिया दो पैसे का, चावल भी एक पैसे का।
उसी दूध की खीर बनाई, वही खीर सब घर ने खाई।
हमने खाई तुमने खाई, चाचा और चाची ने खाई।
काका और काकी ने खाई, मानू और रामू ने खाई।
बबुआ और छुनुआ ने खाई, चूहा और चुहिया ने खाई।

कहानी-शिक्षा-शैली से कहानी में आकर्षण रहता है। वाक्यों की सुसम्बद्धता रहती है, अर्थ पूर्ण रहता है। शब्द बार-बार दृष्टिगोचर कराकर उनसे परिचय कराया जाता है। अक्षर-परिचय की बिलकुल उपेक्षा की जाती है; क्योंकि अक्षर तो केवल ३५-४० हैं। वे बार-बार किसी शब्द के साथ स्वाभाविक परिस्थिति में अवतरित होते हैं। कालान्तर में छात्रों का उनसे परिचय हो ही जायगा। यह शिक्षा-शैली विश्लेषणात्मक है। आधुनिक मनोविज्ञान-शास्त्र द्वारा सर्वोत्तम समझी जाती है।

शान्तिपुर-शिक्षा-पद्धति—यह हमारी शिक्षा-शैली वाक्य-पद्धति तथा कहानी-पद्धति दोनों तो है ही, क्योंकि इसमें पूरा अर्थ-बोध है, परन्तु निम्नलिखित विशेषता रहने के कारण कहानी-पद्धति से भी दो क़दम आगे है, मानों और सभी अद्य-पर्यन्त प्रचलित पद्धतियों से श्रेष्ठ और अपूर्व है।

(१) इसमें छात्रों की रुचि के अनुकूल संगीत है।

(२) पाठ बनाकर कृत्रिम मनोरंजकता लाने की चेष्टा नहीं की गई है, किन्तु जो भजन या गीत छात्रों के मुख या जिह्वा पर सतत खेलते हैं, इनका ही उपयोग किया गया है अर्थात् हमारे पाठों में नैसर्गिक मनोरंजन है।

सत्रहवाँ अध्याय

पाठ्य-क्रम-निर्णय और पठन-शैली

गत अध्यायों में हम प्रौढ़ छात्रों को पढ़ना सिखाने की प्रणाली का विवेचन कर चुके हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या पढ़ने के अतिरिक्त उन्हें भिन्न-भिन्न विषयों के ज्ञान की भी आवश्यकता है। यदि है तो कितनी और किन-किन की और क्यों ?

इस विषय-समुदाय में से कौन-कौन से विषय प्रौढ़ छात्रों को किस सीमा तक पढ़ाने चाहिये इसके लिये यहाँ उनका पाठ्य-क्रम निर्धारित करना परम आवश्यक जान पड़ता है।

संसार का ज्ञान अगाध और अनन्त है। यदि हम ज्ञानार्जन में अपना समस्त जीवन भी लगादें, तो भी उसकी पूर्णता प्राप्त करना असम्भव है। अतएव हमें सब ही आवश्यक और अनावश्यक विषयों पर विचार करना होगा। विषयों का निर्वाचन किन सिद्धान्तों के आधार पर होना चाहिये, यहाँ हमको इसी बात पर विचार करना है।

पाठ्य-क्रम के विषय सनातन से किन सिद्धान्तों पर निर्धारित किये जाते थे, यह कहना कठिन है। सम्भवतः यह बात हुई होगी कि विद्वानों ने भाषा की शुद्धता के सम्बन्ध में ग्रन्थ निर्माण किया होगा, और उन्होंने उसे व्याकरण नाम से घोषित किया होगा। कई व्यक्तियों ने भूतल पर होनेवाली विचित्र घटनाओं का एकत्रीकरण किया और इसे भूगोल कहा। किसी ने धरातल की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई की माप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध निश्चय कर संग्रह किये और इसे भूमिति कहा। कहीं व्याकरण, भूगोल, भूमिति

बीजगणित, अंकगणित, तर्क-शास्त्र, अलङ्कार-शास्त्र और उच्चकोटि के दर्शन-ग्रन्थ इत्यादि विद्वानों द्वारा निर्मित हुए और विद्यालयों में पढ़ाये जाने लगे। ये ग्रन्थ किस कारण से पढ़ाये जाते थे, यह कहना कठिन है। ये ग्रन्थ वन चुके थे और उपलब्ध थे और वे विद्वानों द्वारा प्रचलित किये थे, यही प्रथम कारण हो सकता है। आजकल भी हमारे कालेजों और हाईस्कूलों के पाठ्य-क्रम में यही विषय अधिकतर हैं और दिन-प्रतिदिन जैसे-जैसे नये-नये आविष्कार होंगे, वैसे-वैसे ही नये-नये ग्रन्थ वनेंगे तथा स्कूल और कालेजों के पाठ्य-विषयों में उनका समावेश भी हो सकेगा। लगभग ऐसी ही बातें आजकल हो भी रही हैं। नेचर-स्टडी, ड्राइंग, वाद्य, गायन इत्यादि नये-नये विषयों का पाठ्य-विषयों में समावेश हो रहा है, किन्तु कोई नहीं कह सकता कि किस विचार से इनका समावेश किया जा रहा है।

आधुनिक शिक्षा-विशारदों ने पाठ्य-क्रम-निर्वाचन के सम्बन्ध में अपनी विचार-धारा निश्चित-सी की है और उन्होंने पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में अपने सिद्धान्त निश्चित किये हैं। पाठशाला चाहे स्कूल रहे, चाहे कालेज रहे, सब हैं सामाजिक संस्था। समाज की धारणा और उन्नति के लिये तो उनमें हम वही विषय पढ़ायेंगे और उसी विचार से पढ़ायेंगे, जिससे समाज की धारणा और वृद्धि ठिकाने से होगी। उनका दूसरा सिद्धान्त है कि इस विचार के अतिरिक्त अन्य विषय कभी न पढ़ायेंगे और विषय तथा विचार-बाहुल्य से हम अपने छात्रों के मस्तिष्क में मिश्रित विचारों से खलबली उत्पन्न न करेंगे; अर्थात् जिस विषय के पढ़ाने के सम्बन्ध में सामाजिक हित की दृष्टि से यथेष्ट कारण नहीं, ऐसा विषय हम पढ़ायेंगे ही नहीं। पाठ्य-क्रम में किसी विषय का समावेश करते समय उस विषय के प्रवर्त्तक को यह वात सिद्ध करनी होगी कि उसका समावेश समाज-हित के विचार से समुचित तथा आवश्यक है।

आधुनिक शिक्षा-शास्त्रज्ञ पाठ्य-विवेचन के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर अपना दृष्टि-कोण निश्चित करता है:—

१—पाठ्य-क्रम हम किसके लाभार्थ निर्वाचन करते हैं ?

२—छात्रों का सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन सफल बनाने के लिये कौन-कौन विषय पढ़ाना आवश्यक है ?

३—विषयों की सीमा कहाँ तक निर्धारित करें, जिससे व्यक्ति और समाज के विचार से वह यथेष्ट समझी जाय ?

४—निर्धारित पाठ्य-क्रम के विषय पढ़ाने में अपना ध्येय कौनसा निश्चित रहना चाहिये ?

५—इस ध्येय की पूर्ति के लिये अन्य किन साधनों का अवलम्बन करना पड़ेगा ?

विषय-निर्वाचन आधुनिक-शिक्षा-शास्त्रज्ञ समाज-शास्त्र के ऊपर निर्धारित करता है और वह भी उस पद्धति से, जिसको शिक्षा-शास्त्र में Group analysis अर्थात् "सामाजिक जीवन का पृथकरण" कहते हैं। इस पृथकरण में जिन अंगों से सामाजिक जीवन बनता है उनका समावेश करता है। उद्देश्य यह रहता है कि व्यक्ति की तथा समाज की सार्वांगिक उन्नति हो, उनकी अव्यक्त शक्ति व्यक्त हो जाय और व्यक्ति तथा समाज उन्नतिशील रहे। व्यक्ति का तथा समाज का जीवन कई पहलुओं से बनता है। जैसे; गार्हस्थ्य जीवन, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन, सांस्कृतिक जीवन आदि। शिक्षा-शास्त्रज्ञ इन पहलुओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म पृथकरण करके और शिक्षा का ध्येय सामने रखकर पाठ्य-क्रम बनाता है।

नीचे की आकृति से जीवन के पहलुओं का प्रत्यक्ष परिचय होगाः—
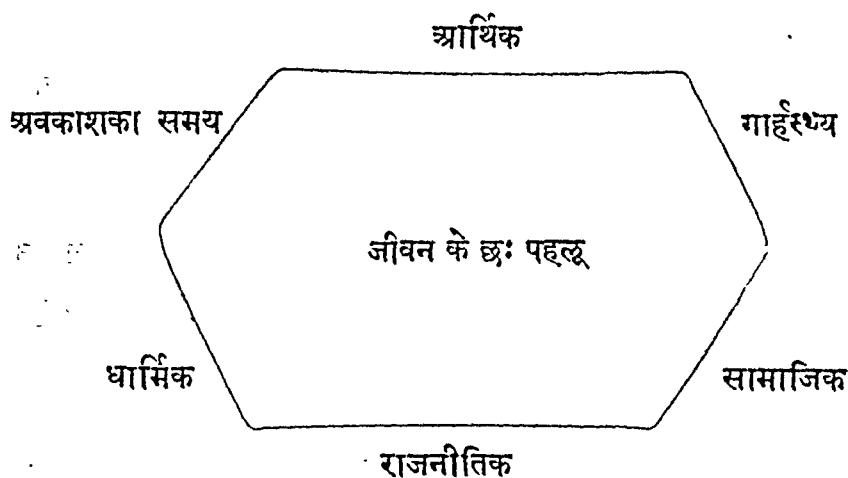
पाठ्य-क्रम ग्रूप या समूह की आवश्यकता तथा जीवन के विचार से भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। यदि शिक्षा-शास्त्रज्ञ को वढ़इयों के लिये पाठ्य-क्रम वनाना होगा तो वह कला-वैशिष्ट्य के विचार सें शिक्षक-समूह के पाठ्य-क्रम से भिन्न होगा। इसी भाँति और-और भी।

हमारे सम्मुख पाठ्य-क्रम वनाने के सम्वन्ध में वड़ा भारी जन-समूह है, जिन्हें कहते हैं "किसान" और वे भी युक्त-प्रान्त के।

जिस कृपक-समुदाय को हम सुधारना चाहते हैं, उसे कार्य-क्षम वनाने के लिये, उसके पाठ्य-क्रम पर हम व्यावहारिक दृष्टि-कोण से विचार करें और इस वात का पता लगाएँ कि उस समुदाय को अपने परिवार का श्रेष्ठ सदस्य वनाने, उसके गार्हस्थ्य जीवन को सुचारु रूप से संचलित करने और उसे सुयोग्य नागरिक वनाने के लिये किन-किन विपयों के ज्ञान की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। इसके लिये नीचे लिखे विपयों पर ध्यान देना आवश्यक है।

१—गार्हस्थ्य जीवन में कार्य-क्षमता

(अ) स्वच्छता रखना।

(ब) मकान को स्वास्थ्यप्रद रूप में कराना और घर को आवश्यक वस्तुओं का उपयुक्त रीति से रखना।

(स) पारिवारिक जीवन के पारस्परिक व्यवहारों का ज्ञान।

(द) अर्थ का सदुपयोग। अपनी आय से अधिक व्यय न करना, अनावश्यक वस्तु न ख़रीदना, और मादक वस्तुओं से दूर रहना इत्यादि-इत्यादि।

२—आर्थिक कार्य-क्षमता

आर्थिक उन्नति के लिये किसानों को खेती करने के नये विधानों का उपयोग बतलाना। जैसे, सिंचाई की सुविधा से लाभ उठाना, बीजों का सुधार और कृषि करने के नवीन औज़ारों के व्यवहार के लाभ आदि की शिक्षा। आर्थिक लाभ की दृष्टि से उन्हें खेती से सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग-धन्धों का बताना भी आवश्यक है। इन बातों के ज्ञान से वे अपनी फ़सलें अच्छी बना कर दूनी-तिगुनी पैदावार बढ़ा सकेंगे। आर्थिक उन्नति के लिये निम्नलिखित जानकारी वाञ्छनीय है:—

(क) व्यवसाय सुचारु रूप से चलाने के लिये यथेष्ट ज्ञान।

(ख) महाजनों और सहकारी-समितियों से लेन-देन का ढङ्ग।

(ग) घर तथा खेती की उपज तथा उस पर किये हुये व्यय और आय का हिसाब-किताब।

(घ) पटवारियों के काग़ज़ात के सम्बन्ध में आवश्यकीय बातें।

(ङ) काश्तकारी-ज़मींदारी-अधिकार।

३—नागरिक कार्य-क्षमता

कृषकों को उन संस्थाओं का ज्ञान देना, जिनके अनुशासन में उनकी उन्नति सम्भव है। जैसे; ग्राम्य तथा जातीय पंचायतें, सहकारी-

समितियाँ, सम्मिलित उत्तरदायित्व से चलाये हुए कार्य आदि। इस ज्ञान के द्वारा उक्त संस्थाओं से उनका अच्छा सम्बन्ध स्थापित होगा और उनकी उन्नति का मार्ग उत्तरोत्तर सुगम होता जायगा।

कई ऐसी संस्थाएँ भी हैं जो उनके लिए अलक्षित रहती हैं, और जिनसे उनका कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध भी नहीं रहता। इस कारण वे उनके कार्यों से अनभिज्ञ रहते हैं, परन्तु उनका अनुशासन उनके ऊपर रहता है। इसलिए उनका ज्ञान भी उनके लिए आवश्यक है। वे संस्थाएँ हैं—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपैलिटियाँ, पुलिस, सेना, न्याय-विभाग, कौंसिल, असेम्बली आदि। हमें चाहिए कि अपने प्रौढ़ छात्रों को इन संस्थाओं के कार्यों का ज्ञान करायें। इसके अतिरिक्त उन संस्थाओं का ज्ञान देना भी उनके लिए सर्वथा उचित है, जिनसे उनका सदा सम्बन्ध रहता है। जैसे; डाकखाना, रेलवे, सड़कें, नहरें, बीमा-कम्पनी आदि।

४—सामाजिक कार्य-क्षमता

सामाजिक सदस्यता के नाते उन्हें अपने समाज की रचना, उसकी पूर्व परम्परा, सामाजिक त्योहार, समाज में स्त्रियों का स्थान और उनका आदर आदि का ज्ञान देना भी आवश्यक है। प्रचलित कुरीतियाँ, जैसे; छुआछूत, जाति-पाँति का भेद, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह से उत्पन्न विषमता से बचने का सदुपदेश।

५—अवकाश के समय का सदुपयोग

देहात में काम करने के बाद कुछ अवकाश का समय रहता है। परन्तु, हमारे देहाती किसान उस समय का सदुपयोग नहीं करते। अवकाश के समय में भी उनके मुखों को देखिये उनपर चिन्ता की रेखा झलमलाती दृष्टिगोचर होगी और वे चिन्ता-सागर में डूबते-

उतरते दीख पड़ेंगे। व्यर्थ काल्पनिक विचार करके वे अपने सामने खिन्नता का राज्य बनाते-बिगाड़ते रहते हैं।

यदि, देहात में, संध्या के समय देहात के आदमी अपना जीवन कैसे व्यतीत करते हैं, इसका अन्वेषण करने के लिए कोई सज्जन जाय तो उसे एक अद्भुत दृश्य देखने को मिलेगा।

ग्रामीण किसान सायंकाल में अपने पशुओं को उनके नियत स्थान पर बाँधकर, उनको भूसा-चारा इत्यादि डालते हैं। यत्किञ्चित् अन्धकार होते ही ग्राम में सन्नाटा-सा छा जाता है। कहीं-कहीं किसी विरले मकान में एकादि दीपक टिमटिमाता देख पड़ता है। अधिकतर भोजन अँधेरे में ही करते हैं। कुछ चूल्हे की अग्नि के प्रकाश में ही करते हैं। तदनन्तर आधी चौपाल में पशु और आधी में चारपाई या पयाल पर मनुष्य सोते-बैठते हैं। साधारणतः कोई किसी के द्वार पर जाता नहीं और गाने-बजाने और एकत्र हो बैठकर बात करने का भी शब्द कहीं से आता नहीं। बहुत हुआ तो पिछड़ी हुई जातियों के मर्द हुक्का लेकर अपनी महरारुओं (स्त्रियों) के पास बैठे मानों भयात् दबी जबान से बातें करते हैं। साधारणतः गाँव का श्मशान शून्य-सदृश यही दृश्य देखने में आयेगा। किन्तु, इसके विपरीत बड़े-बड़े ग्रामों में अनेक घटनाएँ इसी समय होती हैं। उनमें किसी जगह पर चार-पाँच गँजेड़ियों की टोली चिलमों से आकाश की ओर धुआँ उड़ाती बैठी मिलेगी। किसी ब्राह्मण या ठाकुर के द्वार पर दो-तीन चारपाइयाँ बिछी हुई मिलेंगी, जिनके ऊपर सफ़ेद कपड़े पहने व्यक्ति और नीचे उनके पास बैठे हुए चार-छः आदमी बातें करते हुए मिलेंगे। इनका वार्त्तालाप अदालत की बहस तथा गवाहियों के सम्बन्ध में होगा अथवा किसी दलबन्दी की बात-चीत करते होंगे और कभी-कभी बाग़ में पासी और चमारों की टोली चुपके से महुआ की शराब चुवाते हुए मिलेंगे। किसी भी विचार से न यह सुनसान, न यह

घटनाएँ इष्ट हैं। इनमें अर्थ-हानि, स्वास्थ्य-हानिकर मादक द्रव्यों का सेवन तथा मुर्दादिली और अनेक झगड़े ही हैं। इनके स्थान पर हमें एक सात्त्विक आनन्द लाना है, जिससे समाज की तथा व्यक्तियों की शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक उन्नति यथेष्ट रूप से हो। इन सबकी पूर्ति का उत्तरदायित्व हमारी प्रौढ़-पाठशालाओं के ऊपर है। हमें अपने ग्रामीणों में निम्नलिखित तीन प्रकार के मनुष्य मिलते हैं :—

(१) वे, जो सदैव चिन्ता के दलदल में फँसे रहते हैं और अपने मन के ऊपर व्यर्थ काल्पनिक चिन्ता का भार लाद लेते हैं, जिसका उनके स्वास्थ्य और आर्थिक दशा पर बहुत बुरा असर पड़ता है। इस श्रेणी में साधारणतः कुर्मी, अहीर, लोध आदि रक्खे जा सकते हैं।

(२) दूसरे वे लोग हैं, जो अशान्तिप्रिय होते हैं जिन्हें दुनिया भर के खुराफ़ात और दलबन्दी में अवकाश के समय को बरबाद करने में ही आनन्द आता है। इस वर्ग में साधारणतः शिक्षित ब्राह्मण, क्षत्रिय और मुसलमानों की गणना की जा सकती है।

(३) तीसरे वे लोग हैं, जो दुर्व्यसनों में लिप्त रहते हैं। वे लोग भाँग, चरस, चण्डू, शराब, ताड़ी, धूम्रपान आदि में मस्त रहते हैं। इस कक्षा में साधारणतः चमार, पासी, कपरिया, धोबी, और कभी-कभी विरल फक्कड़ क्षत्रिय, ब्राह्मण आदि भी आते हैं।

इसी प्रकार देहात के किसान अवकाश के समय का दुरुपयोग करके अपना स्वास्थ्य, जो मनुष्यमात्र के लिये एक अमूल्य वस्तु है, मटियामेट करते हैं। केवल इतना ही नहीं बहुत से झगड़ालू व्यक्ति अवकाश के समय में रुपया-पैसा पानी की तरह बहाते और बाद में हाथ मल-मलकर पछताते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि लोग अवकाश के समय ही लड़ाई-झगड़े मोल लेते और फिर उन्हें दलबन्दी का रूप देकर एक भयानक स्थिति पैदा कर देते हैं। फल यह होता है

कि गाँव में विद्वेष की चिनगारियाँ फैल जाती हैं। दूसरे हिंसक पशुओं की तरह लोग एक दूसरे का ख़ून पीने के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं। ऐसी रोमाञ्चकारी घटनाएँ प्रतिदिन सुनने में आती हैं।

हमारे समाज में मादक द्रव्यों के सेवन का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। यह बड़े दुःख की बात है कि हमारे बहुत से ग़रीब किसान जिन्हें भरपेट भोजन भी नहीं मिलता, अपने तथा अपने बाल-बच्चों के खाने पीने में कंजूसी करके, मादकद्रव्यों के सेवन में बहुत-सा व्यय कर डालते हैं। दुर्व्यसन-जन्य बुराइयों का यहाँ हम कहाँ तक वर्णन करें। इस विषय में तो बहुत से विद्वज्जन प्रकाश डाल चुके हैं। यदि अवकाश के समय का इसी प्रकार दुरुपयोग होता रहा तो भविष्य में समाज की क्या दशा होगी, इसकी कल्पना पाठक स्वयं कर सकते हैं। अतएव हमें अपने किसान भाइयों की कुटेवें छुटाने, उन्हें सीधे सच्चे मार्ग पर लाने, उनकी आर्थिक, मानसिक, औद्योगिक और नैतिक उन्नति करने तथा उनकी मुरझाई हुई आकृतियों को प्रफुल्लित करने की आवश्यकता है। रामायण का पठन-पाठन, शिक्षाप्रद कहानियों के कथनोपकथन तथा कम से कम सप्ताह में एक बार एकत्र होकर प्रेम-पूर्वक गाने-बजाने की बड़ी आवश्यकता है। अध्यापक गाने-बजाने, सामुहिक नृत्य, अच्छे-अच्छे प्रहसन और नाटकों के द्वारा ग्राम्य जीवन की शुष्कता दूर कर प्रसन्नता का साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त वे उन सामाजिक त्यौहारों को, जिनमें आल्हा, फगुआ, बिरहा वग़ैरह किसान बड़े चाव के साथ गाते हैं, अच्छा रूप देकर कृषकों को सन्मार्ग पर ला सकते हैं। उनको देहाती भाइयोंके कल्याणार्थ, उनके अवकाश के समय का सदुपयोग कराने के लिये विशेष प्रयत्न शील होने की आवश्यकता है। आशा है अध्यापक तथा प्रौढ़ छात्र इस ओर विशेष ध्यान देंगे; क्योंकि प्रौढ़-पाठशाला का यही प्रधान उद्देश्य है।

६—सांस्कृतिक उन्नति के लिये कार्य्यक्षम बनाना

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। यहाँ के लोगों के हृदय में ईश्वरीय भय है। निःसन्देह मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो ईश्वर से अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित करता है। अन्य योनियों में यह शक्ति नहीं है। थोड़े-बहुत अंश में सभी देशों के निवासी ईश्वर से प्रेम करते हैं। यह परमात्मा कहीं देव, कहीं ब्रह्म, कहीं खुदा, कहीं गाड आदि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। परन्तु मनुष्य के अन्तरतल में एक ऐसी भावना छिपी रहती है, जिससे वह अदृष्ट से अपना नाता जोड़ लेता है। उस पर निस्सीम भक्ति तथा प्रेम करने लगता है। जहाँ उसकी समझ में कार्य-कारण-भाव नहीं आता, वहाँ जय-पराजय, सुख-दुःख और लाभालाभ को उसके भरोसे छोड़ देता है और ऐसा करने से उसकी आत्मा को शान्ति मिलती है। अदृश्य तत्त्व पर विश्वास रखने से उसके दैनिक आचरण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। बहुत से विद्वानों का कथन है कि ऐसा अदृश्य तत्त्व या ईश्वर का भय रहने से ही संसार ठीक मार्ग पर रहता है। देहात के किसानों की फ़सलें दैव-इच्छा पर ही निर्भर रहती हैं। उन के अच्छे और बुरे होने के कार्य-कारण की कल्पना उनके लिये दुष्कर है। ऐसी दशा में वे अपने आप को ईश्वर का शरणागत मान कर आत्मशान्ति प्राप्त करते हैं।

ईश्वर के भय से अपने गाँव, पड़ोस तथा परिवार का सम्बन्ध भी ठीक रहता है। यदि जन-समाज से ईश्वर का भय उठ जाय, तो स्वेच्छाचारपूर्ण अशान्ति के दमन में महान् से महान् शक्ति भी सफल नहीं हो सकती। सनातन से उनके हृदयों में जमे हुए ईश्वरीय प्रेम तथा भय को अचल-अटल बनाने के लिये हमें सतत प्रयत्न करना चाहिये। अतएव अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे प्रौढ़छात्रों में जगन्नियन्ता के प्रति असीम शुद्ध प्रेम और अटल विश्वास पैदा करें।

ऐसी बातों से उन्हें दूर रखें, जिनसे जातियों में द्वेषभाव पैदा होने की सम्भावना हो। जन-साधारण के हृदय-क्षेत्र में परमात्मा का प्रेम-भाव स्थिर रहे और आजकल के जैसे साम्प्रदायिक झगड़े न उठें। ऐसे अपरिमेय ईश्वर-प्रेम की अभिवृद्धि हमारी समझ में रामायण के द्वारा हो सकती है। क्योंकि हिन्दी में इससे अधिक उच्चकोटि का भक्तिमय काव्य दूसरा नहीं है। इसमें काव्य, सदाचार, नीति और उच्च तात्त्विक ज्ञान ओत-प्रोत है। रामायण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आज तक किसी धर्मावलम्बी ने इस पर आक्षेप करने का साहस नहीं किया। इसे सभी मतानुयायी आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसकी रचना ऐसे अच्छे ढंग से की गई है कि सभी सम्प्रदाय और धर्म के लोगों को इससे अमूल्य शिक्षायें मिलती हैं।

आशा है कि अध्यापक उसी तत्त्व और उसी ढंग से कथा का सहारा लेकर मनोरंजक नीति और अगाध ईश्वरीय-प्रेम विद्यार्थियों के मानस में भरने की चेष्टा करेंगे।

मनुष्य-जीवन के कार्य-क्षेत्र के पहलू तथा उनका पृथक्करण करके हमने अपने पाठ्य-क्रम में उस जीवन की सार्वांगिक उन्नति का विशेष ध्यान रखा है। जीवन की उन्नति का उत्तरदायित्व बहुत कुछ उनके गुरुजनों की शिक्षा पर अवलम्बित रहता है। हमारी योजना के अनुसार अध्यापक ग्रामीण समाज के नेता हैं। आशा है, वे अपने इस कर्तव्य का पूर्ण पालन करेंगे।

प्रचलित पाठ्य-क्रम को देखने से पता चलता है कि उसमें छात्रों की आध्यात्मिक या सांस्कृतिक, औद्योगिक तथा गार्हस्थिक कार्य्य-क्षमता का बहुत कम ध्यान रखा गया है। उसमें जहाँ-तहाँ इतिहास भूगोल, गणित, व्याकरण आदि विषय रखे गये हैं। अभी हमारे देश में पाठ्य-क्रम समाज-शास्त्र के सिद्धान्तों पर नियत करने की विचार-

धारा "Sociological foundation in education" शिक्षा के क्षेत्र में आती है।

इस अध्याय में प्रौढ़-छात्रों को कार्य्य-क्षम बनाने के लिये जिन दृष्टिकोणों का उल्लेख किया गया है, उनसे यही निष्कर्ष निकलता है कि अध्यापक पढ़ाते समय इन्हीं बातों पर अधिक ज़ोर दें। देहाती जीवन का पृथकरण यहाँ जिस पहलू से किया गया है उसे पुष्ट करने के लिये वैसी पुस्तकें अभी तक नहीं लिखी गई, न भविष्य में शीघ्र लिखे जाने की आशा है। यदि अध्यापक चाहें तो भिन्न-भिन्न पुस्तकें पढ़कर उनके ज्ञान पर प्रकाश डाल सकते हैं। उन्हें समझ लेना चाहिए कि पुस्तकीय ज्ञान देना ही शिक्षा नहीं है। आज तक जितने महापुरुष, प्रकाण्ड पण्डित तथा धुरन्धर विद्वान् हुए हैं, वे केवल पाठ्य-पुस्तकें पढ़कर ही नहीं हुए, वरन् संसार का अनुभव प्राप्त करके स्थित-प्रज्ञ बनकर वे उतने उच्च आसन पर पहुँचे हैं। अतएव अपने प्रौढ़-छात्रों को उचित शिक्षा देने के लिए अध्यापकों को बहुत-सा मौखिक ज्ञान भी देना चाहिए।

भारतवर्ष में जिस समय लिखना-पढ़ना कम था, ज्ञान का प्रचार प्रवचनों और व्याख्यानों के सहारे होता था। अतएव अध्यापकों को चाहिये कि वे किसानों को "बहुश्रुत" बनाकर उनमें सांसारिक कार्य्य-क्षमता उत्पन्न करने की चेष्टा करें और जहाँ तक सम्भव हो, किताबों के द्वारा ज्ञान-वृद्धि का सहारा कम लें।

हम प्रौढ़-पाठशालाओं के लिये उन्हीं किताबों की सिफ़ारिश करेंगे जिनका दृष्टि-कोण हमारे दृष्टि-कोण से मिलता हो। अतएव प्रचलित विषयों को पढ़ाने के सम्बन्ध में हमारा दृष्टि-कोण क्या है और वे किस ढंग से पढ़ाये जायँ, इसका विवरण देना अनुचित न होगा। सम्भव है कि हम शीघ्र ही ऐसा सस्तासाहित्य निर्माण कर प्रौढ़-पाठशालाओं के लिए उपलब्ध कर सकें।

इतिहास

इस विषय को इतिहास नाम से सम्बोधित करके पढ़ाना उचित न होगा, किन्तु जब हम इतिहास कहानियों द्वारा पढ़ाने की चेष्टा करेंगे तब हमें अधिक सफलता मिलेगी; क्योंकि इतिहास के नाम से किसान अनभिज्ञ हैं, किन्तु वे कहानियाँ प्रसन्नता के साथ सुनते हैं।

कहानियों की सहायता से अध्यापक अपने प्रौढ़ छात्रों को आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का पूरा-पूरा ज्ञान दे सकेंगे। समय-समय पर किस प्रकार सामाजिक परिवर्त्तन हुए, कौन-कौन से धार्मिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों का जन्म हुआ, इसके कार्य-कारण का पूर्ण विवेचन वे कहानियों में कर सकेंगे। खेद की बात है कि प्रस्तुत पुस्तकों तथा प्रचलित इतिहासों से हम पूर्व-परम्परा के आधारों का ज्ञान आधुनिक जन-समाज को नहीं दे सकते।

वेद-कालीन भारत का वह चेतनामय दृश्य, जिसमें ऋषि मंडल, राजा-प्रजा का धर्म, वर्णाश्रम, संस्कार-विधि, गुरुकुल आदि विषय हैं, जिनका देहातियों के जीवन से अधिक सम्बन्ध है, न इतिहास में मिलता है और न कहानियों द्वारा पूरा हो सकता है। इस कमी को अध्यापक अपने संचित सामाजिक तथा धार्मिक ज्ञान से पूरा कर सकते हैं। उपयुक्त ज्ञान-दान का सुअवसर उन्हें रामायण और महाभारत की कथायें पढ़ाते समय प्रचुर परिमाण में मिलेगा।

अध्यापक इतिहास पढ़ाते समय महापुरुषों की जन्म-मृत्यु की तिथियों पर विशेष ध्यान न दें, बल्कि उनके सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन की ओर विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करें और उन्हें यह बतलावें कि ये महापुरुष कैसी परिस्थिति में अवतरित हुए, उन्हें कौन-कौन सी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं

तथा त्रुटियों से उलझना और उन्हें सुलझाना पड़ा और इसमें उन्हें कहाँ तक सफलता मिली। यह बताना भी अधिक श्रेयस्कर होगा कि उनके जीवन का प्रभाव जन साधारण के आचार-विचारों पर कितना पड़ा। महापुरुष सुखोपभोग के लिये नहीं पैदा होते, उनका जीवन जनता के कुत्सित विचारों, उनकी दूषित मनोवृत्तियों और अन्ध-परम्परा पर आश्रित सामाजिक आचार-विचारों को पलट देने के लिये ही होता है।

विशेषतः ऐतिहासिक कहानियों में से उन महान् पुरुषों की जीवनियों से परिचित कर देना चाहिये, जिनके विचारों का तथा परिश्रमों का आधुनिक भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ चुका है। उनको ऐसी जीवनियों के सम्बन्ध में भी ज्ञान देना चाहिये, जिनके विचारों और परिश्रमों से भारत का सामाजिक, औद्योगिक शैक्षणिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पुनर्निर्माण हो रहा है।

भूगोल

यह विषय मौखिक पढ़ाया जाय। इसके लिये अध्यापक की वर्णन-शैली मनोरंजक और हृदयग्राही होनी चाहिये। वर्णन के लिये विषय का स्पष्ट ज्ञान भी होना आवश्यक है। भूगोल में उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बातें ही बताई जायँ। जैसे, तीर्थ स्थान (१) जहाँ देहाती आदमी नहाने या पिण्डदान के लिये विशेषतः जाते हैं, उनमें पहुँचने के मार्ग, वहाँ पहुँचने के पश्चात् धर्मशाला आदि के पते जहाँ ठहरने की सुविधा मिल सके, एवं वहाँ पहुँचने के पश्चात् धूर्त्तों की चालाकियों से जो कठिनाइयाँ और कष्ट पहुँचने का उन्हें भय रहता है, उनसे बचने के उपाय और वहाँ जन-समुदाय के बाहुल्य से जो संक्रामक रोग फैलते हैं, उनसे बचकर आने के उपाय। नारी-हरण और बालकों का खोजाना, चोरी हो जाना आदि दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में पुलिस में ठिकाने से रिपोर्ट या

सूचना देना तथा सेवा-समिति आदि संघों से सहायता लेना इत्यादि वातें समझाना आवश्यक है। कृषकों को समीपवर्ती मेले, मण्डी, जहाँ वे अपना अनाज और गुड़ वेचते हैं, तथा पशुओं के हाट-वाज़ार के सम्बन्ध में ज्ञान देना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अपने प्रदेश के वड़े-वड़े नगर और राजधानी के सम्बन्ध में भी ज्ञान देना चाहिये।

पौराणिक कहानियाँ

पौराणिक कथाएँ पढ़ाते समय कथाओं के रहस्य और उपदेश पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसे; ध्रुव की कहानी में एक ध्येय पर दृढ़ रहने की अटल निष्ठा, प्रह्लाद के जीवन में निस्सीम अनुपमेय भक्ति, हरिश्चन्द्र की कथा में वचनपूर्त्ति के लिये राजा का वलिदान या स्वार्थ-त्याग, सावित्री-सत्यवान में पतिव्रत-धर्म, श्रवणकुमार में मातृ-पितृ-भक्ति, भीष्मपितामह की कहानी में कर्तव्य-परायणता की शिक्षा इत्यादि महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक ध्येय का वर्णन करना चाहिये।

नागरिक शिक्षा

इस प्रधान विषय को पढ़ाने के उद्देश्य से हमने अपनी दूसरी और तीसरी पोथी छपा कर प्रकाशित कर दी हैं। चौथी पोथी छपाकर प्रचलित करने का विचार है।

अध्यापक पाठशाला के समय के वाद कौटुम्बिक उत्सवों, सार्वजनिक त्यौहारों और ग्रामीण पंचायतों में प्रौढ़-छात्रों को उनके काम की वातें वता सकते हैं। उनका कार्य केवल कक्षा तक ही सीमित नहीं है। हर जगह, जहाँ उन्हें मौक़ा मिले, देहातियों की अन्तर्वाह्य उन्नति के लिये सदा प्रयत्नशील वनना उनके लिये आवश्यक है।

अठारहवाँ अध्याय

लिखना पढ़ाने की विधि

प्रौढ़ छात्रों को लिखना सिखाना बायें हाथ का खेल है। यह बात बच्चों के लिए कठिन है। प्रौढ़ों का अपनी उँगली के ऊपर अधिकार रहता है। वे जैसी चाहें वैसी क़लम घुमा सकते हैं। बच्चों के हाथ से तो क़लम भागती-सी है; क्योंकि वे उसे ठीक ढंग से पकड़ भी नहीं सकते। यदि अध्यापक अक्षरों की रूप-रेखा की तसवीर प्रौढ़ छात्रों के मस्तिष्क में भली-भाँति बैठा सकें, तो नेत्र बन्द कर लेने पर भी वे अक्षरों की बनावट का वर्णन सही-सही कर सकते हैं और उन्हें तुरन्त लिख भी सकते हैं।

प्रौढ़ छात्रों को पाटी या सिलेट पर लिखना सिखाना ठीक होगा या नहीं, यह प्रश्न विवादग्रस्त है। हमारी योजना के अनुसार तो प्रौढ़ छात्रों को तख़्ती कदापि न देनी चाहिए। उनको लिखना सिखाने का उद्देश्य यही है कि वे पत्र, अर्ज़ी, निमन्त्रण-पत्र और रसीद आदि लिख सकें। उनके दैनिक काम में आनेवाली ये सब बातें काग़ज़ पर ही हो सकती हैं। यदि पहले से ही काग़ज़ पर लिखने की आदत डलवाई जाय, तो उससे ज़्यादा हानि नहीं है; क्योंकि काग़ज़ का जितना नुक़सान बच्चे करते हैं उतना प्रौढ़ नहीं करेंगे। प्रौढ़ों को लिखना सिखाने के निमित्त, हमने एक ख़ास लिपि-पुस्तक बनाकर छपवाई है। इसका उपयोग ठिकाने से किया जाय।

लेखन पढ़ाने के दर्जे

प्रथम मास में—

भजन चार्ट दो-चार दिन दुहराने के बाद यानी शिक्षारंभ होने के बाद तीसरे या चौथे रोज़ लिपि-कापियाँ छात्रों के हाथ में दी

जानी चाहिएँ। लिपि-कापी में प्रथम वही भजन दिये गये हैं, जो प्रथम उनके पढ़ने में आते हैं। लिपि-कापी में ऊपर नमूने के तौर पर भजन के भाग लिखे हैं और नमूने की नक़ल करने के लिए नीचे तीन सतरें दी हुई हैं। भजन से विद्यार्थी का परिचय होने के बाद एक सतर पर पेंसिल से ठीक-ठीक नक़ल करने का आदेश अध्यापक दें। विद्यार्थियों से कह देना चाहिए कि वे अक्षर धीरे-धीरे और बनाकर लिखें। यदि पहले ही से घसीट लिखने की चेष्टा करेंगे या लिखने में असावधानी करेंगे तो वे कभी सुवाच्य अक्षर न लिख सकेंगे। हमने ऊपर कहा ही है कि छात्र एक ही सतर में पेन्सिल से नक़ल करें। इस ढंग से अध्यापक रोज़ अपने छात्रों से नये-नये पृष्ठों की पहली सतर पर नक़ल करवाते चलें। उनके लिखने में जो अशुद्धियाँ हों, उनको सुधारने की चेष्टा न करें, किन्तु ठीक उसके नीचे हस्ताक्षर कर उस दिन की तारीख़ लिख दें, क्योंकि इस अवस्था में प्रौढ़ों का यह नक़ल करना न लेखन है, न बनाकर अक्षर लिखना है। इस लिखवाने का ख़ास उद्देश्य यही है कि इस तरह उनकी नित्य की प्रगति का एक रेकर्ड बना रहेगा।

इस अवस्था में हम छात्रों को केवल पेन्सिल घुमाने का अभ्यास दिलाते हैं। वास्तव में वे लिखते नहीं, किन्तु अक्षरों की ड्राइंग खींचते हैं। वे अशुद्धियाँ तो करते ही हैं, वरन् कभी-कभी अक्षर भी उलटे ढंग से लिखते हैं। विद्यार्थियों से नक़ल करवाने में हमारे तीन उद्देश्य हैं—

(१) पेन्सिल घुमाने का अभ्यास दिलायें।

(२) उनकी पहली लिखावट का रेकर्ड रहे, ताकि जब दुबारा वे वही भजन दूसरी सतरों में नरकट की क़लम से लिखेंगे, तब अपनी प्रगति की तुलना करेंगे और साश्चर्य हर्षित होंगे।

(३) भजनों की नक़ल करते समय उनके मन में और एक कार्य होता रहता है। वह यह है कि जिन नये चार्टों की वे नक़ल करते हैं और जिनके अक्षरों से वे पूर्णतया परिचित भी नहीं हुए हैं, उन अक्षरों की नक़ल करते समय अक्षरों की बनावट के विषय में उनकी अस्पष्ट कल्पना स्पष्ट-सी होने लगती है।

पहले मास में छात्रों को नक़ल करने के लिए कम से कम २० मिनट का समय प्रतिदिन देना चाहिए।

पहले महीने के अन्त में वर्णमाला के समस्त अक्षरों का दूसरी सादा कापी में क्रमशः तथा रीतिपूर्वक लिखने का अभ्यास कराया जाय। इस अवस्था में छात्र दो-तीन दिन के भीतर ही रीतिपूर्वक लिखना सीख जायँगे।

दूसरे मास में—

(१) नक़ल करने के पूर्व अध्यापक अक्षरों के ठीक लिखने का तरीक़ा श्यामपट की सहायता से बतला दें और अक्षरों को क्रमशः लिखने का अभ्यास करालें।

(२) इसी मास में लिपि पुस्तक की अन्य सतरों को स्याही तथा नरकट की क़लम से लिखने के लिए आदेश करें। इस महीने में लिखने के लिए रोज कम से कम आधा घंटा दें।

तीसरे महीने से साधारण छोटे-छोटे वाक्य बतौर डिक्टेशन के लिखवाना शुरू कर दें।

पाँचवाँ महीना समाप्त होने के पहले उनमें अर्ज़ी, पत्र इत्यादि स्वयं लिखने की क्षमता ला दें।

गणित पढ़ाने की विधि

प्रौढ़-छात्रों को गणित पढ़ाना अत्यन्त सरल है; क्योंकि उनकी बुद्धि परिपक्व रहती है। व्यावहारिक लेन-देन में, जहाँ कहीं गणित का प्रसंग आता है बिना पढ़े-लिखे किसान भी ठीक-ठीक हिसाब

लगा लेते हैं। क्रम से १ से २० तक की गिनती, प्रचलित सिक्के तथा उनका मूल्य, तौल के बाट, जैसे; छटाँक, सेर, पंसेरी, पैमाने इत्यादि का ज्ञान वे भली प्रकार रखते हैं।

यह सब होते हुए भी, खेद की बात है कि जहाँ-जहाँ प्रौढ़ पाठशालाएँ हैं, वहाँ-वहाँ आरम्भ में तो प्रौढ़ लोग गणित सीखने का उत्साह दिखलाते हैं, पर धीरे-धीरे वे इस विषय से भयभीत होने लगते हैं। फल यह होता है कि प्रौढ़-पाठशाला के अध्यापक ऊकताकर उन्हें गणित पढ़ाना छोड़ देते हैं। इसका मुख्य कारण यह है शिक्षकों के पढ़ाने का ढंग ही अत्यन्त नीरस होता है और वे सरल बात को क्लिष्ट करने में बड़ी विद्वत्ता दिखलाने लगते हैं।

गणित शब्द का अर्थ ही हिसाब है। प्रौढ़-पाठशाला के अध्यापकों से हमारा कथन है कि वे इस विषय को गणित के नाम से न पुकारें। वे उनसे कहें कि चलो, अपने कारोबार में काम आनेवाला हिसाब-किताब लिखना—और करना—सीखो; क्योंकि सम्भव है वे गणित शब्द मात्र से चौंक जायँ। उन्हें चाहिए कि शुरू में वे किसानों को महाजनों के हिसाब-किताब रखने की रीति के अनुसार गणित पढ़ावें; क्योंकि उनको पैसा, इकन्नी, चवन्नी, और रुपया का आपस का सम्बन्ध भली-भाँति मालूम रहता है।

महाजनी हिसाब-किताब अङ्क के बजाय खड़ी, बेंड़ी और पड़ी रेखाओं में रखा जाता है। गणित सीखना आरम्भ करनेवाले के लिए रेखा में रेखा मिलाना, घटाना और बढ़ाना अत्यन्त साधारण और सरल है। परन्तु, प्रायः आरम्भ में अङ्कों का जोड़ और बाक़ी समझना कठिन है। चूँकि पहले दिन से ही पढ़नेवाले रेखाओं के जोड़ को आसानी से लगा सकते हैं, इसलिए उनके हृदय में एक तरह का विश्वास पैदा हो जायगा कि गणित कोई कठिन विषय नहीं है। इस

विषय को हम आसानी से पढ़ सकते हैं और दिन प्रतिदिन कुछ उपयुक्त ज्ञान भी सीख सकते हैं। पाठ्य-विषय में विद्यार्थियों का विश्वास उत्पन्न करना तथा उसे स्थिर रखना शिक्षा-शास्त्र का प्रधान तत्त्व है।

महाजन लोग आमतौर से अपनी रोकड़-वही का हिसाव इसी रीति से रखते हैं। इसलिए इस तरीक़े पर गणित सीखने से छात्र महाजनों से व्यवहार करना आसानी से सीख सकेंगे, उनके लेन-देन का सम्बन्ध भी जान सकेंगे। इसी तत्त्व को ध्यान में रखकर हमने "देहाती-हिसाव-किताव" नाम की किताव तैयार की है।

संख्याओं का जोड़ लगाने में 'हासिल' का तत्त्व समझना आरम्भ में कठिन हो जाता है। वहुत दिनों तक पढ़नेवाले उसके मूल तत्त्व को नहीं समझ पाते। देहात के किसान, पैसे से आना, आने से चवन्नी और चवन्नियों से रुपयों का सम्वन्ध अच्छी तरह जानते हैं। उनको समझाया जाय कि खड़ी, बेंड़ी और पड़ी रेखाएँ सिक्कों का मान वताती हैं। पैसे में पैसा, आने में आना, चवन्नी में चवन्नी, रुपये में रुपया रखने के लिए पृथक्-पृथक् ख़ाने या थैलियाँ वनी हैं। इस तरह वे जोड़ और वाक़ी लगाने में 'हासिल' का मतलव शीघ्र ग्रहण कर लेंगे। उनसे कहा जाय कि देखो—१), १०), १००) और १०००) के नोटों के ये फुटकर ख़ाने वने हैं, तो संख्याओं में स्थानों का ज्ञान उन्हें आसानी से हो सकेगा। स्थान का ज्ञान होने के वाद इसी प्रकार इकाई, दहाई, सैकड़ा, हज़ार आदि का ज्ञान भी उन्हें सरलता-पूर्वक दिया जा सकता है।

") " इस चिह्न को विकारी के नाम से पुकारिये और पढ़नेवाले को समझाइये कि विकारी के दाहिने तरफ़ की खड़ी पाई से पैसे का वोध होता है। एक खड़ी पाई से एक पैसा, दो पाई से दो पैसा और तीन पाई से तीन पैसा होता है। यदि वाईं तरफ़ '–' पाई

होगी, तो वह आने के नाम से पुकारी जायगी। एक पड़ी पाई से एक आने का बोध होता है, जो विकारी के भीतर बनाई जाती है। इस प्रकार केवल तीन पड़ी पाई लिखी जा सकती हैं और इसके पश्चात् विकारी के भीतर एक खड़ी पाई एक चवन्नी, दो खड़ी पाई दो चवन्नी और तीन खड़ी पाई तीन चवन्नी की द्योतक मानी जाती हैं। यदि पूर्णाङ्क लिखा जायगा, तो उससे रुपया का ज्ञान होगा। इसी तरह मन, सेर, छटाँक, बीघा, बिस्वा आदि को भी समझाइये।

पहले-पहल विद्यार्थी को ४, ५, १२ और १६ का पहाड़ा क्रम से पढ़ाइये। इसके बाद उन्हें शेष पहाड़े बतलाइये; क्योंकि आगे इनकी आवश्यकता पड़ती है। आवश्यकतानुसार वस्तुओं का ज्ञान कराना आधुनिक मनोविज्ञान का सिद्धान्त है। साधारणतः पहाड़े पुराने ढङ्ग से ही स्कूल बंद होने से कुछ समय पहले सब छात्रों को एक पंक्ति में खड़े करके बुलवावे।

हिसाब पढ़ाने के लिए अध्यापकों को कुछ मोटी-मोटी सूचनाएँ

(१) बच्चे तथा प्रौढ़ किसानों को आरम्भ में गणित पढ़ाते समय केवल मानसिक संख्याओं का हिसाब पढ़ाना कठिन होता है। जैसे; १५ में १२ जोड़ो या घटाओ। यह जोड़ और बाक़ी उनके लिए कुछ कठिन होगा। लेकिन यदि यही प्रश्न इस ढंग से दिया जाय कि राम के घर से १५ गुड़ की भेलियाँ और सोहन के यहाँ से १२ भेलियाँ आईं, तो कुल कितनी भेलियाँ हुईं? तो वे इसका उत्तर आसानी से दे सकेंगे। इसी प्रकार बाक़ी निकालना भी संख्याओं के साथ पदार्थ मिलाकर समझाना चाहिए।

(२) लम्बी-चौड़ी संख्याओं का जोड़, बाक़ी, गुणा और भाग देहात के प्रौढ़ों को पढ़ाना बेकार है। उन्हें हज़ार तक की संख्याओं का ज्ञान क़ाफ़ी होगा।

(३) किसान को भिन्न का ज्ञान देने की आवश्यकता नहीं है।

(४) हास्यास्पद उदाहरण न दिये जायँ। जैसे—

अ—एक आदमी ५॥ फ़ुट ऊँचा है जिसका वज़न १३५ पौंड है। यदि उसकी स्त्री ५ फ़ुट ऊँची हो, तो उसका वज़न क्या होगा?

ब—आठवें हेनरी को ७ स्त्रियाँ थीं तो चौथे हेनरी की कितनी स्त्रियाँ हुई होंगी?

स—एक आदमी नदी पार कर रहा था। पाँच फ़ुट जाने के बाद उसको दो फ़ुट गहरा पानी मिला, तो पचास फ़ुट जाने के बाद उसको कितना गहरा पानी मिलेगा?

द—माधवपुर से किशनपुर पाँच मील दूर है। एक आदमी माधवपुर से किशनपुर दो घंटे में पहुँच जाता है। यदि चार आदमी इकट्ठा निकलें, तो कितनी देर में पहुँचेंगे?

इ—चौबेजी की चोटी दो फ़ुट लम्बी है, तो दुबेजी की चोटी कितनी लम्बी होगी?

फ—चार वर्ष के एक लड़के के दो हाथ हैं, तो आठ वर्ष के लड़के के कितने हाथ होंगे?

(५) उदाहरणों की बनावट ऐसी वस्तुओं के द्वारा हो, जो उनके दैनिक कारोबार से सम्बन्ध रखती हों। जैसे; आम, ककड़ी, खीरा, औज़ार और अनाज आदि।

अन्त में हम अपने अध्यापकों से इतना कहना चाहते हैं कि देहात के किसानों को गणित पढ़ाने से हमारा इतना ही मतलब है कि वे अपने दैनिक कार्य में हिसाब रखने के कार्य-क्षम हो जायँ। यदि गणित पढ़ने से वे अपने खेत में पैदा की हुई जिन्सों की लागत निकाल सकें, अपने घरेलू खर्च का हिसाब-किताब रख सकें, कोऑपरेटिव सोसाइटी द्वारा जारी पास-बुकों का जमा-खर्च का इन्दराज समझ सकें तथा खज़ानची के लिये जारी की गई रोकड़ बही

लिख सकें तो गणित विषय में हमने उनको काफ़ी ज्ञान दिया है, ऐसा समझा जायगा।

गणित विषय की परीक्षा भी इसी ख़याल से लेनी चाहिये। प्रौढ़-पाठशाला की परीक्षा तीन मास की पढ़ाई के पश्चात् ली जाती है। इस प्रथम परीक्षा में यदि प्रौढ़ विकारी में पैसा, इकन्नी, चौवन्नी और रुपया का जोड़ बाक़ी लगा सकें तो वे पास समझे जायँ। प्रौढ़-पाठशाला की अन्तिम परीक्षा ६ महीने पश्चात् होती है। इस परीक्षा में यदि वे रोकड़-बही में इन्दराज कर सकें और मामूली अंकों को जोड़ बाक़ी गुणा भाग निकाल सकें तो वे पास समझे जायँ।

किताब में दिए हुए उदाहरणों के अतिरिक्त और भी उदाहरण सयानों को करने के लिए दिये जायँ। यह प्रश्न उनकी नोट बुक पर ही निकलवाये जायँ। अभ्यास के लिए उदाहरण अध्यापक अपनी व्यावहारिक दृष्टि से दे।

अन्य शिक्षा तथा उसकी विधि

समय-विभाग-चक्र में सप्ताह में तीन दिन सामुहिक शिक्षा देने के लिए रखे जायँ। सामुहिक शिक्षा से हमारा अभिप्राय सब प्रौढ़-छात्रों को एक साथ शिक्षा देने से है। वह पृथक्-पृथक् न पढ़ाये जायँ। सामुहिक शिक्षा में छात्रों को नागरिक शास्त्र, पशु-चिकित्सा, प्राथमिक सहायता, गाँव की स्वच्छता, संक्रामक बीमारियाँ तथा कृषि-शास्त्र का सामान्य ज्ञान देना चाहिए। उन्हें मासिक पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ाकर सामयिक ज्ञान देना उचित होगा। ऐसा करने से उनका ज्ञान-कोष दिनों दिन बढ़ेगा।

जब कृषि-सम्बन्धी काम कम हों, तब अध्यापक को चाहिए कि वह अपने शिष्यों को समयानुकूल खेल खिलवाये। जैसे, कबड्डी, पिट्ठी, आटापाटा इत्यादि। अवकाश में उन्हें सुन्दर गाने सिखाये

जायँ और स्काउटिंग की तालीम भी दी जाय। लेकिन यह सब काम इच्छानुकूल तथा सुविधानुसार ही किये जायँ।

जिस गाँव में अध्यापक पढ़ाता हो, वहाँ वह एक नवयुवक दल की स्थापना करे। उस दल के सदस्यों में सेवा और परोपकार का भाव पैदा किया जाय। उन्हें दीन-दुखियों की दवा आदि करने के हेतु प्रोत्साहन दिया जाय और अपने गाँव की छोटी-छोटी बुराइयों के दूर करने का भार उन्हीं पर डाला जाय।

उन्निसवाँ अध्याय

प्रौढ़-पाठशाला का आनुमानिक पाठ्य-क्रम तथा पाठ्य-विधि

शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा-योजना के अनुसार निम्नलिखित पुस्तकें प्रौढ़-पाठशालाओं में पढ़ाने के लिये स्वीकृत हैं। यह सब किताबें इस समय "मेसर्स द्वादश श्रेणी एण्ड कम्पनी, अलीगढ़"; के यहाँ से मिलती हैं। प्रति प्रौढ़-पाठशाला के लिये प्रत्येक की ४०-४० प्रतियों की आवश्यकता होगी।

पद्य पढ़ाने के लिये

(१) पहली पोथी (हिन्दी) / पहली किताव (उर्दू) — इसमें साक्षरता का श्रीगणेश करने के लिये सरल तथा मधुर १६ भजन दिये गये हैं। इसके पश्चात् देहातियों की अभिरुचि के कुछ भजन और आल्ह-खण्ड दिया है। पाठकों को विदित है कि हमारी शिक्षा-योजना के अनुसार अक्षर-परिचय का आरम्भ पद्य से होता है। मूल्य ।) चार आना।

(२) सुन्दर काण्ड (हिन्दी) / मौजज़ा आलेनवी (उर्दू) — यह दोनों किताबें हिन्दू और मुसलमान धर्मानुयायियों में सुप्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हैं। इनको पाठ्य-क्रम में प्रचलित करने का हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि यदि हमारे छात्र साक्षर होने के पश्चात् यह वा इनके समान धार्मिक किताबें पढ़ते रहेंगे तो उनके

ऊपर पुनः निरक्षर होने की आपत्ति न आवेगी। किताबें मोटे अक्षरों में छपी हुई हैं। मूल्य =)। तीन आना तीन पाई।

(३) माड़ौगढ़ की लड़ाई हिन्दी और उर्दू } उत्तर भारत में देहात के आदमी चाहे वे हिन्दू रहें, चाहे मुसलमान, आल्हा बड़े चाव से गाते हैं। हर्ष की बात यह है कि आल्हा ही एक ऐसा वीर-काव्य है कि सभी सम्प्रदाय-वालों का ग्राह्य तथा लोकप्रिय है। आल्हा प्रचलित करने में हमारा विशेष उद्देश्य यह है कि देहातियों में आल्हा गाने और अन्य देहाती गीतों के गाने की रुचि बढ़े, जिससे उनकी प्राप्त की हुई साक्षरता स्थायी हो जाय। मूल्य =)॥ दो आना नौ पाई।

गद्य पढ़ाने के लिये

(४) दूसरी पोथी (हिन्दी) दूसरी किताव (उर्दू) } इन दोनों किताबों का विषय एक ही है तथा किताबों की भाषा सुगम और देहातियों के समझने योग्य है। इसमें पत्रों द्वारा कृषकों के जानने की आवश्यक बातें दी हैं। जैसे; प्रोनोट (हुण्डी), रसीद, अर्जी और पत्र आदि लिखने के ढंग बताये गये हैं, तथा देहा-तियों के भाव और देहात की घटना का समावेश करके देहात का जाग्रत दृश्य दिखाने की चेष्टा की है। मूल्य =)॥। दो आना नौ पाई।

(५) तीसरी पोथी (हिन्दी)
तीसरी किताब (उर्दू) — दूसरी किताब के सदृश ही इसके विषय हिन्दी-उर्दू में एक ही हैं, केवल लिपि भिन्न हैं। इसकी रचना नागरिक-ज्ञान की साधारण बातें उपन्यास के ढंग से समझाने के लिये की है।

इसमें ग्राम-पञ्चायत, न्यायालय, पुलिस, शिक्षा-विभाग इत्यादि शासन-सम्बन्धी ज्ञान देने का प्रयत्न किया है। मूल्य =) दो आना।

(६) चौथी पोथी (हिन्दी)
चौथी किताब (उर्दू) — यह पुस्तक निर्माण की जा रही है। इसमें देहातियों के त्यौहार तथा संस्कारों का रहस्य समझाने की चेष्टा की गई है। इससे देहाती अपने जीवन का गौरव समझेंगे, तथा सामयिक त्यौहार या अन्य संस्कारों में यथेष्ट भाग लेकर अपना जीवन सुखमय वना लेंगे।

गणित

(७) देहाती हिसाब किताव
हिन्दी तथा उर्दू — इस किताब की रचना इस ढंग से की गई है कि जिससे देहात के आदमी महाजनी हिसाव किताव शीघ्र समझ जायँ तथा सहकारी-समितियों की रोकड़-वही देखने की क्षमता उनमें आजाय। इसमें उदाहरण देहातियों के जीवन से संबंध रखनेवाली वस्तुओं के ही दिये गये हैं तथा शिक्षण-शैली भी ऐसी रखी है कि जिससे उन्हें अपने कार्यों का हिसाव रखना आजाय। मूल्य ≡) तीन आना।

लिखने के लिये

(८) लिपि-पुस्तक (हिन्दी) ख़ुशख़ती (उर्दू)	प्रौढ़ छात्रों को सुन्दर अक्षर लिखने की टेव डालने के लिये यह किताब छपाई है मूल्य –)॥ डेढ़ आना।

अनुमानित पाठ्य-क्रम

शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा की योजना के अनुसार शिक्षा की अवधि केवल ६ मास की ही रहेगी। इस स्थल पर छः मास की अवधि में जिन विषयों का अध्यापन होगा, उन विषयों को पढ़ाने के लिये जो किताबें नियत की गई हैं, वे किस ढङ्ग पर पढ़ाई जायँगी, इसका विवेचन निम्न प्रकार से है:—

इसका एक चार्ट (नक़शा) बनाकर स्कूल रजिस्टर के पृष्ठ दो पर अध्यापकों तथा परीक्षकों और निरीक्षकों की सुविधा के लिये छपा दिया है। उसको सामान्य दृष्टि से देखने से ही प्रौढ़-पाठशाला-सम्बन्धी समस्त आवश्यक विषयों का परिज्ञान सुगमता से होगा।

प्रथम मास में पठन

(१) पढ़ना—पाठ्य पुस्तक—पहली पोथी—

पहले ४ दिन—चार्ट के छः सात भजन—

इस अवधि में अध्यापक पहले भजन गायें और सब विद्यार्थियों से एक साथ गवायें। तत्पश्चात् स्थिरता से चार्ट के शब्दों के नीचे उँगली घुमाते और स्पष्ट उच्चारण करते हुए शब्दों से छात्रों का परिचय करायें, पर शब्दों को अक्षरों में विभाजित करने का प्रयत्न न करें।

५ वें दिन से १६ वें दिन तक—सोलह भजन चार्ट के समाप्त।

इस अवधि में १६ भजन के चार्ट की समाप्ति हो जाती है। अब शब्दों के अक्षर भी अलग-अलग उँगली से दिखाये

जाते हैं। अध्यापक को चाहिये कि पिछले पठित चार्टों को दुहरावे। प्रत्येक भजन-चार्ट कितनी बार दुहराया जाय, इसका निश्चय छात्रों के शब्द और अक्षरों से परिचय होने पर निर्भर है अर्थात् जिनसे विशेष परिचय हो गया उन्हें कम वार दुहराया जाय।

१६ वें दिन से मास के अन्त तक }—आल्हा या गीत पढ़ाना:—

(१) अध्यापक इस अवधि में आल्हा पढ़ाने का आरम्भ करे। पहले अध्यापक पहली पोथी में दी हुई आल्हा को तर्ज़ के साथ सुनादे। फिर एक-एक पंक्ति के शब्दों से तीन-चार वार शब्द दुहरा कर पहले उनसे कुछ परिचय करवा दे। तदनन्तर शब्द पढ़ते हुए पूरी पंक्ति को गाने के ढंग पर पढ़ना सिखा दे। प्रतिदिन ८-१० नई पंक्तियाँ पढ़ाना और पठित पंक्तियों का दुहराना जारी रहे।

(२) अब अध्यापक नित्य अक्षरों की उपस्थिति (हाज़िरी) लेना आरम्भ करें अर्थात् चार्ट और पोथी पर अक्षर दिखा कर उनसे परिचय कराता रहे।

प्रथम मास में लेखन—निर्धारित पुस्तक—लिपि-पुस्तक।

५ वें दिन से १६ वें दिन तक:—

पठित भजन में से १ या २ पंक्ति प्रतिदिन नोट बुक पर नक़ल कराये। १६ वें दिन से उन्हें लिपि-पुस्तक दी जानी चाहिये।

१६-वें दिन से प्रथम मास के अन्त तक—लिपि-पुस्तक की एक पंक्ति और सादा कापी पर दो पक्तियों की नक़ल प्रतिदिन कराई जाय। पन्द्रह दिन के पश्चात् लिपि-पुस्तक देने का कारण यही है कि पिछले दिनों में सम्भवतः वे पुस्तक को गंदी न कर डालें।

प्रथम मास में गणित न पढ़ाया जाय—

इसका कारण यह है कि छात्रों की प्रवृत्ति इन दिनों में अधिकतर लिखने तथा पढ़ने की ओर रहती है।

द्वितीय मास में—

क्रमशः आध घंटा पद्य-पठन, आध घंटा गद्य-पठन, आध घंटा लेखन और आध घंटा गणित पढ़ाया जाय।

पठन—निर्धारित पुस्तकें:—पद्य—पहली पोथी, गद्य—दूसरी पोथी।

पद्य—इस अवधि में पहली पोथी समाप्त होनी चाहिये। अध्यापक को चाहिये कि गीतों से छात्रों का यथेष्ट परिचय होने के पश्चात् ढोलक पर उन पदों को गवायें, जिससे उनको गाने की तर्ज़ पर पढ़ना आजाय।

गद्य—दूसरे मास में दूसरी पोथी का पढ़ाना प्रारम्भ करना चाहिये। इस अवधि में २३ पृष्ठ समाप्त करना चाहिये। पढ़ाने की विधि यह रहे कि अध्यापक छात्रों को पूरा पाठ पढ़ कर सुनावे। पाठ में आने वाले क्लिष्ट शब्दों का अर्थ समझा दे। तत्पश्चात् वाक्य के एक-एक शब्द से तीन-चार बार परिचय करादे। इसके अनन्तर पूरा वाक्य पढ़ावे, वाक्य को उसी ढंग से पढ़ने की टेव डलवाये जैसे अच्छे लिखे-पढ़े आदमी पढ़ते हैं। गद्य पढ़ाने में शिक्षा-शैली सामुहिक रहे। इस मास में मात्रा-चार्ट पढ़ाना समाप्त करदे।

लेखन—अध्यापक छात्रों से लिपि-पुस्तक की दूसरी पंक्ति को सेंठे की क़लम और स्याही से लिखने का अभ्यास करावे और नोट-बुक पर गद्य की पठित पंक्तियों की नक़ल करावे। अशुद्ध लिखे हुए शब्दों को तीन तीन बार शुद्ध लिखवाये।

गणित—निर्धारित पुस्तक, देहाती हिसाब-किताब। गणित में पैसा, इकन्नी, चवन्नी और रुपये का जोड़ बाक़ी अर्थात् पहले तीन अध्याय।

तृतीय मास में—

पठन—निर्धारित पुस्तकें:—

(१) रामायण सुन्दरकाण्ड में पहले १३ पृष्ठ

(२) माड़ौगढ़ की लड़ाई २७ पृष्ठ समाप्त।

अध्यापक एक दिन रामायण और एक दिन आल्हा पढ़ाता रहे। पढ़ाते समय उच्चारण से पहले शब्दों से परिचय करादे। तत्पश्चात् पूरी पंक्ति पढ़े और पढ़वाये। दुहराते समय छात्रों को बारी-बारी से स्वयं पढ़ने का अभ्यास कराये और वह भी इस ढंग से कि एक छात्र पढ़े और फिर सब उसको एक साथ गायें। चाहे पद्य हो या गद्य, शिक्षा का ढंग सामुहिक रहे। इस अवधि में मिलावट के चार्ट समझा दिये जायँ।

गद्य—दूसरी पोथी समाप्त

अध्यापक पूर्व पठित पाठों को दुहरावे और २३ पृष्ठ के आगे से पढ़ावे। सम्पूर्ण वाक्य या वाक्यांश स्पष्ट उच्चारण से पढ़े और पढ़वाये।

लेखन—

अध्यापक पठित गद्य और पद्य की ५-५, ६-६ पंक्तियों की नक़ल करवाता रहे। अशुद्धियों को भी शुद्ध करवाता रहे।

गणित—देहाती हिसाब-किताब

सरल संख्याओं का जोड़, बाक़ी, १० तक पहाड़ा, १०० तक गिनती इनके अतिरिक्त १२ व १६ का पहाड़ा भी

पढ़ा देना चाहिए। ४, ५, ६, ७वाँ और ८वाँ अध्याय भी पढ़ाये जायँ।

चतुर्थ मास में:—

पठन—पद्य—

(१) रामायण सुन्दरकाण्ड ४६ पृष्ठ तक पढ़ाई जाय।

(२) माड़ौगढ़ की लड़ाई समाप्त करा दी जाय।

अध्यापक रामायण के प्रत्येक शब्द के स्पष्ट उच्चारण से परिचय कराने के पश्चात् उसकी पंक्तियों को गवाये।

गद्य—तीसरी पोथी का प्रारम्भ से ४१ पृष्ठ तक पढ़ाना।

अध्यापक अब एक-एक शब्द से न पढ़वाये वरन् पूरे वाक्य और वाक्यांश पढ़े और पढ़वाये।

लेखन—पठित छोटे-छोटे वाक्यों का डिक्टेशन (इम्ला) लिखवाये।

पहले अध्यापक स्पष्ट उच्चारण से वाक्य पढ़े और फिर स्थिरता से एक-एक शब्द बोलता जाय। कापियों में जहाँ छात्रों की ग़लती हो उसके नीचे लकीर खींच दे और एक-एक ग़लत शब्द को शुद्ध रूप में तीन-तीन बार लिखवाये।

गणित—निर्धारित पुस्तक-देहाती हिसाब-किताब—

विकारी में तथा अङ्कों में गुणा-९, १० और ११ अध्याय पढ़ाये जायँ।

पञ्चम मास में:—निर्धारित पुस्तकें।

रामायण सुन्दरकाण्ड और हनुमान चालीसा और माड़ौगढ़ की लड़ाई आल्हा।

पठन-पद्य—(१) रामायण सुन्दरकाण्ड और हनुमान चालीसा सम्पूर्ण।

(२) आल्हा का दुहराना।

गद्य—तीसरी पोथी सम्पूर्ण।

लेखन—अपरिचित सरल वाक्यों का इम्ला और विशेषतः रसीद, पत्र-लेखन, मनीआर्डर, और अर्ज़ी लिखने का अभ्यास कराना।

गणित—रोकड़-बही लिखने का अभ्यास कराना। मन सेर छटाँक में जोड़ बाक़ी अर्थात् देहाती हिसाब-किताब के १७-१८ अध्याय।

षष्ठ मास में:—

पद्य—आल्हा और रामायण का दुहराना।

गद्य—चौथी पोथी और यदि छात्र बहुत कमज़ोर हो तो दूसरी और तीसरी पोथी का दुहराना।

इस मास में अध्यापक को यह लक्ष्य रखना चाहिए कि छात्रों को अन्तिम परीक्षा के लिए तैयार करना है। पढ़ाने का ढङ्ग सर्वदा सामुहिक रहे।

लेखन—

पत्र, अर्ज़ी और रसीद आदि का अभ्यास कराना।

गणित—देहाती हिसाब-किताब

संख्याओं और विकारी में भाग निकलवाना और मिश्रित अभ्यास निकलवाना।

विशेष सूचनाएँ

(१) उपर्युक्त पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त प्रौढ़ों को इकट्ठा साधारण ज्ञान ज़बानी देना होगा। इस साधारण ज्ञान में खेती, स्वास्थ्य, नागरिकत्व आदि विषयों का समावेश होता है। इसके लिए अध्यापकों को पुस्तकालय की किताबों पर निर्भर रहना पड़ेगा।

अध्यापकों को यह भी उचित है कि समय-समय पर और त्यौहारों के दिन उन त्यौहारों की उत्पत्ति और उनका महत्त्व समझा दें। स्वभावतः यह ज्ञान ज़वानी दिया जायगा।

(२) चतुर्थ मास में मंगलवार या सप्ताह का कोई दूसरा ऐसा दिन रखा जाय कि उस दिन पिछले सप्ताह में जितनी रामायण की चौपाइयाँ तथा आल्हा का भाग पढ़ाया गया हो वह ढोलक पर गवाया जाय, उस दिन अन्य गीत भी गाये जा सकते हैं। उस दिन कम से कम आधा घंटा समाचार-पत्र पढ़कर सुनाने के लिए रखा जाय। उचित यह होगा कि इस समय अध्यापक किसी साप्ताहिक अख़बार से राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक घटनाओं को पढ़कर सुनावे। यह सुनाना वैसे ही होगा जैसे रेडियो पर समाचार सुनाये जाते हैं। अध्यापक किसी बात पर अपना मत प्रकट न करे और न क्लास में उस बात पर विद्यार्थियों में बहस होने दे। समाचारों के सुनाने का उद्देश्य यह है कि प्रौढ़ों को दुनिया की बातों से जानकारी हासिल हो और उसके प्रति उनमें यथेष्ट भावना उत्पन्न हो। इसी तरह तीन-चार महीने सुनने के पश्चात् प्रौढ़ साक्षर होकर स्वयं पढ़ने लगेंगे। इस दिन स्कूल बन्द होने के बाद अन्य आदमी अपनी दिक़्क़त या झगड़ा उपस्थित करना चाहे तो वह भी पंचायत में तय किया जा सकता है।

परीक्षा, परीक्षक और प्रमाण-पत्र

शान्तिपुर-साक्षरता-योजना के अनुसार प्रौढ़-पाठशालाओं के लिए जो रजिस्टर जारी किया गया है उसमें चार स्थान परीक्षा-फल लिखने के लिए रखे गये हैं। छः मास की अवधि में डेढ़-डेढ़ मास पश्चात् प्रौढ़ छात्रों को परीक्षा लेनी उचित होगी। प्रथम तथा तृतीय परीक्षा, जिस विभाग से पाठशाला जारी है उसके संचालक अपने कर्मचारियों द्वारा लेने का प्रबन्ध करें। किन्तु यदि हो सके तो, द्वितीय और चतुर्थ परीक्षा किसी बाहरी सज्जन के द्वारा लेना ठीक होगा।

परीक्षक की नियुक्ति

यह बात आवश्यक नहीं कि परीक्षा लेने के लिए विशेषतः शिक्षा-विभाग का कोई पदाधिकारी अथवा शिक्षक ही नियुक्त किया जाय। अनुभव से पता चलता है कि कभी-कभी प्राथमिक कक्षा के अध्यापक परीक्षा लेते समय अपनी संकुचित दृष्टि छोड़ नहीं सकते। उनके लिए व्याकरण, भूगोल तथा ऐतिहासिक घटनाओं की छोटी-मोटी तिथियाँ आदि प्रधान लक्ष्य हैं। हमारा दृष्टिकोण इसके विपरीत है। हमारे विचार से वह भी कृषक साक्षर बन चुका है जिसके दैनिक जीवन में व्याकरण के विचार से साक्षरता कम मात्रा के कारण किसी प्रकार की कठिनाई एवं रुकावट नहीं डालती। अतएव प्रौढ़ों की प्रगति की परीक्षा लेने में जो हमने परिमाण (स्टैण्डर्ड) रखा है वह इस प्रकार हैः—

(१) वाचन-परीक्षा।

अ (पद्य)—साधारणतः ग्राम्य जीवन में कृषकों को रामायण पढ़ने, आल्हा बाँचने, तथा अन्य देहाती गीत गाने में साक्षरता की आवश्यकता प्रतीत होती है। वर्त्तमान समय में अखबारों के पढ़ने की योग्यता रखना भी उनके लिए उचित है। इस विचार से पढ़ने का परिमाण (स्टैण्डर्ड) हमने यह रखा है कि जो प्रौढ़ विद्यार्थी रामायण की अपरिचित अर्थात् अपठित चौपाइयाँ, आल्हखंड के अपठित भाग तथा अन्य ग्रामीण गीत छः मास की शिक्षा से यदि धारा-प्रवाह पढ़ जाय, वह साक्षर है और पद्य-वाचन में उत्तीर्ण है। उनके पाठ्य-क्रम में रामायण का सुन्दरकाण्ड और आल्हखण्ड के माड़ौगढ़ की लड़ाई नियत है। परीक्षक को चाहिए कि अन्तिम परीक्षा लेते समय रामायण का सुन्दरकाण्ड छोड़कर अन्य अपरिचित काण्डों से परीक्षा लें, और वैसे ही बावनगढ़ की लड़ाइयों में से माड़ौगढ़ की

लड़ाई छोड़कर शेष भाग में कहीं से भी पद्य-पठन की परीक्षा लें। प्रौढ़ों से यह आशा नहीं की जा सकती कि अपरिचित गूढ़ चौपाइयों का मतलब कह सकें। किन्तु उन चौपाइयों को वे अवश्य बिना रुकावट पढ़ सकें। यह परिमाण अन्तिम परीक्षा के लिए है। उचित है कि तीन मास पश्चात् प्रौढ़-पाठशाला के विद्यार्थियों की एक विशेष परीक्षा होनी चाहिए। यदि तीन मास की अवधि में छात्र पठित-विषय अर्थात् सुन्दरकाण्ड की पठित चौपाइयाँ तथा आल्हा एवं दूसरी पोथी का पठित भाग पढ़ सकेंगे तो उन्हें त्रैमासिक परीक्षा में उत्तीर्ण समझना चाहिये।

ब (गद्य)—गद्य-पठन के लिए दूसरी, तीसरी और चौथी पोथी नियत हैं। ये किताबें अत्यन्त सरल भाषा में लिखी गई हैं। इसी मेल की साधारण भाषा तथा बड़े अक्षरों में छपी हुई किन्हीं अन्य अपरिचित पुस्तकों से परीक्षा लेनी चाहिए। जैसे, छात्र-हितकारिणी-प्रेस, प्रयाग; की जीवनियाँ। उत्तीर्ण होने के लिए छात्र को आवश्यक है कि वह अर्थ के साथ अपरिचित गद्य-भाग को सरलता से पढ़ सकें। यह परिमाण अन्तिम परीक्षा के लिए है। किन्तु तृतीय मास की परीक्षा में परीक्षक इसी बात पर संतोष करें कि गद्य का पठित भाग छात्र अर्थ समझते हुए पढ़ सकता है। तीन मास की अवधि में छात्रों की केवल दूसरी पोथी समाप्त होती है।

(२) लेखन-परीक्षा।

अन्तिम परीक्षा के समय परीक्षक को चाहिए कि वे कोई छोटी-सी कहानी कहें अथवा पढ़कर सुनायें या देहात की सीधी-सादी घटना पर बात करें और विद्यार्थियों को आदेश दें कि वे इस घटना अथवा कहानी पर एक पत्र लिखें। विद्यार्थियों द्वारा लिखित-पत्र की भाषा कभी-कभी देहाती शब्दों से भरी रहेगी और ह्रस्व तथा दीर्घ की

अशुद्धियाँ भी अधिक संख्या में मिलेंगी, किन्तु परीक्षक महोदय को इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। यदि लेख में प्रौढ़-छात्र अपने मन के भावों एवं विचारों को ठीक-ठीक प्रकट कर देता है तो इतना ही काफ़ी एवं सन्तोष-प्रद है। प्रौढ़-पाठशाला में लेखन का मन्तव्य केवल यह है कि प्रौढ़ विद्यार्थी चिट्ठी-पत्री, रसीद और अर्ज़ी आदि अपनी नित्य की बोल चाल की भाषा में लिख सकें। त्रैमासिक परीक्षा लेते समय परीक्षक छात्रों से पठित गद्य-पद्य के कुछ अंशों की नक़ल करने के लिए कहें। यदि वे शुद्ध-शुद्ध नक़ल कर सकें तो वह उत्तीर्ण समझे जायँगे।

(३) गणित-परीक्षा।

यदि प्रौढ़-छात्र महाजनों की भाँति या कोऑपरेटिव सोसायटी की रोकड़-बही लिखने की योग्यता दिखला दें और हज़ार तक के अंकों का जोड़, बाक़ी, गुणा और भाग कर सकें तो वे गणित-परीक्षा में उत्तीर्ण समझे जायँ। त्रैमासिक परीक्षा में विकारी में पैसा, आना आदि के जोड़, बाक़ी के उदाहरणों में ही परीक्षा ली जाय।

प्रमाण-पत्र

१—साक्षरता-प्रमाण-पत्र उसी छात्र को प्रदान करना चाहिये, जिसकी उपस्थिति प्रौढ़-पाठशाला में कम से कम १२० दिन रही हो। इस बंधन के लगाने का मुख्य कारण यह है कि जो छात्र ६ महीने की अवधि में कम से कम १२० दिन उपस्थित रहा है उसको अवश्य समाज में बैठकर गाने-बजाने का शौक़ बढ़ेगा। वह भजनमंडल या वाचनालय का सदस्य बनकर अपनी साक्षरता स्थिर रखेगा।

२—१५ वर्ष से कम अवस्थावाले विद्यार्थी को यह प्रमाण-पत्र न दिया जाय। यदि ग्रामसुधार के अध्यापक किशोरों को पढ़ाने के लिये

अलग दिन में क्लास लगावें सो उनके लिये प्रमाण-पत्र अन्य प्रकार का रहना चाहिये। हमारे विचार से किशोरों का पाठ्य-काल १ वर्ष और उपस्थिति २५० दिन रहना चाहिये।

३--प्रमाण-पत्र पर बाईं तरफ़ परीक्षक के हस्ताक्षर के लिये स्थान रखा गया है। दाहिनी ओर रजिस्ट्रार साहब या उनके स्थान पर असिस्टेण्ट रजिस्ट्रार साहब का हस्ताक्षर होना आवश्यक है। यदि प्रौढ़-पाठशाला सहकारी-विभाग के अतिरिक्त अन्य विभाग द्वारा जारी की गई हो तो उस विभाग के प्रधान अधिकारी रजिस्ट्रार साहब को-ऑपरेटिव-सोसायटी यू० पी० की अनुमति से हस्ताक्षर कर सकते हैं। किन्तु, यदि साक्षरता-प्रसार में सहयोग देनेवाले अन्य विभाग अपनी तरफ़ से प्रमाण-पत्र जारी करना चाहते हों तो वे भी कर सकते हैं। परन्तु प्रमाण-पत्र प्रदान करने के पूर्व इन दोनों नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है। प्रथम यह कि प्रौढ़ पाठशाला में छात्र की १२० दिन की उपस्थिति। द्वितीय उनकी १५ वर्ष से कम की अवस्था का न होना।

तृतीय खण्ड

पाठशाला का प्रबन्ध

बीसवाँ अध्याय

पाठशाला का प्रबन्ध

विगत अध्यायों में प्रौढ़-पाठशालाओं की असफलताओं के कारणों का विस्तृत वर्णन हो चुका है। इस अध्याय में हम उनकी व्यवस्था, प्रबन्ध, शिक्षकों की नियुक्ति, उनकी ट्रेनिङ्ग, पाठ्य-पुस्तक, अनुमानित पाठ्य-क्रम, उत्तीर्ण छात्रों का प्रमाण-पत्र, पाठशालाओं की देखभाल तथा उनके व्यय आदि के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करेंगे; क्योंकि इन सब बातों पर यथेष्ट ध्यान न रहने के कारण पाठशालाओं की उन्नति में बाधा पड़ती तथा बहुत-सी अर्थ-हानि होती है।

(१) पाठशाला का मन्तव्य

पूर्व अध्यायों में हम कई बार लिख चुके हैं कि अध्यापकगण प्रौढ़-पाठशालाओं को स्कूल के नाम से भूलकर भी सम्बोधित न करें। पाठशाला के आकुंचित हेतु से हमारी कार्य-सिद्धि न हो सकेगी। अध्यापक यह पूर्णतया ध्यान में रखें कि हमारी योजना के अनुसार पाठशाला एक सामाजिक संस्था है; क्योंकि हमको पाठशाला चलाने के लिए यथेष्ट आर्थिक सहायता सरकार द्वारा प्राप्त होती है। ग्राम के नवयुवकों को साक्षरता के साथ मानव-जीवन के अन्य रहस्य समझाने से ही हमारी देहात की सामाजिक संस्थायें सुचारु रूप से चल सकती हैं। केवल इसी कारण से हम उसको स्कूल के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह सत्य है कि साक्षरता-प्रदान से ही हम अपने उद्देश्य का आरम्भ करते हैं, तथापि हर समय हमारा यह लक्ष्य रहता है कि सुमति, मेल-जोल, गाने-बजाने तथा व्यायाम इत्यादि का चाव पैदा करके हमें गाँवों में एक चिरस्थायी सामाजिक संस्था की नींव डालनी है। प्रायः देखा जाता है कि यथावसर देहात में १०-१५ आदमी इकट्ठा

बैठकर अपनी विभिन्न समस्याओं के प्रति तर्क-वितर्क किया करते हैं। छोटी जातियों में जातीय झगड़े मिटाने के लिये भी पञ्चायतें हुआ करती हैं। वर्षा ऋतु में आल्हा सुनने के लिये तथा माघ-फाल्गुन में फगुआ गाने के लिये गाँव के आदमी अधिक संख्या में एकत्र हो जाते हैं। किसी-किसी गाँव में तो रामायण-मण्डली तथा नाटक खेलने की पार्टियाँ भी बनी रहती हैं। हैज़ा (बड़ की बीमारी) के पड़ने पर, सिंचाई के प्रबन्ध तथा ऐसी ही अन्य घटनाओं के उपस्थित होने पर पञ्चायतें हुआ ही करती हैं। सारांश, गाने-बजाने के लिये, आमोद-प्रमोद के लिये, गाँव की समस्याएँ हल करने के लिये, न्याय प्रदान करने के लिये तथा अन्य छोटी-छोटी बातों में गाँव का शासन करने के लिये बीच-बीच में गाँव के बहुत से आदमी इकट्ठा हो जाते हैं। यह बात भारतवर्ष के देहात के लिये नई नहीं है। हम अपनी पाठशाला द्वारा देहात के प्रौढ़ों को सुयोग्य ज्ञान देकर ऊपर निर्दिष्ट अवसरों को सार्थक बनाना चाहते हैं, जिससे गाँववालों में एकत्र होने तथा गाँव की समस्यायें हल करने की प्रगति निरन्तर बढ़ती रहे। हम गाँव में एक ऐसी पञ्चायत स्थापित करना चाहते हैं, जो उत्तरोत्तर गाँव की सार्वाङ्गिक उन्नति पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करती रहे। हमारी पाठशाला का मन्तव्य केवल साक्षरता नहीं है, किन्तु साक्षरता से आरम्भ करके हम देहात के सम्बन्ध में राष्ट्र की भावी आकांक्षाओं को पूर्ण करना चाहते है।

सहयोग-प्रवर्तक (Co-operator) इसी सामाजिक संस्था को सम्वर्द्धन करना चाहता है। अध्यापक कुछ मास तक पाठशाला चलाने के पश्चात् गाँव के नेताओं की सहायता और उनकी सहानुभूति से गाँवों में एक पञ्चायत स्थापित करे, जिसकी रजिष्ट्री "ग्राम जीवन-सुधार-समिति" नाम से कराये। ऐसी समिति द्वारा गाँव के छोटे-छोटे झगड़े—स्वच्छता, शिक्षा, और चिकित्सा का प्रबन्ध तथा कृषकों के

लिये अच्छे बीज और कृषि-सम्बन्धी उत्तम औजारों इत्यादि का भी प्रबन्ध किया जा सकता है। इस समिति के ऊपर आर्थिक उत्तरदायित्व अधिक नहीं रहता है। अध्यापकों को चाहिये कि गाँव में सहकारी सिद्धान्तों का प्रचार करें। गाँववालों में सद्भाव तथा ईमानदारी पैदा करें। इन तीनों बातों में पूर्ण सफलता प्राप्त हो जाने पर गाँव के सच्चे व्यक्तियों को ऋण देनेवाली एक समिति बनायें। एक-दो वर्ष तक सफलतापूर्वक इसके चलाने के पश्चात् वे गाँव का अन्न (गल्ला) इकट्ठा विक्रय करने तथा सिंचाई इत्यादि का प्रबन्ध करने के लिये सोसायटी को सहकारी-विभाग से आर्थिक सहायता दिला दें। इस प्रकार सामाजिक तथा नैतिक सुधार के साथ-साथ गाँवों की आर्थिक स्थिति भी सुधारने की चेष्टा करें। सहयोग-प्रवर्त्तक, का यही मन्तव्य है कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक बातों पर गाँववालों का शासन रहे। वे सहयोग से काम करें या अपने गाँव में एक "त्रिविध-हेतु सहकारी-सभा" चलायें। यदि अध्यापक यही ध्येय दृष्टि के सामने सतत रखकर काम करेंगे तो मन्तव्य की पूर्त्ति असाध्य नहीं है।

(२) पाठशाला का आरम्भ

छात्रों का निर्वाचन—हमारी साक्षरता-योजना में प्रथम ही चार्टों में भजन दिये गये हैं। जब पाठशाला आरम्भ होती है तब गाँववाले अनुभव करते हैं कि यह स्कूल नहीं है, वरन् गाने-बजाने के लिये भजन-मण्डल है। इस विचार से गाँव के बहुत से आदमी इकट्ठा होने लगते और उनमें बच्चों की संख्या भी बढ़ती है। अध्यापकों को चाहिये कि वह गाँववालों को समझा दें कि पाठशाला केवल प्रौढ़ों के लिये है, इसमें बच्चों की भर्ती का निषेध है। वह अधिकतर १८ से ३५ वर्ष के प्रौढ़ों को ही भर्ती करे। यदि गाँव में ३५ वर्ष से ऊपर की आयुवाले बुड्ढे, जिनकी दृष्टि अच्छी है, पढ़ना चाहें तो उनको अध्यापक शौक़ से पढ़ावें। प्रथम ८ या १० दिन तक ५० छात्रों को कक्षा में बैठने दें। प्रतिदिन

पाठशाला आरम्भ होते समय उनको पहली पोथी दें और पाठशाला बन्द करते समय लौटा लें। अध्यापक इस अवधि में ध्यान रखें कि कौन-कौन गम्भीरता तथा उत्साहपूर्वक पढ़ते हैं। तब ५० छात्रों में से ऐसे ४० छात्र चुनकर लेलें जो ६ मास की अवधि तक निरन्तर पढ़ेंगे। **यदि वह पहले से ही ४० छात्रों को छाँट कर लेगा** तो सम्भव है कि उनमें से ५, ६ छात्र बीच में ही निकल जायें और संभव है ८, १० भी पढ़ना छोड़ दें। यदि अध्यापक छः मास तक अपना कार्य ठीक ढङ्ग से करता रहे तो यह बात निस्संशय है कि कम से कम ३० छात्रों को वह साक्षर बना सकेगा और तभी उसका कार्य सन्तोषजनक भी समझा जायगा। इससे कम संख्या में छात्रों को साक्षरता देने में उसी प्रमाण से उसका काम उतना ही कम सन्तोषजनक समझा जायगा।

(३) पाठशाला के छात्रों की आयु

किसी गाँव में प्रौढ़ पाठशाला स्थापित करते समय बहुधा देखा गया है कि उसमें १५ से २५ साल तक के व्यक्ति पढ़ने की अधिक उत्सुकता प्रदर्शित करते हैं, इसके विपरीत, हमारा अनुभव है कि कहीं-कहीं ६ वर्ष के बच्चे और ५० साल के बूढ़े तक साथ पढ़ते हैं। हमारी समझ में १५ या १६ वर्ष से कम अवस्थावाले बच्चे कदापि न पढ़ाये जायें। पाठशाला में १६ से ४० साल तक के प्रौढ़ ही पढ़ाये जाँय। ४० वर्ष से ऊपर की आयुवाले यदि प्रसन्नता से पढ़ना चाहें तो भले ही पढ़ें, पर १५ साल से कम अवस्थावाले बच्चे कभी भी न भर्ती किये जायँ। इस प्रतिबन्ध का मुख्य कारण यह है कि बहुत से बच्चे कुशाग्र-बुद्धि होते हैं और प्रौढ़ों में दो चार बुद्धू भी आते हैं, अतः किसी अवसर पर कुछ प्रश्नों के उत्तर बच्चे तो दे देते हैं, पर वे बुद्धू प्रौढ़ नहीं दे पाते हैं, उस समय सब छात्र हँसने लगते हैं। फल यह होता है कि विशेषतया जिन प्रौढ़ों के लिये पाठशालाएँ खोली गई हैं, वे उसे छोड़

बैठते हैं। असमान अवस्थावाले अर्थात् बालक और प्रौढ़-छात्रों के सामने अध्यापक सभी प्रकार के भाव नहीं प्रगट कर सकते; क्योंकि कुछ विचार बच्चों के लिये अनावश्यक और कुछ उनकी समझ से बाहर के होते हैं। अध्यापक बच्चों के सामने विनोद भी नहीं कर सकते, यदि करते हैं, तो मानों उन्हें निर्लज्जता का पाठ पढ़ाते हैं। यह चलन बहुत ही भद्दा है। पाठशाला में अश्लील विनोद न होना चाहिये। ऐसी दशा में हमारे प्रतिबन्ध का पालन कड़ाई के साथ किया जाय। कहीं-कहीं रात्रि-पाठशालाओं में लड़कियाँ भी पढ़ाई जाती हैं, यह भी उचित नहीं है।

युक्त-प्रान्त के ग्राम-सुधार-विभाग से अध्यापकों को १२) रुपये मासिक वेतन मिलता है। इनको इतना वेतन इस ध्यान से दिया जाता है कि वे प्रौढ़ों में और अधिकतर किशोरों में शिक्षा के साथ स्काउटिङ्ग का प्रचार करें। पूरा वेतन पाने के कारण ग्राम-सुधार के अध्यापकों पर पूरे दिन काम करने का उत्तरदायित्व है। इनको चाहिये कि प्रातः समय या दिन में १ बजे से ३ बजे तक ३०, ३५ किशोरों की टोली को अलग पढ़ायें। इस टोली के विद्यार्थियों की आयु १० से १५ वर्ष तक रहे। किशोरों की अलग क्लास लेने से स्काउटिङ्ग का प्रचार करने में उनको अधिक सफलता मिलेगी, क्योंकि इस अवस्था के लड़कों में विद्या तथा स्काउटिङ्ग के सम्बन्ध में अधिक उत्सुकता रहती है। उनकी शारीरिक चपलता भी नष्ट नहीं होती। किन्तु, किशोरों को ३०, ३५ वर्ष के वृद्धों के साथ रात्रि में पढ़ाना श्रेयस्कर नहीं है। किशोर स्वभावतः चञ्चल होते हैं, क्लास में उनके उपस्थित रहने से न तो वे स्वयं ठिकाने से पढ़ेंगे न सयानों को पढ़ने देंगे। इनमें से कोई चञ्चलता से नटखटपन करेंगे, तो कोई रात्रि का समय रहने के कारण क्लास में सो जायँगे।

(४) विद्यार्थियों की संख्या

एक अध्यापक कितने छात्रों को पढ़ा सकता है यह बात भी जानने योग्य है। हमारी शिक्षा-शैली सामुदायिक होने के कारण अध्यापक को प्रत्येक छात्र की ओर अलग-अलग ध्यान नहीं देना पड़ता है। वे वैसे ही इकट्ठा पढ़ते हैं। जब अध्यापक पढ़ाता है तब गीत का एक खण्ड या पंक्ति कहने के पश्चात् सभी छात्र एक ही स्वर से वही आवाज़ उठाते हैं और पंक्ति देखते हुये पढ़ते हैं, यही ढङ्ग गद्य पढ़ने में भी रहता है। अध्यापक छात्रों के पढ़ने की योग्यता अलग-अलग जाँच करने में भी इसी सामुहिक शैली का अवलम्बन करता है अर्थात् यदि श्रेणी में कुल ३५ छात्र होंगे, तो पहिली पंक्ति पहले छात्र से पढ़वाता है। इसके पश्चात् ३४ छात्र उसी पंक्ति को एक ध्वनि में साथ-साथ पढ़ते हैं। तदनन्तर दूसरी पंक्ति दूसरे छात्र से पढ़वाता है, इसके पश्चात् ३४ छात्र उसी पंक्ति को एक ध्वनि में साथ-साथ पढ़ते हैं। तदनन्तर तीसरी पंक्ति तीसरे छात्र से पढ़वाता है और शेष विद्यार्थी उसी को दुहराते हैं। इस प्रकार प्रत्येक छात्र से एक, दो या तीन-तीन पंक्तियाँ पढ़वाकर उनके पढ़ने के विषय में जाँच करता है। इस सामुहिक पाठन-पद्धति से जो लाभ होते हैं, उनके सम्बन्ध में हम मनोवैज्ञानिक मीमांसा में यथेष्ट प्रकाश डाल चुके हैं। उन लाभों के अतिरिक्त सामुदायिक पढ़ाई से यह लाभ और होता है कि जब अध्यापक एक छात्र के पढ़ने की जाँच करता है, तब और छात्रों का ध्यान भी उसी पाठ की ओर केन्द्रित रहता है, वे भी पठन-कार्य में लगे रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य व्यक्तिगत शैलियों में साधारणतया यह बात पाई जाती है कि अध्यापक जब एक छात्र से पढ़वाता है तब दूसरे छात्रों का ध्यान इधर-उधर रहता है। वे कभी खेलते हैं और कभी शोर मचाते हैं। सामुहिक शैली में चाहे कार्य अध्यापक

के गीत सुनने का हो या पुस्तक पढ़ाने का हो, सब छात्रों का ध्यान एक ही कार्य की ओर केन्द्रित रहता है।

४० से अधिक छात्रों को एक अध्यापक नहीं पढ़ा सकता। किन्तु यदि वह ३० से कम छात्रों को पढ़ायेगा तो प्रौढ़-छात्रों पर किया हुआ माध्यम व्यय भी बढ़ जाता है। साधारणतया ट्रेण्ड अध्यापक ३५ छात्रों को भली-भाँति पढ़ा सकता है। अध्यापक को चाहिये कि रजिस्टर में ४० छात्रों की भर्ती करे। इन छात्रों से छः मास तक प्रति-दिन रात्रि को २ घण्टा उस समय का सब काम छोड़कर पाठशाला में उपस्थित रहने की प्रतिज्ञा ले। जिनके प्रति-दिन आने का भरोसा न हो, अध्यापक उन्हें भूलकर भी पाठशाला में भर्ती न करे। प्रौढ़-पाठशाला में जहाँ तक सम्भव हो १८ से ३५ साल की आयु-वाले ही पढ़ाये जायँ, इससे अध्यापक को अधिक सफलता मिलेगी।

किशोर-श्रेणी में भी अध्यापक ३०, ३५ किशोरों को पढ़ाये। किशोरों की पठन-अवधि कम से कम १ वर्ष की रखे, किन्तु सयानों के लिये छः मास की अवधि ही पर्याप्त है। यदि ग्राम-सुधार के अध्यापक प्रति-वर्ष ६० प्रौढ़ों तथा ३० किशोरों में साक्षरता तथा नागरिकता का ज्ञान दे सकेंगे, तो समझना चाहिये कि अध्यापक ने एक बहुत बड़ा देश-हित का कार्य किया। हमारी सामुहिक शैली के अनुसार किशोरों के लिये भी अलग पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। इस शैली के अनुसार यदि अध्यापक ढङ्ग से काम करेगा, तो प्रति वर्ष ९० अनपढ़ों को साक्षर बनाकर देश-सेवा करने का श्रेय प्राप्त कर सकता है।

(५) छात्रों से फ़ीस ली जाय या नहीं ?

हमारे विचार से प्रत्येक प्रौढ़ या किशोरों से एक आना मासिक फ़ीस लेना अनुचित न होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि फ़ीस की

रक़म से ही छात्रों को पाठ्य-पुस्तकें या अध्यापकों का वेतन दिया जायेगा। फ़ीस लगाने की सिफ़ारिश हम निम्नलिखित कारणों से करते हैं।

(१) मनुष्य स्वभावतः मुफ़्त मिले हुये पदार्थ का आदर नहीं करता। हमारा अनुभव है कि जब तक छात्रों से फ़ीस नहीं ली जाती, तब तक वे स्कूल के आने में टाल-मटोल करते हैं; किन्तु जब उन्हें फ़ीस देनी पड़ती है, तब वे प्रतिदिन उपस्थित रहते हैं; क्योंकि उनको शिक्षा-प्राप्ति में कुछ व्यय करना पड़ता है। मसौदा ज़िला फ़ैज़ाबाद में हमने पहले सन् १९०३ ई० में प्रौढ़-शिक्षा का प्रचार किया था और तब शिक्षा निश्शुल्क रखी थी। थोड़े दिन पश्चात् यह देखने में आया कि प्रौढ़ों की उपस्थिति असंतोषजनक हो रही है। यह प्रश्न हल करने के लिये हमने शिक्षा सशुल्क कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि पाठशाला में शिक्षा के प्रेमी ही रह गये इधर-उधर व्यर्थ की बातें करनेवाले, जो केवल हँसी-मज़ाक के लिये ही आते थे, चले गये; शिक्षा-प्रदान का कार्य भी गम्भीरता से होने लगा और थोड़े ही दिनों में उपस्थिति सन्तोषजनक होने लगी। इसका कारण यह है कि जब कभी १८ या २० साल का लड़का पढ़ने नहीं जाता था, तब उसके मा-बाप उसे डाँट कर कहते थे, हम तुम्हारे पढ़ने की फ़ीस दे रहे हैं और तुम इधर-उधर घूमते हो।

हमारा विशेषतया कथन यह है कि जब तक किशोरों को पढ़ाने के लिये अध्यापक फ़ीस नहीं लगायेगा तब तक उसको किशोरों की पढ़ाई में सफलता यथा-तथा ही मिलेगी। किशोरों की फ़ीस उनके मा-बाप को ही देनी पड़ती है। उनका इस अवस्था में लड़कों के ऊपर यथेष्ट नियन्त्रण रहता है। यह सम्भव है कि खेल-कूद के आकर्षण से किशोर शिक्षा के प्रति अपना उत्तरदायित्व ठिकाने से न समझेंगे, किन्तु किशोरों के मा-बाप को शिक्षा-शुल्क देने में जो

अड़चनें पड़ती हैं, उनको समझने के कारण वे किशोर छात्रों की उपस्थिति ठिकाने से करवायेंगे।

(२) प्रौढ़-पाठशाला या किशोर-पाठशाला स्थापित करने का मन्तव्य प्रौढ़ों और किशोरों को केवल साक्षर बनाने का ही नहीं है। सच्चा मन्तव्य यह है कि वे साक्षर बनकर अपनी साक्षरता क़ायम भी रखें। यह बात वाचनालय या भजन-मण्डल खोलने से ही प्राप्त हो सकती है। कम से कम एक दो साप्ताहिक या मासिक, समाचार-पत्र और पत्रिकायें यदि उनके ज्ञानार्जन के लिये आया करेंगी, और गाँव के साक्षर आदमी उसको पढ़ा करेंगे, तो उनकी साक्षरता बनी रहेगी तथा उन्हें संसार में होनेवाली घटनाओं का भी यथावसर ज्ञान हुआ करेगा। अब प्रश्न यह है कि इन भजन-मण्डलियों तथा वाचनालयों के लिये आर्थिक सहायता कहाँ से प्राप्त होगी। गाँव में प्रौढ़-पाठशाला ६ महीने और किशोर-पाठशाला १ साल तक रहेगी। क्या पाठशाला बन्द होने के पश्चात् गाँव में पुनः अज्ञानान्धकार और मनहूसी का साम्राज्य लाना उचित है? पाठशालाओं में फ़ीस लेने की प्रथा का प्रथम उद्देश्य यह है कि गाँववाले पुस्तकालय तथा भजन-मण्डली चलाने के लिये चन्दा देने के अभ्यासी हो जायँ। अध्यापक छात्रों को भली भाँति समझा दें कि फ़ीस या चन्दे की जो रक़म उनसे प्राप्त होगी, वह ग्राम-सुधार के केन्द्र या यूनियन में नहीं भेजी जायगी, वरन् उनके भजन-मण्डल में ही रहेगी। पढ़नेवाले छात्रों में से ही कोई कोषाध्यक्ष (ख़ज़ाञ्ची) चुना जायगा, इस प्रकार किया हुआ चन्दा या फ़ीस भजन-मण्डल की आमदनी होगी और उससे वे समाचार-पत्र, गाने की पुस्तकें, प्रकाश के लिये लेम्प तथा ढोलक, मजीरा इत्यादि गाने-बजाने के सामान मँगा सकते हैं अर्थात् जो कुछ भी व्यय होगा, वह उनके ही लाभार्थ उनकी सलाह से तथा उन्हीं के हाथों से होगा। इस स्थल पर अध्यापकों से हम यह

भी कहना चाहते हैं कि यदि प्रौढ़-पाठशाला के सदस्य चन्दे का कुछ अंश तम्बाकू या प्रसादी में व्यय करना चाहें तो कुछ आपत्ति नहीं है। हमारे विचार से यह व्यय इष्ट भी है; क्योंकि प्रसादी या तम्बाकू उसी दिन दी जायेगी कि जिस दिन गाँव के साधारण लोगों को गाने-बजाने तथा अन्य वार्तालाप के लिये आमन्त्रित करते हैं। यह दिन पाठशाला के गाने-बजाने का प्रधान दिवस है, इस दिन हाज़िरी बराबर ली जाती है, किन्तु यह दिन पञ्चायत-दिन मनाने का आरम्भ भी है। प्रौढ़-पाठशाला के छात्रों की फ़ीस का भाग तम्बाकू या प्रसादी में व्यय करने से गाँव के अन्य लोगों का ध्यान भी इस सम्बन्ध में आकर्षित होगा।

फ़ीस या चन्दा लेने के सम्बन्ध में हम अध्यापक को यह भी सूचित करना चाहते हैं कि प्रत्येक छात्र की फ़ीस नियत करना प्रौढ़ों की सम्मति पर ही निर्भर रहेगा। किसी की फ़ीस माफ़ करना या किसी को दण्ड देना, यह प्रौढ़-पाठशाला की पञ्चायत द्वारा ही निश्चित करना चाहिए। फ़ीस वसूल करने के पश्चात् गाँव के किसी ईमानदार व्यक्ति के पास कोष रखा जाये। अध्यापक अपने ऊपर इसका व्यर्थ उत्तरदायित्व न ले। व्यय करने तथा वसूली के सम्बन्ध में भी पञ्चायत की "कार्यवाही पुस्तक" में दर्ज करे। अध्यापकों के लाभार्थ हम यह भी सूचित करते हैं कि सम्भवतः प्रथम दो मास तक फ़ीस या चन्दे का नाम लेने से कुछ छात्र चौंक जायँगे, वे इस भ्रम में पड़ेंगे कि हमारे ऊपर यह नया टैक्स लगाया जा रहा है। अध्यापक को चाहिए कि पाठशाला का कार्य-क्रम डेढ़-दो मास तक सुचारुरूप से चलाने के पश्चात् फ़ीस की चर्चा क्लास में करे। सम्भव है कि प्रथम वे इसे न स्वीकार करें, किन्तु उन्हें बार-बार समझाने की आवश्यकता है कि छः मास पश्चात् प्रौढ़-पाठशाला की क्या दशा होगी। यदि छात्र अन्त तक चन्दा या

फ़ीस के सम्बन्ध में निरुत्साह ही रहें, तो अध्यापक भी अपनी हठ छोड़ दे और उनको यह समझा दे कि पाठशाला बन्द होने के पश्चात् उनके छः मास तक अनवरत किये हुए परिश्रम व्यर्थ हो जायँगे। यदि साक्षर अपने पैरों पर खड़े होकर वाचनालय या भजन-मण्डल न चलायेंगे तो उनमें से अधिकांश सात-आठ माह के पश्चात् पुनः निरक्षर हो जायँगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

३—अध्यापकों को चन्दा या फ़ीस के सम्बन्ध में तीसरी बात हम यह बताना चाहते हैं कि चन्दा या फ़ीस वसूल करने का क्या ढंग होना चाहिए। देहात में पैसा दुर्लभ है, किन्तु लेन-देन में अनाज की कोई क़द्र नहीं। यदि पाठशाला के छात्र अनाज ही फ़ीस या चन्दे के स्वरूप में देना चाहते हैं, तो कोई आपत्ति नहीं है। प्रति-छात्र से प्रति-मास १ सेर गेहूँ या डेढ़ सेर धान लेना ही पर्याप्त होगा। परन्तु वसूली का ढंग हर समय यही रहेगा कि सभी छात्र नियत फ़ीस या चन्दा नियत तिथि पर एक साथ दें। वसूली का कार्य गाँव के श्रेष्ठ तथा सज्जन पुरुषों के सामने ही हो और चन्दे का अनाज उनके सामने ही गाँव के बनिये के हाथ विक्रय कर दिया जाये। किसी प्रकार की रक़म की, जो भजन-मण्डल के लिए प्राप्त हो, रसीद भी चन्दा देनेवाले को दे देनी चाहिए। वसूली का विवरण तथा चन्दे का इन्दराज रजिस्टर में जलसे के लिए नियत किये हुए स्थान पर तथा रोकड़ बही में तुरन्त होना चाहिये। कार्य-वाही पर उपस्थित सदस्यों के हस्ताक्षर भी आवश्यक हैं। पाठ-शालाओं के लाभार्थ रसीद-बुक मेसर्स पी० सी० द्वादशश्रेणी एण्ड कम्पनी, अलीगढ़ द्वारा छापी गई हैं। प्रत्येक रसीद-बुक में १०० रसीदें रहती हैं और उसका मूल्य १ आना रखा गया है। पुस्तकों के साथ ही इन्हें भी वहाँ से मँगा लेना चाहिए।

८—प्रौढ़-पाठशाला की अवधि

प्रौढ़-पाठशाला का कार्य-क्रम एक गाँव में एक श्रेणी के लिये केवल ६ मास का होता है। अतएव अध्यापक को चाहिये कि शिक्षा-कार्य ठीक रीति से चलाएँ और विद्यार्थियों को भी समझा दें कि इस अवधि में वे यथेष्ट लाभ उठाएँ। यह बात सर्वथा निश्चित है कि यदि वे अपना पाठ्य-क्रम ६ मास के अन्दर समाप्त न करेंगे तो भी छः मास पश्चात् तेल का व्यय तथा अध्यापक का वेतन न मिलेगा और छात्र अपनी लापरवाही और आलस्य का फल भोगते रहेंगे। किसी प्रौढ़ों की टोली के लिये एक या दो साल तक स्कूल चलाना अव्यवहार्य है।

९—प्रौढ़ पाठशाला की छुट्टी

यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि सप्ताह में रविवार के दिन पाठशाला बन्द रक्खी जाय। इसकी अपेक्षा फ़सल बोने तथा कटने के समय पर पन्द्रह-पन्द्रह दिन की छुट्टी तथा त्यौहारों के दिन छुट्टी देना श्रेयस्कर है।

अध्यापकों को विदित है कि सप्ताह में मङ्गलवार या अन्य कोई दिन रामायण तथा अन्य गाने बजाने के लिये उसको निश्चित करना है। सच पूछिये तो यह छुट्टी का ही दिन है। उस दिन अध्यापक को समाचार-पत्र पढ़कर सुनाना है, या गाँववालों के लाभार्थ कथा प्रवचन या व्याख्यान की व्यवस्था करनी है। उस दिन प्रौढ़-छात्रों की हाज़िरी अवश्य ली जायगी, पर यह पञ्चायती दिन है, जिस दिन गाँव के सभी आदमी इकट्ठा हो मनोविनोद करते हैं। इस पञ्चायत दिवस के अतिरिक्त रविवार की और छुट्टी देना किसी विचार से उचित नहीं है।

१०—समय-विभाग-चक्र

पाठशाला प्रारम्भ होने के पश्चात् पहला आधा घंटा पढ़ने के लिये, दूसरा आधा घंटा लिखने के लिये, तीसरा आधा घंटा गद्य पढ़ने के

लिये और चौथा आधा घंटा गणित के लिये देना उचित होगा। पाठशाला का आरम्भ प्रार्थना से किया जाय और पाठशाला की समाप्ति सामुहिक ढङ्ग से पहाड़े पढ़ाकर की जाय।

११—छात्रों के बैठने की व्यवस्था

इस समय यह प्रश्न उपस्थित होता है कि छात्रों को किस ढंग से बिठाया जाय या इनकी पंक्तियाँ कैसी रहें, श्यामपट कहाँ रखा जावे। प्रकाश के लैम्प कहाँ और कितने अन्तर पर रक्खे जायँ। छात्रों के बैठने के लिये टाट, जाजिम और अध्यापक के बैठने के लिये कुर्सी मेज़ की व्यवस्था रहे या नहीं, इत्यादि।

अध्यापकों के लाभार्थ हम नीचे छात्र किस ढंग से बिठाये जायँ इनके सम्बन्ध में आकृति दे रहे हैं:—

श्यामपट

अध्यापक की बैठक

छात्रों की पंक्ति

लैम्प ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

छात्रों की पंक्ति
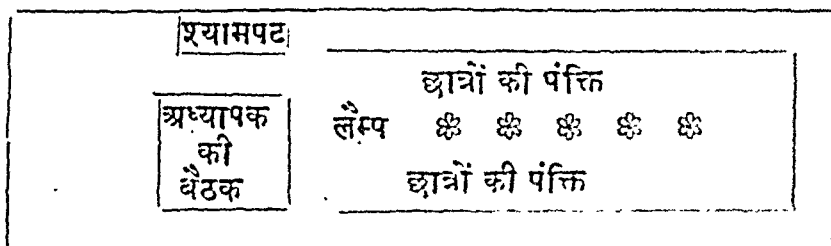
छात्रों की दो लम्बी पंक्तियाँ आमने-सामने बिठाई जायँ। एक-एक पंक्ति में पन्द्रह-पन्द्रह छात्र आराम से पल्थी मारकर बैठें। दोनों पंक्तियों के बीच लगभग आठ-आठ फ़ीट का अन्तर रहे।

पाँच लैम्प एक पंक्ति में ५-५ फ़ीट के अन्तर पर रखे जायँ। इनको रखने के लिये लकड़ी के स्टूल इत्यादि में पैसे व्यय करना बेकार है। अध्यापक को चाहिये कि देहात के कुम्हार से दो-दो फ़ीट ऊँचे ५ गमले एक दूसरे में बैठनेवाले बनवा ले और गमले उलटे रखकर उन्हीं पर लालटेन रखा करे। लकड़ी के स्टूल तथा अन्य उपकरणों से गमले रखने में अध्यापक को अधिक सुविधा मिलेगी; क्योंकि पाठशाला

बन्द करने के पश्चात् गमले एक दूसरे में बैठाकर एक स्थान पर रख सकता है। ऐसे गमले या दीवट बनाने के लिये व्यवस्थापक चार-छः आने व्यय करे। कहीं-कहीं प्रौढ़-पाठशालाओं में लालटेन रखने की व्यवस्था ठीक नहीं पाई जाती। बहुत से ऐसे भी स्कूल देखे गये हैं, जहाँ लालटेन जमीन पर ही रखी जाती है। ऐसा करने से लैम्प का प्रकाश अच्छा और अधिक छात्रों को नहीं मिल सकता। कहीं-कहीं छप्पर में रस्सियाँ बाँधकर लालटेनें लटकाई जाती हैं। इसमें आग लगने का भय रहता है और अधिक आक्षेप की बात यह है कि हवा से तथा छात्रों के आने-जाने से लैम्प पर धक्का पहुँचता है, जिससे प्रकाश अस्थिर हो जाता और पढ़नेवालों के नेत्रों को कष्ट होता है।

पढ़ाते समय अध्यापक दोनों पंक्तियों के बीच में से न घूमा करें, किन्तु मन्द गति से दोनों पंक्तियों के पीछे से घूमकर छात्रों के पढ़ने की ओर ध्यान रखें। पंक्तियों के बीच में घूमने से अध्यापक की छाया विद्यार्थियों की किताबों पर पड़ेगी, तथा उनकी पठन-क्रिया में अध्यापक के घूमने फिरने से बाधा पड़ेगी। उचित यही है कि अध्यापक विद्यार्थियों के पीछे से ही निरीक्षण करता रहे कि विद्यार्थी किताब ठिकाने से पढ़ रहे हैं या नहीं। हमारी शिक्षा-शैली सामुहिक रहने के कारण कक्षा के सभी छात्र एक ही विषय, एक ही शब्द, एक ही पंक्ति तथा अक्षर एक ही समय पढ़ते हैं। इस कारण से पीछे से घूमने से निरीक्षण भी यथेष्ट होता है। अध्यापक को चाहिये कि अपनी गति में स्थिरता रखे, बेकार हाव-भाव से शिक्षा-क्रिया में बाधा होती है। जब अध्यापक श्यामपट पर कोई बात छात्रों को समझाता है तब भी उसकी गति के सम्बन्ध में यही बात सत्य है।

अब हम छात्रों के बैठने के लिये जाजिम या टाट देने के सम्बन्ध में अपने विचार सञ्चालकों तथा अध्यापकों के लाभार्थ व्यक्त करेंगे।

प्रचुर जन-समूह को शिक्षा-प्रदान का विस्तृत कार्य देखते हुए तथा उनके शिक्षार्थ प्राप्त अल्प-निधि देखकर हमें यही निश्चित करना होगा कि पाठशालाओं के लिये वही वस्तुएँ हम देंगे जो अनिवार्य हैं। केन्द्र या यूनियन उन वस्तुओं के देने में ही व्यय करें जो कि शिक्षा के लिये परमावश्यक हैं और जिनके लिये प्रौढ़ छात्र व्यय न कर सकें। हमने अपनी योजना में मुफ्त पुस्तकें, कापियाँ, एक-एक पेन्सिल, श्यामपट, खड़िया, पाँच-पाँच लालटेनें तथा उनके तेल का व्यय देने की सिफ़ारिश की है। इनमें से कोई वस्तु देने के सम्बन्ध में यदि हम हिचकिचाहट प्रकट करेंगे तो शिक्षा का कार्य असन्तोप जनक ही रहेगा, क्योंकि देहाती किताब या तेल के लिये कभी व्यय न करेंगे और यदि करेंगे तो भी ठिकाने से नहीं करेंगे। किन्तु, उनके बैठने का प्रश्न वैसा नहीं है। यह देखा गया है कि देहाती वैसे ही जमीन पर बैठते हैं। कभी-कभी अपने कंधे का अँगोछा भी बिछाकर बैठते हैं। यदि हम उनके लिये जाजिम या टाट न दें तो किसी प्रकार की रुकावट शिक्षा-कार्य में न होगी। यदि विद्यार्थी अपनी फ़ीस या चन्दे की रक़म से जाजिम मोल लेकर सभ्य बन कर क्लास में बैठेंगे तो हमें हार्दिक आनन्द होगा। अध्यापक को चाहिये कि छात्रों को जाजिम का प्रबन्ध करने के लिये उत्साहित करे। यह जाजिम पंचायत तथा छात्रों के प्रतिदिन बैठने के काम आयेगी।

देहाती लोग साधारणतया बैठने के लिये पीढ़े अथवा नरकुल या अन्य घास की चटाइयाँ बना लेते हैं।

पाठशाला के प्रौढ़ छात्र अपने-अपने लिये पीढ़ा या चटाई अलग-अलग बनालें या सब मिलकर बनालें तो कोई त्रुटि नहीं है। जाड़े के दिनों में अध्यापक मिट्टी के रहा बैठाकर पयाल बिछवा दें और छात्र उस पर अपनी चटाई या अँगोछा बिछाकर बैठें, जिससे बैठने का स्थान गर्म रहे।

प्रौढ़ पाठशालाओं में अध्यापकों के बैठने के लिये कुर्सी मेज़ देने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि इसके ऊपर होनेवाला व्यय हमारे विचार से व्यर्थ है। यदि अध्यापक चाहे तो विद्यार्थियों की सहायता से अपने बैठने के लिये ऊँचा चबूतरा या व्यास-पीठ बनवा ले। किन्तु, सबसे अच्छी व्यवस्था यह होगी कि प्रौढ़-पाठशाला के सञ्चालक पाठशाला के लिये एक बड़ी और पुष्ट लकड़ी की सन्दूक दें कि जिसमें अध्यापक अपने रजिस्टर, दवात, क़लम तथा पुस्तकें इत्यादि रख सकें। वही सन्दूक़ छात्रों की दोनों पंक्तियों के बीच सिरे पर बन्द रखकर अध्यापक अपने बैठने का अच्छा आसन भी बना सकता है।

१२—पाठशाला का भवन

आरम्भ में पाठशाला किसी प्रतिष्ठित पुरुष के बैठक या चौपाल में लगाना ही ठीक होगा। किन्तु अध्यापक और सञ्चालक को चाहिये कि शीघ्र गाँव के बाहर पाठशाला लगाने के लिये सहयोग से एक चौपाल तैयार कर ले। जिस गाँव में किशोरों की शिक्षा भी जारी करनी है, उसमें पाठशाला के लिये गाँव के निकट ऐसी एक चौपाल बनाने की आवश्यकता पड़ेगी। अध्यापक को किशोर छात्र भी पाठशाला की तैयारी में बहुत सहायता करेंगे। यदि अध्यापक छात्रों को यथोचित उत्साह देंगे तो गाँव के प्रत्येक बाँस की कोटि से दो दो बाँस या प्रत्येक घर से दो-दो सरपत या अन्य फूस के बोझ मिलना कठिन नहीं है। पहले-पहल बल्लियाँ लगाकर केवल छप्पर ही डाल लिया जाय। इसके पश्चात् किशोरों तथा प्रौढ़ों की सहायता से मिट्टी की दीवारें भी उठाई जा सकती हैं।

अध्यापकों को चाहिए कि जहाँ के छात्र पाठशाला की कच्ची दीवारें उठाने के लिए तैयार हों, उनके लाभार्थ केन्द्र या यूनियन से

६०) तक की सहायता दिलाने की चेष्टा करें। इस रक़म का व्यय केवल दरवाजे, खपरैल, वल्लियों तथा कड़ियों के लिए ही होना चाहिए। विद्यार्थियों से जो कच्ची दीवारें उठाने के लिए सहायता मिलती है उसको प्रतिदिन डेढ़ या दो आना के हिसाब से उनके नाम से प्रौढ़ पाठशाला की फ़ीस या चन्दा समझकर जमा करे तो इसमें भी आपत्ति नहीं है।

अध्यापक छात्रों को तथा गाँववालों को ऐसी पंचायती चौपाल का महत्त्व समझा दे। यह चौपाल छः मास के पश्चात् वाचनालय या भजन-मण्डल की बैठक के लिए काम में आयेगी। पंचायत की बैठक भी उसी चौपाल में हुआ करेगी। चौपाल ऐसी जगह बनाई जाय कि जिसके सामने खेल-कूद तथा स्काउटिंग के लिए विस्तृत मैदान हो और जिसके समीप पानी पीने के लिए एक पक्का कुवाँ भी पहले ही से बना हो। चौपाल के निकट बरसात के दिनों में अखाड़ा भी खोदा जाय। छात्रों को भली-भाँति समझा दिया जाय कि किसी प्रतिष्ठित पुरुष की बैठक में बहुत काल तक स्कूल चलाना अनुचित है; क्योंकि ऐसे स्थान पर गाना-बजाना करने से प्रतिष्ठित पुरुषों के कुटुम्बियों को कष्ट होगा तथा दूसरे की दालान में बैठने से हँसी-मज़ाक़ या अपने स्वतंत्र-विचार प्रकट करने में बाधा पड़ेगी। गाँव के विरले ऐसे भी व्यक्ति मिलते हैं जो दूसरों के दरवाजे पर जाने के सम्बन्ध में अपना आक्षेप प्रदर्शित करते हैं। गाँववालों को इस ढंग से समझा देना चाहिए कि गाँव में कोई साधु-सन्त या किसी के यहाँ बारात आये तो उसके ठहरने के लिए ऐसा स्थान काम में आवेगा। खुले चौपाल से मिली हुई दो कोठरियाँ बनाना भी ठीक होगा। एक में वाचनालय की पुस्तकें और दवा का बक्स रहे और दूसरी कोठरी में सुपरवाइज़र, ऑर्गेनाइज़र या अन्य निरीक्षक आने पर अपने भोजन तथा रहने का प्रबन्ध कर सकेंगे।

१३—रजिस्टर्स

शान्तिपुर शिक्षा-योजना के अनुसार चलनेवाली प्रौढ़-पाठशालाओं के लिए एक ख़ास रजिस्टर छपाया गया है। उसका मूल्य पहले ।।) रखा था, किन्तु लड़ाई के कारण काग़ज़ में जो मँहगी हुई है उसी के विचार से केवल मँहगी के दिनों तक ।।=) करने की आज्ञा "मैसर्स पी० सी० द्वादशश्रेणी ऐण्ड कम्पनी" अलीगढ़ को दे दी है। यह रजिस्टर प्रौढ़ पाठशाला की दो टोलियों के लिए या ग्राम-सुधार के अध्यापकों के लिए प्रौढ़ों की एक टोली तथा किशोरों की एक टोली के लिए यथेष्ट है। इस किताब में निम्नलिखित रजिस्टर हैं :—

नाम रजिस्टर	र० में पृष्ठ सं०
१—प्रौढ़ पाठशाला का अनुमित पाठ्य-क्रम परीक्षा आदि	२
२—प्रौढ़ पाठशाला की प्रगति का रजिस्टर	३
३—रजिस्टर दाख़िला व रजिस्टर ख़ारिजा	४ और ६
४—विद्यार्थियों के परीक्षा-फल का रजिस्टर	५ ,, ७
५—स्टाक रजिस्टर	८ ,, १०
६—विद्यार्थियों को दी हुई किताबों एवं वस्तुओं के हिसाब का रजिस्टर	९ ,, ११
७—रजिस्टर-हाज़िरी ८—अध्यापक की डायरी	१२ से ३९
९—निरीक्षण-रजिस्टर	४० से ४३
१०—जलसा-कार्यवाही का रजिस्टर	४४ से ४७
११—रोकड़-बही	४८

अध्यापक को चाहिये कि क़िताब में हर समय स्याही से इन्दराज करें। पेंसिल से इन्दराज करने का अत्यन्त निषेध है, क्योंकि पेंसिल का इन्दराज मिटाकर उसके स्थान पर दूसरा इन्दराज किया जा

सकता है। यदि स्याही से इन्दराज करने में अध्यापक से कोई भूल हो जाय, तो उसको सुधारने के लिये अक्षर के ऊपर अक्षर लिखने की भद्दी चेष्टा न करे। ऐसा करना निन्दनीय है। इन्दराज करते समय भूल का हो जाना साधारण बात है, किन्तु उसको छिपाने का प्रयत्न करना और भी निन्द्य है। ऐसी परिस्थिति में अध्यापक ग़लत इन्दराज लाल स्याही से काटे और उसके पास ही अपना हस्ताक्षर करके कटे हुये इन्दराज के ऊपर या नीचे ठीक इन्दराज करे।

रजिस्टर दाख़िला और रजिस्टर ख़ारिजा

पृष्ठ ४ और ६ क्रमशः प्रथम और द्वितीय छमाही पाठशालाओं के लिये हैं। कालम ६ में विद्यार्थी की पिछली शैक्षणिक जानकारी स्पष्ट रूप से अध्यापक दर्ज करे। सम्भव है कि दाखिला चाहनेवाला छात्र बचपन में किसी स्कूल में एक या दो साल पढ़ा हो या चौथा दर्जा भी पास हो, ऐसे विद्यार्थियों को भर्ती करने में कोई आपत्ति नहीं है। अध्यापक इन बातों का ठीक इन्दराज करे। यह भी सम्भव है कि वह छात्र पुनः निरक्षर हो गया हो अथवा अक्षर या शब्द कठिनता से पहचानता हो। अक्षर या शब्द पहिचान की जितनी जानकारी हो उसका भी इन्दराज होना चाहिये।

इस किताब में एक-एक टोली के ४० विद्यार्थियों के नामों का इन्दराज करने के लिये स्थान रखा गया है। यह इस विचार से कि अध्यापक एक टोली में ३० या बहुत हुआ तो ३५ विद्यार्थियों को पढ़ावे, किन्तु वह आरम्भ में (चालीस) ४० प्रौढ़ों को इकट्ठा भर्ती करे, सम्भव है कि इनमें से ७ या ८ किसी न किसी कारण से पढ़ना छोड़ दें। अध्यापक को चाहिये कि एक टोली को शिक्षा आरम्भ करने के पश्चात् एक सप्ताह तक ही नये आनेवाले विद्यार्थियों को बैठने दे। एक सप्ताह के पश्चात् भर्ती करना बिलकुल बन्द करदे।

देरी तक भर्ती करने का परिणाम यही होगा कि विद्यार्थियों की प्रगति भिन्न-भिन्न होगी और शिक्षा कार्य में भी अध्यापक की कठिनाई बढ़ेगी। एक सप्ताह पश्चात् केवल वही छात्र भर्ती किये जायँ, जिन्हें पहले कुछ शिक्षा मिली हो।

परीक्षा-फल का रजिस्टर

परीक्षा-फल के लिये पृष्ठ ५ और ७ पहली तथा दूसरी छमाही टोलियों के लिये रखे गये हैं।

इस रजिस्टर में छात्र का नं० दाखिला, क्रम-संख्या और नाम-प्रौढ़ इतने कालमों का इन्दराज अध्यापक करे। शेष सब कालमों का इन्दराज परीक्षक करेगा। जैसे; ता० परीक्षा जिस अवधि की प्रगति की परीक्षा ली जाती है, इत्यादि। अध्यापक परीक्षक को अवधि-परीक्षा में जितने दिन स्कूल लगा होगा तथा उसमें जितने दिन प्रत्येक छात्र पाठशाला में उपस्थित रहा होगा, इत्यादि बातों के सम्बन्ध में सहायता करे।

वाचन, लेखन, हिसाब तथा स्काउटिंग में छात्रों को परीक्षक निम्नलिखित ढंग से नम्बर दें:—

जिस छात्र की प्रगति अत्यन्त संतोषजनक होगी या परीक्षक के विचार से छात्र को ७५ प्रतिशत से अधिक नम्बर मिलना चाहिये उसको 'A' अथवा 'अ' दे जिसकी प्रगति सन्तोषजनक है अथवा जिसको ५० प्रतिशत से ७५ प्रतिशत तक नम्बर मिल सकते हैं, उसको 'B' या 'ब' दे, जिसकी प्रगति साधारण है अथवा जिसको ३० से ५० प्रतिशत तक नम्बर मिल सकते हैं उसको 'C' या 'स' दे, और जिसकी प्रगति असंतोषजनक है अथवा ३० प्रतिशत से भी कम नम्बर मिल सकते हैं। उसे 'D' या 'द' दे।

परीक्षक छात्रों की परीक्षा लेने के पश्चात् तथा उनको उचित नम्बर देने के पश्चात् नियत कालम में अपना हस्ताक्षर, पद तथा तारीख़ लिख दे।

स्टाक-रजिस्टर

पृष्ठ ८ और १० स्टाक रजिस्टर के लिये रखे गये हैं।

कालम ७ पर नोट—यदि प्रौढ़-पाठशाला या भजन-मण्डल के व्यय से कोई वस्तु मोल ली जाय तो उनका भी इन्दराज पाई हुई वस्तुओं के साथ क्रम से स्टाक-रजिस्टर में होना चाहिये। व्यय की रसीदों के ऊपर सिलसिले से नम्बर देना चाहिये। कालम नं० ७ में अध्यापक को दी हुई रसीदों के नम्बरों का इन्दराज करना चाहिये।

कालम नं० ८, ९, १०, ११, १२ और १३ वस्तुओं का व्यय दिखाने के लिये दिये गये हैं। जैसे; अध्यापक को ता० १-५-३९ को पहली पोथी की ५० प्रतियाँ मिलीं, उसने ता० १०-५-३९ को ९ प्रतियाँ, १३-५-३९ को ४ प्रतियाँ तथा १५-५-३९ को ३ प्रतियाँ विद्यार्थियों को बाँट दी। अब कालम ८-९ और १० का इन्दराज कैसे होगा।

$\frac{९}{१०-५-३९}$, $\frac{४}{१३-५-३९}$, $\frac{३}{१५-५-३९}$ क्रमशः ८, ९, १० कालम में होगा?

विद्यार्थिओं को दी हुई वस्तुओं का हिसाव

यह हिसाव रखने के लिये पृष्ठ ९ और ११ रखे गये हैं। कालम ३ से १५ तक वस्तुओं के नाम लिखने के लिये हैं। जैसे; पहली पोथी, नोट-वुक, पेंसिल, लिपि-कापी इत्यादि।

कालम नं० २ में अध्यापक सव विद्यार्थियों के नाम क्रमशः लिखे और जिस मात्रा में जो वस्तु वह विद्यार्थी को देता है, उसका इन्दराज करे और इन्दराज करने का ढंग वही रखे $\frac{\text{संख्या}}{\text{ता० माह, सन्}}$ जैसे;

ता० ९-५-३९ को किसी वस्तु की ४ प्रति दी गईं तो इस प्रकार लिखा जायगा $\frac{४}{९-५-३९}$ ।

निरीक्षक को चाहिये कि अपने निरीक्षण में स्टाक-रजिस्टर को भी जाँच करे तथा उसके उपयोग की भी ठीक जाँच करे।

रजिस्टर हाज़िरी व फ़ीस

इस रजिस्टर के बिना पाठशाला का कार्य कहीं भी नहीं चल सकता। इस रजिस्टर रखने का विशेष उद्देश्य यह होता है कि छात्रों की उपस्थिति के सम्बन्ध में कुछ प्रमाण निरीक्षक को मिलें, किन्तु खेद की बात यह है कि इस रजिस्टर का सर्वत्र प्रचार रहने के पश्चात् भी यह प्रमाण के लिये यथेष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। इसका मुख्य कारण अध्यापकों का आलस्य तथा फ़र्ज़ी हाज़िरी भरने की चेष्टा है। प्रौढ़ों की हाज़िरी हमारी योजनानुसार प्रार्थना के पश्चात् तुरन्त ले ली जाय। हाज़िरी-रजिस्टर के बारे में हमारे देखने में बहुत-सी विचित्र बातें आई हैं। पर विस्तार भय से उन्हें हम लिखना नहीं चाहते। हमें ऐसे बहुत से स्कूलों के रजिस्टर भी देखने को मिले हैं कि जिनमें आठ-आठ दिन तक हाज़िरी नहीं ली गई थी। कहीं-कहीं ऐसा भी देखने में आया है कि जिन छात्रों ने महीनों से स्कूल की ओर भूल कर भी न देखा हो उनकी हाज़िरी रजिस्टर में पूरे महीने की ली गई थी। अपने निरीक्षण में हमें ऐसी भी हास्यास्पद घटनाएँ देखने में आई हैं कि हमारे एकाएक पहुँचने के पश्चात् पाठशाला बन्द मिली और अध्यापक से हाज़िरी रजिस्टर माँगने के पश्चात् महाशय ने घर में जाकर हाज़िरी भरना आरम्भ कर दिया और शीघ्रता में दो चार दिन आगे की भी हाज़िरी लगा दी। अधिकतर फ़र्ज़ी हाज़िरी भरे रजिस्टर भी मिलते हैं। परन्तु, अध्यापक को ऐसी बातें न करनी चाहिये। सचाई से मुँह मोड़ना मानवता का

अपमान करना है। अतएव अध्यापकों को हमारी सूचना है कि वे प्रार्थना के पश्चात् उपस्थित छात्रों की हाज़िरी भर लें। उस समय जो अनुपस्थित हैं वह अनुपस्थित ही रहेंगे और उन्हें सीधे घर जाने का आदेश दें।

महीना समाप्त होने पर दो-तीन दिन के अन्दर फ़ुट-नोट के सब इन्दराज अध्यापक भर दें। जैसे; महीने में कितने दिन स्कूल जारी रहा, संख्या छात्र, मुन्दर्ज रजिस्टर बाबत फ़ीस (अ) वसूली (ब) जुर्माना (स) कुल।

अध्यापक की डायरी

अध्यापक पाठशाला बन्द करने के पश्चात् उसी दिन अपने काम की डायरी लिखे, यह काम और छात्रों की दैनिक हाज़िरी का मीज़ान लगाना दूसरे दिन पर न छोड़े। क्लास में जो नया पाठ पढ़ाया जाय या जो पुराना पाठ दुहराया जाय उसका संक्षिप्त (ख़ुलासा) लिखे। इस प्रकार लेखन, हिसाब तथा स्काउटिंग के सम्बन्ध में भी विवरण दे। डायरी लम्बी चौड़ी लिखने की तथा फुटकर बातों के विवरण की आवश्यकता नहीं है।

निरीक्षण-रजिस्टर

पाठशाला के रजिस्टर में निरीक्षण लिखने के लिये १६ स्थान रखे गये हैं। निरीक्षक को निम्नलिखित बातों पर नोट देने की अत्यन्त आवश्यकता है।

१—तारीख निरीक्षण

२—निरीक्षण का समय

३—संख्या छात्र मुन्दर्ज रजिस्टर

४—निरीक्षण के दिन छात्रों की उपस्थिति

५—पिछले महीने की औसत हाज़िरी

प्रत्येक पाठशाला में निरीक्षण के फ़ार्म-बुक "मैसर्स पी० सी० द्वादशश्रेणी ऐण्ड कम्पनी" अलीगढ़ से छपाये गये हैं। प्रति किताब का मूल्य =)। रक्खा है। इस किताब में ३२ फ़ार्म दिये गये हैं। इसके साथ ही साथ दो कार्बन भी दिये जाते हैं। फ़ार्म की रचना इस ढंग से की गई है कि स्कूल रजिस्टर में दिये हुए मुआइना लिखने के स्थान को ये फ़ार्म पूरा ढक सके। निरीक्षक को चाहिये कि इस पुस्तक का एक फ़ार्म निकाल स्कूल रजिस्टर पर मुआइना लिखने की नियत जगह पर कार्बन रख कर लिखे, ताकि रजिस्टर पर मुआइना की एक कार्बन की नक़ल रह जाय और दूसरी केन्द्र में या पाठशाला प्रचारक के पास भेज दी जाय।

फ़ार्म के एक ओर निरीक्षक के जाँच करने के लिए १९ प्रश्न उद्धृत किये गये हैं। निरीक्षक इन प्रश्नों के सम्बन्ध में जाँच करके मुआइना लिखे। फ़ार्म के दूसरी ओर का पृष्ठ ख़ाली रखा है। इस पृष्ठ पर आवश्यकतानुसार निरीक्षक अध्यापन की योग्यता, उसकी सफलता, पाठशाला का प्रबन्ध, स्काउटिंग, खेल-कूद, बैठने-उठने का प्रबन्ध, भजन-मण्डली की दशा इत्यादि के सम्बन्ध में अपने मत प्रकट करे। यह बात आवश्यक नहीं है कि वह एक ही निरीक्षण में सब बातों पर मत प्रकट करने की चेष्टा करे, किन्तु जो बात उसको उचित जँचे उसी पर अपना स्वतन्त्र सविस्तर विचार लिखे।

जलसे वा कार्यवाही-रजिस्टर

प्रति मास की पहली तारीख़ को अध्यापक प्रौढ़-पाठशाला या भजन-मण्डल का एक जलसा करे। जलसे में नियमानुसार कार्य-वाही पुस्तक पर पाठशाला लगाने का समय पाठशाला का प्रबन्ध, फ़ीस तथा जुर्माना, खेल-कूद, गाना बजाना, स्काउटिंग इत्यादि कार्य-सम्बन्धी प्रस्ताव लिखे और उन पर यथेष्ट वाद-विवाद होने

के पश्चात् निर्णय लिखे, जलसा समाप्त होने पर सभी प्रौढ़ छात्रों के हस्ताक्षर ले लेना चाहिए।

तीन या चार महीने के पश्चात् जव कि प्रौढ़ छात्रों में लिखने-पढ़ने की योग्यता आगई हो उस समय कार्यवाही-किताव पाठशाला के मानीटर को लिखने को दी जाय, आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक सहायता देता रहे। इस प्रकार छः महीने के अन्दर अपना भजन-मण्डल तथा वाचनालय किस ढंग से चलाना है, इसकी ट्रेनिंग प्रौढ़ों को अध्यापक दे। धीरे-धीरे प्रौढ़-पाठशाला चलाने का उत्तर-दायित्व छात्रों पर ही छोड़ दिया जाय। यदि आवश्यक समझा जाय तो प्रौढ़-पाठशाला की को-आपरेटिव सोसाइटी वनाकर उसकी रजिस्टरी भी कराई जाय।

प्रौढ़-पाठशाला अथवा भजन-मण्डल के जलसे लिखने के लिये १६ जगहें रजिस्टर में रखी गई हैं।

प्रौढ़-पाठशाला के रजिस्टर में पाठशाला का अनुमानित पाठ्य-क्रम पृष्ठ २ पर दिया गया है। इस अनुमानित पाठ्य-क्रम से अध्यापक को प्रत्येक मास में कितना और क्या-क्या पढ़ाना है, इसकी सूचना मिलती है। परीक्षक के लिए भी जाँच करने में अनुमानित पाठ्य-क्रम से सहायता मिलेगी।

रजिस्टर के तृतीय पृष्ठ पर प्रौढ़-पाठशाला की प्रगति लिखने के लिए दो फ़ार्म छपे हुए हैं। वे इसी उद्देश्य से दिये गये हैं कि दो टोलियों का इन्दराज यहाँ किया जा सके, चाहे वह दोनों टोलियाँ केवल प्रौढ़ों की छः छः महीने की हों अथवा एक टोली प्रौढ़ों की और दूसरी किशोरों की हो।

उसी पृष्ठ पर पाठशाला के व्यय के सम्बन्ध में दो टोलियों के लिये दो फ़ार्म दिये गये हैं।

अध्यापक को चाहिये कि इन दोनों फ़ार्मों में बराबर इन्दराज करता रहे ताकि प्रौढ़-पाठशाला की प्रगति तथा व्यय के सम्बन्ध में निरीक्षक को दृष्टि-क्षेप से ही जानकारी हो जाय। इसके अतिरिक्त वर्ष के अन्त में तमाम साल के काग़ज़ात बनाने में भी सुविधा मिलेगी।

रसीद बुक तथा रोकड़-बही

पाठशाला में जो फ़ीस या चन्दा लिया जाता है, उसकी रसीद देने के लिए एक रसीद-बुक छपायी गई है मूल्य -) प्रति बुक जिसमें १०० रसीदें रहती हैं।

पृष्ठ ४८ पर भजन-मण्डली या प्रौढ़-पाठशाला की आमदनी तथा व्यय लिखने के लिए रोकड़-बही का फ़ार्म दिया गया है। यह आवश्यक नहीं है कि यदि एक ही दिन दो-चार स्थानों से आमदनी हो या दो-चार स्थानों पर व्यय करना हो तो उन सब का इन्दराज अलग-अलग किया जाये।

अध्यापक एक तारीख़ की कुल आमदनी तथा कुल व्यय का एक ही इन्दराज करे। आमदनी तथा व्यय के सम्बन्ध में अधिक विस्तृत विवरण कार्य-वाही किताब में दर्ज करे।

अध्यापकों की मासिक प्रगति-रिपोर्ट

पाठशाला की मासिक प्रगति की रिपोर्ट केन्द्र में भेजने के लिये प्रगति-रिपोर्ट के फ़ार्म पुस्तक रूप में "मैसर्स पी० सी० द्वादशश्रेणी ऐण्ड कम्पनी," अलीगढ़ से छपाये गये हैं; प्रति पुस्तक का मूल्य =)। हैं।

प्रगति-रिपोर्ट के फ़ार्म की एक ओर १८ प्रश्नों के सम्बन्ध में विवरण अध्यापक ठिकाने से लिखें। इस फ़ार्म की दूसरी ओर अध्यापक (१) पाठशाला के सम्बन्ध में, (२) प्रगति के सम्बन्ध में, (३) काम में

पड़नेवाली कठिनाइयों के सम्बन्ध में तथा अधिकारियों से चाहने-वाली सहायताओं के सम्बन्ध में लिखें।

मासिक प्रगति-रिपोर्ट के प्रति कुछ और आवश्यक सूचनायें हम यहाँ देना उचित समझते हैं:—

(१) इस पुस्तक में प्रगति-रिपोर्ट के ३२ फ़ार्म तथा दो कार्बन भी दिये गये हैं। अध्यापक को चाहिये कि प्रत्येक मास को पाँचवीं तारीख़ के पूर्व ही गत-मास की प्रगति-रिपोर्ट केन्द्र में भेज दे।

(२) स्कूल के रजिस्टर के पृष्ठ ३ पर दो नक़शे दिये गये हैं। उसकी भी ख़ानापुरी अध्यापक महीने की पाँचवी तारीख़ के भीतर ही कर दें, ताकि आवश्यकता पड़ने पर प्रारम्भ से प्रौढ़-पाठशाला की मासिक प्रगति की नक़ल भेज सकें।

(३) संचालकों को चाहिये कि मासिक प्रगति-रिपोर्ट के प्रश्न नं० ४ की ओर अधिक ध्यान दें। यदि पाठशाला की औसत हाज़िरी ३० से कम हो तो प्रति सात प्रौढ़ के पीछे एक लालटेन के तेल का व्यय अर्थात् ।।।) कम कर दें।

(४) अध्यापक कभी-कभी पन्द्रह वर्ष से कम अवस्था के लड़के भर्ती करते हैं, ऐसा करने से वे अपनी कठिनाई स्वयं बढ़ाते हैं। हमारी प्रौढ़-पाठशाला में १५ वर्ष से कम आयु के बालकों को पढ़ाना मना है, संचालकों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

(५) संचालकों को चाहिये कि अध्यापक से प्रौढ़-पाठशाला की मासिक-प्रगति-रिपोर्ट न पाने पर उसका वेतन तथा प्रकाश का व्यय रोक दें; क्यों कि यह दोनों व्यय स्कूल की प्रगति पर निर्भर रहने चाहिये।

इक्कीसवाँ अध्याय

प्रौढ़-शिक्षा-प्रचारकों के लिये दो शब्द ।

गत अध्यायों के पढ़ने से प्रौढ़-शिक्षा-प्रचारकों को विदित होगा कि हमारी प्रौढ़-शिक्षा की योजना केवल साक्षरता के लिये ही नहीं है। हम साक्षरता तो देहातियों को हँसते-खेलते, गाते-बजाते ही दे सकते हैं और इस योजना के अनुसार देते भी हैं, किन्तु हमारी योजना का मन्तव्य इससे कहीं बढ़कर है। हमारे विचार से केवल साक्षरता न व्यक्ति की, न समाज को उन्नति का कारण हो सकती है। साक्षरता मनुष्य-मात्र के पास एक कला-रूप में रहती है, जिसका उपयोग करके वह अपना, अपने परिवार तथा समाज की भलाई कर सकता है। कला या औज़ार के बिना काम भी नहीं चल सकता, किन्तु इनका महत्त्व कला और औज़ार तक ही रहेगा। सामाजिक ध्येय की पूर्ति के लिए यह कला या औज़ार है। हमारी शिक्षा-योजना का ध्येय देहात में नया जीवन उत्पन्न करना है। गाँव की सब जातियों और समस्त धर्मानुयायियों का संघटन करके उनको आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नतिशील पथ पर लगाना है; उनमें अपना ग्रामीण व्यवसाय तथा शासन सुचारुरूप से चलाने की योग्यता उत्पन्न करना है। पाठकों के ध्यान में यह बात आई होगी कि इन विचारों का प्रतिविम्ब हमारी शिक्षा-शैली, पाठ्य-क्रम, प्रौढ़-पाठशाला की व्यवस्था, पाठशाला के अध्यापक का निर्वाचन तथा उसकी ट्रेनिंग-शिक्षा सम्बन्धी बातों पर पड़ा है।

इस अध्याय में सञ्चालकों के लाभार्थ प्रौढ़-पाठशाला की व्यवस्था, उनका निरीक्षण, अध्यापकों का निर्वाचन, उनकी ट्रेनिंग, पाठशालाओं

का व्यय, वाचनालय या भजन-मण्डल में स्थायी रखने के लिये सहायता आदि विषयों पर विचार करने का आयोजन किया है।

प्रौढ़-शिक्षा का विधान

जहाँ तक होसके, वहाँ तक प्रौढ़-पाठशालाएँ एक ही क्षेत्र में जारी करना चाहिये।

खेद की बात यह है कि जहाँ-तहाँ प्रौढ़-पाठशालाएँ निरक्षरता-निवारणार्थ सद्भाव से ही जारी की जाती हैं, पर यह पाठशालाएँ किसी-किसी दशा में कभी १५—२० दिन और कभी ८—१० महीने, और कभी २—३ वर्ष तक रेंग कर चलती हैं। ऐसी दशा में न देहात के किसान साक्षर होते हैं और न इन प्रौढ़-पाठशालाओं से उन्हें कुछ सामाजिक लाभ होता है। आज तक के अनुभव से कहना पड़ता है कि इस प्रकार से बिना सोचे-विचारे प्रौढ़-पाठशालाएँ खोलना, उन्हें जिस-तिस भाँति चलने देना और अन्त में कुछ फल न होते देख हताश होकर उन्हें बन्द कर देना, इसमें हमारी अर्थ-हानि और शक्ति-हानि दोनों ही हो रही हैं। इतना ही नहीं, हमें इस बात का भय है कि जैसे ४० वर्ष पूर्व बम्बई प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर साहब ने अपने वक्तव्य में कहा था कि 'प्रौढ़-पाठशालाएँ न आज ठीक चलती हैं और न भविष्य में चलेंगी', ऐसा ठप्पा मारकर प्रौढ़-शिक्षा-आन्दोलन को धक्का पहुँचाया था, उसी प्रकार आज कल भी बिना सोचे-समझे प्रौढ़-पाठशाला चलाने का भी वैसा ही परिणाम होने की सम्भावना है। ऐसा करना इन प्रौढ़-पाठशालाओं के मार्ग में जो राष्ट्रोत्थान करने का हेतु बननेवाली हैं, बाधा डालना है।

श्रेयस्कर पथ तो यह है कि प्रौढ़-शिक्षा के सञ्चालक प्रौढ़-शिक्षा का मन्तव्य समझकर अपने कार्य-क्षेत्र के लिये कम से कम ३ वर्ष का कार्य-क्रम बनालें; अध्यापक का निर्वाचन ठिकाने से करें और उसे

योग्य शिक्षा दिलायें। इन तीन वर्ष के भीतर अध्यापक के ऊपर उसके क्षेत्र के कम से कम ५० प्रतिशतक प्रौढ़ों की निरक्षरता दूर करने का उत्तरदायित्व रख दें। यह कार्य अधिकतर सरकारी या अर्द्ध-सरकारी विभागों द्वारा हो सकता है। जैसे; रूरल-डवलपमेंट, केग्रन-डवलपमेण्ट और को-ऑपरेटिव सोसाइटियों द्वारा। प्रौढ़-शिक्षा में इन्हीं विभागों को अधिक सफलता मिलने की सम्भावना है; क्योंकि इनके कर्मचारी देहातियों की रीति-भाँति, टेवों, भावनाओं तथा रहन-सहन के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान रखते और ग्रामीणों के मस्तिष्क से अपना मस्तिष्क लड़ाकर कार्य करने के अभ्यासी होते हैं।

जहाँ तक हो सके पाठशालाएँ एक क्षेत्र के भीतर ही जारी की जायँ। ऐसा करने से आन्दोलन में तथा कार्य-पूर्ति में बहुत-सी सुविधाएँ होती हैं। जैसे; अध्यापकों को वार-वार सूचना देना, उनको कार्य की रूप-रेखा समझा देना तथा उनका समुचित निरीक्षण रखना। ऐसा करने से शैक्षणिक वातों तथा अन्य सुधार की वातों में, देहात की उन्नति के सम्वन्ध में, योग-स्पर्द्धा उत्पन्न होगी। कार्य-क्षेत्र के सब ग्रामों के लाभार्थ केन्द्रिय औषधालय, केन्द्रिय-वाचनालय, केन्द्रिय-पशुचिकित्सालय, केन्द्रिय-आर्बिट्रेशनबोर्ड अर्थात् आपस के झगड़े मिटाने की समिति, तथा आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिये सरकारी बैंक की शाखा की स्थापना की जा सकती है। इन सुविधाओं से प्रत्येक गाँव और गाँव के व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं। कभी-कभी केन्द्र में कुश्तियों के दंगल, रामायण या फगुआ-दलों के जोड़, स्काउटिंग की रैली या अन्य देहाती खेलों तथा खेती सम्वन्धी प्रदर्शन आदि का आयोजन किया जा सकता है। हमारे विचार से, यदि हमारी शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा योजना से भी केवल साक्षरता ही दी जावे तो वह चाहे दूसरे विचारों से कैसी ही अच्छी हो, तो भी यदि इससे

देहात में नव-जीवन न उत्पन्न किया जा सका तो इस योजना से आधा ही काम लिया गया ऐसा ही समझा जायगा।

प्रौढ़-पाठशालाओं का निरीक्षण

प्रौढ़-पाठशालाओं का निरीक्षण करने के लिये जब तक कोई विशेष ट्रेण्ड-अफ़सर न नियत किया जायगा, तब तक प्रौढ़-पाठशाला की प्रगति वैसी ही रहेगी। कभी-कभी अध्यापक अपना उत्तरदायित्व पर्याप्त रूप में नहीं समझते, कभी-कभी उनको समय-समय पर सूचनाएँ देने की आवश्यकता होती है और कभी-कभी गाँव में अन्तःस्थ फूट रहने के कारण पढ़ाई में बाधा पड़ने की सम्भावना रहती है। यह भी देखा गया है कि ऐसे ट्रेण्ड-अफ़सर के अभाव में अध्यापकों को उनका वेतन, प्रकाश-व्यय और पाठशाला चलाने की सामग्री समय पर नहीं मिलती और प्रौढ़-पाठशालाओं के सम्बन्ध में उनकी प्रगति अथवा दशा-प्रदर्शक-चक्र (नक़्शे) नहीं बनते। इन सब बातों का प्रौढ़-पाठशालाओं के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। आज-कल ग्राम-सुधार विभाग, केन-डवलपमेण्ट-विभाग, तथा को-ऑपरेटिव सोसायटी से प्रौढ़-शिक्षा प्रसारार्थ पर्याप्त धन व्यय हो रहा है। श्रेयस्कर बात तो यह होगी कि हम अपने सामने ऐसा लक्ष्य रखें कि हम जितना व्यय प्रौढ़-शिक्षा प्रसारार्थ कर रहे हैं उससे अधिक से अधिक फल मिले। व्यय की प्रत्येक पाई यथेष्ट लाभ देती है, यह देखने के लिये कोई तो ट्रेण्ड-अफ़सर रहे कि जिसको इन पाठशालाओं का कार्य-भार सौंप दिया जाय।

प्रौढ़-शिक्षा-निरीक्षक की योग्यता, ट्रेनिङ्ग और उसका कार्य

हमारे विचार से प्रौढ़-पाठशाला का निरीक्षक-अफ़सर अच्छा पढ़ा-लिखा मनुष्य रहे। बी० ए० न हो तो कम से कम इण्टरमीडियेट

उत्तीर्ण तो हो, तदुपरि शौक़ीन और तन्दुरुस्त हो। इस विचार से निर्वाचित निरीक्षक को कम से कम ३ महीना ट्रेनिङ्ग देना चाहिए। इस ट्रेनिङ्ग में प्रौढ़-शिक्षा का मन्तव्य, पढ़ाने की शैली, परीक्षा लेना इत्यादि विषयों के अतिरिक्त स्काउटिङ्ग, देहाती खेल-कूद, देहाती गाने तथा ढोल बजाना, सार्वाङ्गिक ग्राम-सुधार के कार्यक्रम का ज्ञान मिलना चाहिये। इस कार्य के लिये ग्राम-सुधार-विभाग के स्काउट मास्टरों में से हमारे प्रदेश के प्रत्येक जिले का एक-एक मास्टर ट्रेण्ड हो चुका है। केन-डवलपमेण्ट-विभाग से भी यह नीति निश्चय हो चुकी है कि उनका निरीक्षक अफ़सर स्काउटिङ्ग और प्रौढ़-शिक्षा में यथेष्ट ट्रेण्ड रहे।

प्रौढ़-पाठशाला के अध्यापक

हमारे विचार से विना सोचे-विचारे आजकल जो प्रौढ़-पाठशालाएँ चलाई जाती हैं। उनकी असफलता के बहुत से कारणों में से निम्नलिखित तीन विशेष महत्त्वपूर्ण कारण हैं:—

(१) पाठशाला का मन्तव्य उसकी रूप-रेखा तथा उसके भविष्य के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार का अभाव।

(२) किसानों को कार्य-क्षम बनाने के लिये सुयोग्य पाठ्य-क्रम का अभाव और पाठ्य-क्रम के अनुसार निर्धारित पुस्तकों का अभाव।

(३) चाहे जिस लिखे-पढ़े आदमी को अध्यापक के स्थान पर नियुक्त कर देना।

कारण नं० १, २ पर हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। हमारी योजना के अनुसार प्रौढ़-पाठशाला का अध्यापक गाँव का एक भावी नेता है, जिसके नेतृत्व में गाँव उत्तरोत्तर प्रगति पर रहे। इस कार्य की पूर्ति के लिये अध्यापक में स्वाभाविक योग्यता की आवश्यकता है। सभी आदमी नेता नहीं बन सकते। अध्यापक में यह स्वाभाविक

शक्ति भी चाहिये और स्वाभाविक शक्ति के अतिरिक्त उसको ऐसी ट्रेनिङ्ग भी मिलना चाहिये कि जिससे वह अपना कार्य सुचारु रूप से चला सके। केवल इसी कारण कि लिखा-पढ़ा आदमी है उसको पाठशाला का अध्यापक नियुक्त कर देना भ्रमात्मक कल्पना है। अध्यापन एक कठिन कला है। ३०—४० छात्रों को अपने नेतृत्व में पढ़ाने के लिये उसमें इन छात्रों पर शैक्षणिक-शासन करने की शक्ति भी चाहिये। उसका उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध होना चाहिये। विशेषतया अध्यापन एक ऐसी कला और शास्त्र है, जो विना ट्रेनिङ्ग प्राप्त नहीं हो सकता। अतएव अध्यापक का निर्वाचन निम्नलिखित वातों तथा योग्यताओं पर होना चाहियेः—

(१) अध्यापक को आयु २० वर्ष से अधिक और ३० वर्ष तक की होनी चाहिये। यदि उसकी अवस्था २० साल से कम होगी तो प्रौढ़-छात्रों पर उसका शासन ठीक न रहेगा और यदि ३० साल से अधिक आयु का रहेगा तो अधिकतर निरुत्साही और निर्जीव-सा होगा।

(२) जिस गाँव में पाठशाला चलानी हो अध्यापक सम्भवतः उसी गाँव या पड़ौस के गाँव का स्थायी रहनेवाला हो। यह वन्धन हम निम्नलिखित विचारों से रखना चाहते हैंः—

(अ) अध्यापक गाँव का स्थायी रहनेवाला रहने के कारण गाँव-वालों का उसके ऊपर विश्वास अधिक रहेगा। एक देहाती कहावत है, "गँवार गँवारों को अधिक मानते हैं।" शहरी तथा वाहर का आदमी चाहे जितना पढ़ा-लिखा और ज्ञानी तथा सुशिक्षित रहे, गाँववालों का उसके ऊपर पूरा विश्वास न रहने के कारण वह उतना कार्य-क्षम न हो सकेगा।

(ब) गाँव का स्थायी रहनेवाला होने के कारण प्रौढ़-पाठशाला वन्द होने के पश्चात् जव उसका रूप भजन-मण्डल में परिवर्त्तित हो

जायगा और सरकारी सहायता बन्द हो जायगी, तब यह स्थायी-निवासी अपना काम छोड़ न देगा; क्योंकि थोड़े दिन पाठशाला का अध्यापक रहने के कारण उसमें नेतृत्व का शौक़ उत्पन्न होगा।

(स) गाँव का रहनेवाला होने के कारण गाँव के अन्य कार्यों में सहायता करेगा। अतः जो धन या शक्ति उसके ट्रेनिंग के ऊपर तथा उसको समय-समय पर उपदेश देने में व्यय हुई होगी, उसका लाभ गाँववालों को सतत मिलता ही रहेगा। जो शिक्षा हम उसको स्काउटिंग तथा सहयोग में देंगे वह उसके द्वारा गाँव में स्थिरता पायेगी।

(द) संसार में उपदेश की अपेक्षा उदाहरण का अधिक प्रभाव होता है। देहात में बहुत सी बातें देखा-देखी से फैलती हैं अर्थात् दूसरों का अनुकरण करने से। हमारा ट्रेण्ड-अध्यापक उन्नत पथ पर रहने के कारण अपने बालकों को टीका लगवाता है, अपने मकान की लिपाई-पुताई कराकर स्वच्छ रखता है, अपने बालकों को पाठशाला में भेजता है, अच्छे बीज और सुधारे हुए औज़ार लाकर खेती में उन्नति करता है, बैठे-बैठे कभी-कभी सूत भी कातता है और अपने हाथ का बुना हुआ कपड़ा पहनता है। यह सब तथा अन्य समयोचित उपयोगी बातें गाँव में गाँव के रहनेवाले अध्यापक के अनुकरण से ही फैलेंगी। हमारा अध्यापक एक जीता जागता उदाहरण गाँव में रहेगा। इसे अँग्रेजी में Living Demonstration कहते हैं।

(३) अध्यापक के निर्वाचन में शैक्षणिक मर्यादा रखना भी उचित है। अतः अध्यापक वर्नाक्युलर-फ़ाइनल-परीक्षा उत्तीर्ण हो या कम से कम नवीं कक्षा तक की अँगरेज़ी शिक्षा पाया हुआ हो। यदि कोई वर्नाक्युलर-फ़ाइनल-परीक्षा में भले ही असफल रहा हो, किन्तु लिखने-पढ़ने की अच्छी योग्यता रखता हो और गाने-बजाने का प्रेमी हो तो, हमारे विचार में, उसके निर्वाचन में कोई आपत्ति नहीं है। कभी-कभी ऐसे अध्यापक अधिक सफल होते हैं।

(४) अध्यापक गाँव के किसी प्रभावशाली तथा सम्पन्न (खुश-हाल) कुटुम्ब का हो, जिससे उसे समाज-सेवा करने के लिये अवकाश मिले।

(५) गाना-बजाना, विशेषतया देहाती गाने का शौक़ (रुचि) रखनेवाला हो।

(६) देहाती खेल-कूद में अभिरुचि रखनेवाला हो और हर समय प्रसन्नचित्त रहनेवाला हो। मुर्दादिल या मुहर्रमी शक्लवाले अपनी मनहूसियत की छटा गाँव पर छिटकायेंगे। मनहूसियत भी अन्य संक्रामक रोगों की तरह एक छूत का रोग ही है।

(७) विशेषतया उसका स्वास्थ्य ठीक हो, देखने में ऊँचा और तगड़ा हो, जिससे उसके शासन और स्काउटिंग में उसका यथेष्ट प्रभाव पड़े।

(८) गाते समय चौपाइयों तथा गीतों की पंक्तियों का उच्चारण स्पष्ट और शुद्ध कर सके।

(९) गाँव के नवयुवकों का संघटन करने की योग्यता रखने-वाला हो।

(१०) गाँववालों से समानता का बर्त्ताव रखनेवाला हो और जिसमें पहले से ही गाँव की सेवा का अंकुर भी हो।

(११) अध्यापक के निर्वाचन में, उसकी जन-प्रियता के सम्बन्ध में, गाँववालों की सम्मति लेना भी उचित है; क्योंकि यदि गाँववाले पहले ही से उसके विरुद्ध होंगे तो वह न अध्यापन का कार्य्य ठीक कर सकेगा और न भविष्य में कभी नेता बन सकेगा।

प्रौढ़-पाठशाला की पुस्तकें तथा अन्य सामग्री

हम अपनी योजना में कार्य-क्षमता पर अधिक बल देते हैं। यह देखा गया है कि कहीं-कहीं प्रौढ़-पाठशाला चलाने के लिये केवल

उत्तेजनार्थ संचालक आधा या पूरा वेतन देने का आश्वासन देते हैं। कहीं-कहीं प्रौढ़ों के पढ़ने के लिये वाल-कक्षाओं में प्रचलित पुस्तकें देने का आश्वासन देते हैं। कहीं-कहीं प्रकाश के लिये पूरे तेल और कहीं-कहीं आधे तेल के व्यय देने का वचन देते हैं। निरीक्षण का प्रवन्ध यथा-तथा ही रहता है। यह भी सुनने में आता है कि पाठशाला आरम्भ करते समय अध्यापक को जो थोड़े-वहुत सहायता के आश्वासन दिये थे, पाठशाला की प्रगति असंतोषजनक रहने अथवा अन्य कारणों से विवश होकर संचालक पूरे नहीं कर सके। इस प्रकार से जारी की हुई पाठशालाओं से यथेष्ट फल-प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है। सहायता के सम्वन्ध में अध्यापक पहले से ही साशंक रहते हैं, अतः अपने काम में भी शिथिल रहते हैं। रजिस्टर-हाज़िरी में उन्हीं प्रौढ़ों का नाम दर्ज करते हैं, जिन्होंने वालपन में शिक्षा पाई है। पाठशाला कभी-कभी लगती है, किन्तु अधिकतर वन्द ही रहती है। संचालक या किसी अफ़सर के निरीक्षणार्थ आने की पहले से सूचना मिलजाने से उपस्थिति अत्यन्त संतोषजनक या १०० प्रतिशतक तक रहती है। संचालक या निरीक्षक के सामने पहले से ही रटे हुए पाठ पढ़वाने का या पहले से ही अभ्यस्त नाटक का प्रदर्शन वड़ी प्रवीणता से कराया जाता है। संचालक तथा निरीक्षक पाठशाला की प्रगति पर संतोष व्यक्त करते हैं और अन्त में संचालक और निरीक्षक की जयघोष के साथ उस दिन का समारम्भ समाप्त किया जाता है। यही दृश्य लगभग सभी पाठशालाओं का है।

इसमें अर्थ हानि तथा शक्ति-हानि दोनों हो जाती हैं। इससे केवल रिपोर्ट अच्छी वन सकती है।

इन सब त्रुटियों के दूर करने के विचार से हमने अपनी योजना में अध्यापकों की ट्रेनिंग, पाठशालाओं के निरीक्षण आदि वातों पर ज़ोर दिया है। संचालकों को उचित है कि वे पाठशालाओं के लिये

पुस्तकें तथा अन्य सामग्री यथेष्ट दें। यदि छात्रों को पढ़ने के लिये किताबें न दी जायँ या प्रकाश का प्रबन्ध ठीक न हो, तो पाठशाला के काम में बाधा पड़ेगी; प्रौढ़ों के शिक्षा-दान में शिथिलता आयेगी, परन्तु अध्यापक अपने वेतन का अधिकारी अवश्य होगा। अतएव संचालकों को चाहिये कि इन बातों में पाठशाला के आरम्भ से ही यथेष्ट प्रबन्ध करदें और छः महीने के भीतर कम से कम ३० निरक्षर प्रौढ़-छात्रों को साक्षर बनाने का उत्तरदायित्व अध्यापक के ऊपर रखदें।

प्रौढ़-पाठशाला रात्रि में लगती हैं। इनमें पढ़नेवाले छात्र अधिकतर दिन की धूप में काम करनेवाले रहते हैं। अतः उनकी आँखों की शक्ति वैसे ही कमजोर रहती है, इसलिये सञ्चालकों को चाहिये कि वह प्रकाश का अच्छा प्रबन्ध करें। हमारी योजना के अनुसार ५ लालटेन यानी ७ छात्रों के प्रति एक लालटेन देना आवश्यक है। देहात के किसान छात्र कापी और पेंसिल के लिये खर्च करने में हिचकिचायेंगे और यदि वे खर्च करेंगे तो समय पर न करेंगे अर्थात् शिक्षा में बाधा अवश्य डालेंगे। पुस्तकों के सम्बन्ध में भी यही बात है वे कभी किताबें न खरीदेंगे।

विशेषतया हमारी योजना की शिक्षा-शैली प्रारम्भिक शिक्षा-शैली के विपरीत या विभिन्न है अर्थात् प्रारम्भिक कक्षा में साक्षरता-प्रदान में रचनात्मक शैली प्रचलित है तो हमारी योजना में विश्लेषणात्मक शैली है। लिखना सिखाने में भी ऐसी ही बात पाई जाती है। गणित सिखाने में जहाँ प्राथमिक कक्षाओं में संख्या की जोड़-बाक़ी से आरम्भ करके मेन्टल अरिथमेटिक (जबानी हिसाब) मनोविकास के लिये पढ़ाते हैं, उसके विपरीत हमारी प्रौढ़-पाठशाला में हम व्यावहारिक तथा महाजनी हिसाब-किताब पढ़ाने पर जोर देते हैं।

प्राथमिक कक्षा की किताबों में कौवा, चिड़िया, बन्दर आदि की काल्पनिक कहानियाँ रहती हैं, उनका महत्त्व बालक की आयु के ऊपर है। लड़के बड़े होने के पश्चात् उन किताबों को कभी न देखेंगे अर्थात् किताबों का महत्त्व तात्कालीन ही रहता है, किन्तु हमारी योजना के पाठ्य-क्रम में वही किताबें रखी गई हैं जो कि देहातियों की रुचि की हैं। काव्य, अलङ्कार, तथा साहित्य के विचार से वे अमर हैं। जैसे मीराबाई, कबीर तथा सूरदासजी के गाने और तुलसीदासजी की रामायण, आल्हा आदि। इन किताबों को साक्षरता-सम्पादन करते समय तो चाव से वे पढ़ेंगे ही, किन्तु साक्षर बनने के पश्चात् भी बड़े प्रेम के साथ इन पुस्तकों को अपने संग्रह में रख, बीच-बीच में पढ़कर आनन्द प्राप्त करते रहेंगे।

इन उपर्युक्त विचारों के ऊपर ध्यान रखते हुए हमने अपनी योजनानुसार पुस्तकें छपवाई हैं जिनकी छपाई मोटे अक्षरों में सुन्दरता से कराई गई है और जिनमें काग़ज़ मोटा २८ पौण्ड वज़नी लगवाया गया है, तिस पर भी मूल्य चारपाई प्रति फ़र्मा डबल-क्रौन अर्थात् अन्य स्कूली प्रकाशित पुस्तकों से आधा मूल्य रखा गया है।

हमारी संचालकों को सूचना है कि विद्यार्थियों से शिक्षा की अवधि समाप्त होने पर पुस्तकें लौटाई न जावें। कम से कम पद्य पुस्तकें तो अवश्य उनके पास रहनी ही चाहिये। इन किताबों में कहीं मीरा, कहीं तुलसीदासजी, कहीं सूरदासजी आदि के गाने हैं, जो पठन से साक्षरता प्राप्त करने के पश्चात् साक्षरता को पुष्ट और स्थायी करनेवाले हैं। अनुभव से यह भी पता चलता है कि जिन कृषकों के यहाँ हमारी पहली पोथी पड़ी है, उनके यहाँ की बहू और बालिकाएँ खेलते-खेलते और देखते-देखते अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं। सम्भव है कि हमारे कथन को पाठक तथा सञ्चालक आश्चर्य मानें। किन्तु हम इतना ही कहना चाहते हैं कि इसमें आश्चर्य कुछ नहीं, सच्चा

अनुभव है। पाश्चात्य देशों के बड़े-बड़े नगरों, जैसे; लंदन आदि में या हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े शहरों में जहाँ मकानों और दुकानों पर बड़े-बड़े साइन-बोर्ड लगे रहते हैं, वहाँ के बच्चों तथा श्रम-जीवियों (मजदूरों) को बड़े-बड़े अक्षरों के उन साइन-बोर्डों के बार-बार देखने से अक्षर-पहचान हो जाती है। वही बात देहातियों के घरों में हमारी पहली-पोथी बड़े-बड़े अक्षरों में छपी रहने से होती है। इसमें जो पहले १६ भजन-चार्ट दिये हैं वे बहुत मोटे अक्षरों में छपे हुए हैं और वर्णमाला के सभी अक्षर उनमें आये हैं। इन भजनों का सु-स्वर उन बहू बेटियों के कर्ण-पटलों पर कई बार गिरा होगा। वे केवल कौतूहल से किताबें देखती हैं और देखते-देखते अक्षर-ज्ञान प्राप्त कर लेती हैं। इस कार्य में जहाँ प्रौढ़-छात्र शौक़ीन रहते हैं, वहाँ तो और भी अधिक सफलता मिलती है।

प्रौढ़-पाठशाला के लिए आवश्यक तथा यथेष्ट पुस्तकों और सामग्री की सूची आगे प्रकाशित की जाती है।

प्रौढ़-पाठशालाओं के लिए निर्धारित पुस्तकें तथा रजिस्टर

क्रम संख्या	विषय	नाम	यथेष्ट संख्या	मूल्य प्रति संख्या
१	सामुहिक पठन के लिए	चार्ट (हिन्दी-उर्दू)	१	१॥)
२	अध्यापक के लिए टैक्स्ट बुक	शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा की योजना (हिन्दी-उर्दू)	१	१)
३	रजिस्टर	स्कूल रजिस्टर	१	॥=)
४	,,	अध्यापकों की मासिक प्रगति-रिपोर्ट	१	=)।
५	,,	मुआइना रिपोर्ट के फ़ार्म	१	=)।
६	,,	रसीद बुक	१	-)
७	,,	साक्षरता-प्रमाणपत्र	१	।)
८	पद्य-पठन	पहली पोथी (हिन्दी) पहली किताब (उर्दू)	४०	।)
९	,,	सुन्दरकाण्ड (हिन्दी) मौजज़ा आलेनबी (उर्दू)	४०	≡)।
१०	,,	माड़ौगढ़ की लड़ाई (हिन्दी-उर्दू)	४०	=)।
११	गद्य-पठन	दूसरी पोथी (हिन्दी-उर्दू)	४०	≡)।
१२	,,	तीसरी पोथी (हिन्दी) तीसरी किताब (उर्दू)	४०	=)
१३	गणित	देहाती हिसाब-किताब (हिन्दी-उर्दू)	४०	≡)
१४	लेखन	लिपि पुस्तक (हिन्दी) खुशख़ती (उर्दू)	४०	-)॥
१५	पठन	चौथी पोथी हिन्दी-उर्दू (छप रही हैं।)		

अन्य सामग्री

नम्बर	नाम वस्तु	संख्या	आनुमानिक-व्यय
१	श्यामपट	१	३)
२	लकड़ी का सन्दूक़	१	२)
३	ताला-कुंजी	१	=)
४	गार्ड-सीटी	१	॥)
५	लालटेन	५	७॥)
६	क़ैंची	१	।=)
७	चाक़ू	१	।)
८	झाड़न-वस्त्र	१	=)
९	दवात	२	-)
१०	होल्डर	२	-)
११	निब	४	)॥
१२	सोख़्ता	१	)॥
१३	चाकस्टिक	१ बक्स	।)
१४	कापी	४०	३=)
१५	पेन्सिलें	४०	१।)

साक्षरता को स्थायी रखने का प्रबन्ध

आजकल समस्त भारतवर्ष में साक्षरता-प्रसारार्थ आन्दोलन किये जा रहे हैं, सत्य बात यह है कि प्रौढ़ों को, जिनकी बुद्धि वैसे ही प्रगल्भ रहती है और व्यावहारिक ज्ञान भी यथेष्ट रहता है, अल्प अवकाश में साक्षर बनाना कठिन नहीं है और जिन भाषाओं में नागरी की तरह शास्त्र-शुद्ध और स्वर-बद्ध (Phonetic) लिपि है, उनमें प्रौढ़ किसानों को साक्षर बनाना और भी सुलभ है। हमारी योजना के अनुसार वैसे ही गाते-बजाते, हँसते-खेलते चाहे जो आदमी छः महीने के भीतर साक्षर हो जाता है। यह हमारा गत ६-१० वर्ष का अनुभव है, किन्तु साक्षरता की रक्षा करना साक्षरता-प्रसार से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है। हम ये घटनाएँ नित्य देखते हैं कि देहात के ४-५ कक्षा तक पढ़े हुए भी ४-५ वर्ष में निरक्षर-से बन जाते हैं। तब, हमारे ६ महीने के भीतर साक्षर बनाने की चेष्टा का क्या फल होगा? यह एक विचारणीय बात है। देहात में साक्षर लड़कों के निरक्षर बनने का मुख्य कारण यह है कि वे स्कूल छोड़ने के पश्चात् कभी पुस्तकों को हाथ में लेते ही नहीं। अंशतः उनके पढ़ने योग्य पुस्तकें कम मुद्रित हुई हैं और प्रत्येक प्राइमरी स्कूलों द्वारा उनकी साक्षरता स्थित रखने के लिये यथेष्ट वाचनालयों का प्रबन्ध नहीं किया गया और उनका पाठ्य-क्रम भी ऐसा ही रखा गया है कि उनमें वाचन के प्रति स्थायी रुचि नहीं पैदा हुई। चाहे जो कारण रहे यह बात माननी होगी कि उनको साक्षर बनाने में जो शक्ति और व्यय हुआ है वह व्यर्थ ही गया। हमारे प्रौढ़-शिक्षा-आन्दोलन का परिणाम ऐसा न होना चाहिये। इस ओर सञ्चालकों का ध्यान आरम्भ से ही विशेष रूप से रहना चाहिये। देहात में साक्षरता की रक्षा केवल दो बातों से हो सकती है—एक समाचार-पत्र से, दूसरे गाने-बजाने से वा भजन-मण्डल और रामायण-क्लब द्वारा। समाचारपत्र,

मासिक-पत्र पढ़ने की रुचि देहात में कब उत्पन्न होगी यह प्रश्न ही है। किन्तु नवटङ्की, रासमण्डलियाँ और भजन-मण्डलियाँ तथा रामायण-क्लब आदि देहात में जारी हैं। सबसे उचित बात यह है कि इन उपलब्ध संस्थाओं से हम यथेष्ट लाभ उठायें और प्रदान की हुई साक्षरता को स्थिर रखें।

पाठक तथा सञ्चालकों को विदित है कि हम अपनी प्रौढ़-पाठशाला को आरम्भ से ही भजन-मण्डल या सामाजिक संस्था का रूप देते हैं। उनके पाठ्य-क्रम में भी उनकी रुचि के अनुकूल गीत और पद्य देते हैं। पाठशाला बन्द होने के पश्चात् भजन-मण्डल सुचारु रूप से चलाने के लिये उनमें फ़ीस वसूल करके मासिक चन्दा कराने की टेव डलवाते हैं। चतुर्थ मास से ग्राम-वासियों के लाभार्थ अध्यापक द्वारा समाचार-पत्रों को पढ़कर वा सुनवाकर उनमें संसार की खबरें और घटनायें पढ़ने की अभिरुचि उत्पन्न करते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से देहात में साक्षरता स्थिर रखने के यही मार्ग हैं; अतएव संचालकों को चाहिये कि जिन मार्गों का हम प्रतिपादन करते हैं, उनके उत्साहार्थ अध्यापक को तथा निरीक्षक को यथेष्ट सूचना तथा सहायता दें।

केन-डवलपमेण्ट यूनियन तथा ग्राम-सुधार-विभाग के केन्द्रों में वाचनालय खोलने की निम्नलिखित व्यवस्था करें:—

(१) **केन्द्रिय वाचनालय**—यह वाचनालय ग्राम-सुधार के आर्गनाइज़र या असिस्टेण्ट केन-डवलपमेण्ट अफ़सर के दफ़्तर में रहे। इस केन्द्रिय वाचनालय में छोटी-छोटी, मोटे अक्षरों में छपी हुई तथा सुलभ भाषा में लिखी हुई जीवनियाँ, देहात के सुधार सम्बन्ध में—जैसे: कृषि-सुधार, स्वास्थ्य-सुधार तथा सहयोग-आन्दोलन इत्यादि विषयों की पुस्तकें, कुछ कहानी, नाटक और प्रहसन इत्यादि का समावेश करें। इन किताबों में से कुछ कर्मचारियों के लाभार्थ और अधिकतर देहात के साक्षर-प्रौढ़ों के पढ़ने के लाभार्थ रहें। पचीस-पचीस पुस्तकों के 'सेट्स' (वर्ग) बनवाएँ और जिस गाँव के २० आदमी साक्षर बन

चुके हैं, उनके लाभार्थ एक-एक महीने के लिये एक-एक सेट भेज दें और महीने पीछे उनके लौटने पर दूसरा सेट भेजें। केन्द्र की सब भजन-मण्डलियाँ इस केन्द्रिय वाचनालय की सदस्य बनें और अपने भजन-मण्डल के लिये किये हुए चन्दा में से कुछ हिस्सा, कम से कम ३० प्रतिशतक, केन्द्रिय वाचनालय के लिये देते रहें।

(२) स्थानीय-वाचनालय—'स्थानीय-वाचनालय' शब्द का प्रयोग हम उस वाचनालय के लिये करना चाहते हैं, जहाँ प्रौढ़-पाठशाला रह चुकी है और उसका परिवर्त्तन भजन-मण्डल में हो चुका है। ऐसे वाचनालय में कम से कम एक साप्ताहिक-पत्र मँगाना चाहिये। वाचनालय के ग्रन्थ-संग्रह में तुलसीदासजी की रामायण के प्रत्येक खण्ड की दो-दो प्रतियाँ, आल्ह-खण्ड की दो-दो प्रतियाँ, गीत, ग़ज़लें तथा अन्य देहाती गीतों की, जैसे; फगुआ, पुर्वी, रामलीला, पाण्डवलीला, इत्यादि पद्य संग्रह की दो-दो पुस्तकें रहें। इस योजनानुसार हम सस्ता साहित्य छपवाने की चेष्टा में हैं।

अध्यापकों की ट्रेनिंग

भारतवर्ष में प्रौढ़-पाठशाला के अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिये आज तक केवल एक ही केन्द्र है। वह भी गोरखपुर में सहयोग-विभाग से जारी किया हुआ है। सम्भव है कि प्रौढ़-पाठशाला के शिक्षकों के लिये चार और ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट (संस्था) अल्प-काल ही में सहकारी-विभाग की ओर से युक्तप्रान्त में खोले जायँ। युक्तप्रान्त के ग्राम-सुधार विभाग के स्काउट मास्टर गोरखपुर के ट्रेनिंग स्कूल में शिक्षा पाकर युक्तप्रान्त के ४८ जिलों में अपने विभाग के अध्यापकों को इस समय ट्रेनिंग दे रहे हैं। देवास स्टेट (छोटी पाती) में गोरखपुर के ट्रेनिंग स्कूल के आदर्श पर, उन्हीं की रियासत के अध्यापकों को तथा अन्य कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिये, एक संस्था (इन्स्टीट्यूट) गोरखपुर से ट्रेण्ड हुए एक ग्रेज्युएट मिस्टर जोशी द्वारा प्रचलित हुई

है। वैसा ही एक ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट फ़ैज़ाबाद में रनिवा आश्रम से कांग्रेस के कर्मचारियों के लाभार्थ खुली है। अल्पकाल में राजपूताना विद्यामण्डल के द्वारा ऐसी ही एक इन्स्टीट्यूट पिलानी या जयपुर में खोली जायगी; क्योंकि उनके कर्मचारी इसी उद्देश्य से गोरखपुर में आ पहुँचे हैं। गोरखपुर के आदर्श पर ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट प्रत्येक रियासत में तथा प्रत्येक प्रदेश के ४-५ स्थानों में जारी होने चाहिये। अतः इस स्थल पर, अध्यापकों की ट्रेनिंग में जो विशेष बातें हैं उनका विवरण यहाँ देना आवश्यक प्रतीत होता है:—

(१) शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा-प्रणाली, प्रचलित प्रणालियों से भिन्न रहने के कारण, इस योजना का मन्तव्य, पढ़ाने की शैली, उसका प्रबन्ध, प्रौढ़ों की मनोधारणा आदि का अध्यापकों को यथेष्ट ज्ञान देना आवश्यक है इसी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिये यह पुस्तक लिखी जाती है। यह प्रौढ़-शिक्षा-विषय में उनकी टैक्स्टबुक अर्थात् पाठ्य-पुस्तक है।

(२) शान्तिपुर प्रौढ़-शिक्षा-योजना में पढ़ाने की शैली भिन्न रहने के कारण, यह शिक्षा-शैली क्या है, यह बात अध्यापकों की समझ में जल्दी न आयेगी। उनके लाभार्थ यह बात आवश्यक है कि ट्रेनिंग के साथ या इन्स्टीट्यूट में निरक्षर प्रौढ़ों की डेमान्स्ट्रेशन क्लास (Demonstration Class) चलाना चाहिए। यह डेमान्स्ट्रेशन क्लास भावी अध्यापकों के लिये अध्यापन-कला का अभ्यास देने के लिये उपयोगी सिद्ध होगी। निरक्षर प्रौढ़ों को इस शिक्षा-शैली से पढ़ाने से वे अल्पकाल में ही साक्षर हो जाते हैं, यह अध्यापकों के ध्यान में आ जायगा और शिक्षा-शैली पर उनका विश्वास दृढ़ हो जायगा। अध्यापक डेमान्स्ट्रेशन क्लास में उपस्थित रह कर पठन-क्रिया (Reading Process) क्या वस्तु है, यह समझ पायेंगे और इसकी खोज भी लगा सकेंगे। अध्यापकों की प्रेक्टीकल एक्ज़ामिनेशन (Practical Examination) अर्थात् अध्यापन-कला की परीक्षा लेने में डेमान्स्ट्रेशन क्लास उपयुक्त समझी जायगी।

शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा की योजना केवल साक्षरता-प्रसार के लिये ही नहीं बनाई गई है। साक्षरता के अतिरिक्त उसको अन्य लक्ष्य वा ध्येय साध्य करना है। उनमें से देहात में नवजीवन निर्माण करना मुख्य लक्ष्य है। साक्षरता के साथ हमें देहातियों की मनहूसी और ग्रामीणों का ढीला-ढालापन भी हटाना है। अध्यापकों में देहाती गाना गाने का, ढोल बजाने का शौक़ बढ़ाना है, तथा स्काउटिंग और देहाती खेल-कूद में उनका प्रेम बढ़ाना है। इन बातों की ओर इन्स्टीट्यूट चलाते समय यथेष्ट ध्यान रहना चाहिये। यदि हमारे अध्यापक गाने-बजाने के शौक़ीन तथा देहाती खेल-कूद में प्रेम करनेवाले निकलेंगे, तो वे भजन-मण्डल और रामायण-क्लब तथा ग्रामीण नवयुवकों का दल बनाने में समर्थ होंगे, ऐसी आशा करना व्यर्थ न होगा।

शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा-योजना के अनुसार पाठशाला का स्थापन करना, ग्राम-सुधार या ग्राम-संगठन की पहली सीढ़ी है। इसके द्वारा जो ज्ञान देहात में दिया जायगा, उसके बल तथा सहयोग-सिद्धान्त पर आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रगति उत्तरोत्तर करने की हम चेष्टा करते हैं। इस कार्य में हमारे अध्यापक उस गाँव के नेता हैं। अतएव हमारे अध्यापकों को सहयोग-सिद्धान्तों का तथा मेम्बर, सेक्रेटरी के काम का यथेष्ट ज्ञान रहना चाहिये।

शान्तिपुर-प्रौढ़-शिक्षा-योजना के अनुसार अध्यापक गाँव का नेता है और शासन-विभागों से देहातियों से सम्बन्ध जोड़नेवाला है। अतएव खेती विभाग, स्वास्थ्य-विभाग, पशु-चिकित्सा-विभाग इत्यादि विभागों का कार्यक्रम उसे ज्ञात रहना चाहिये। यह बात उक्त विभागों के कर्मचारियों द्वारा ४-६ लेक्चरों की व्यवस्था करने से हो सकती है।

ट्रेनिङ्ग-केम्प सञ्चालकों को तथा इन्स्टीट्यूट स्थापित करनेवाले को विशेष जानकारी के लिये Prospectus of the Gorakhpur Co-operative Institute for Adult Education मार्ग-प्रदर्शक होगा। अध्यापकों की ट्रेनिङ्ग क्लास ६ सप्ताह की रहे। छः महीने प्रौढ़-पाठशाला किसी गाँव में चलाने के पश्चात् यशस्वी अध्यापकों का एक महीने के लिये रिफ्रेशर क्लास (Refresher Class) लेना श्रेयस्कर होगा। छः महीने के अध्यापन के अनुभव के पश्चात् एक महीने ट्रेनिङ्ग क्लास देने से अध्यापक अधिक व्यावहारिक तथा कार्य-क्षम बनेंगे।

परिशिष्ट (अ)

APPENDIX A

A representative Chart of the Nagpur Literacy Plan

कलम	किसकी है
राम की	कलम है
कलम	का है की है
सेठ की	कलम है
किस लिये	कलम है
कलम	लिखने को है

क	ल	म
स	ड़	क
क	म	ल
न	म	क
श	क	र
न	र	क

ल	व	ग
ब	द	ल
ल	प	क
प	ल	ई
म	ह	ल
ल	ट	क

म	ट	र
स	म	र
म	र	द
क	र	म
म	र	ज
श्र	म	र

परिशिष्ट (ब)

चार्ट नं० १ Size 20″ × 30″

राम लछमन जानकी ।
जय बोलो हनुमान की ॥

चार्ट नं० २ Size 20″ × 30″

रघु-पति राघव राजा राम ।
पतित पावन सीता-राम ॥

चार्ट नं० ३ Size 20″ × 30″

राम नाम लड्डू गोपाल नाम घी ।
कृष्ण नाम मिसरी घोर घोर पी ॥

चार्ट नं० ४ Size 20" × 30"

गोविंद गोविंद हरे मुरारे ।
गोविंद गोविंद मुकुंद कृष्ण ॥

चार्ट नं० ५ Size 20" × 30"

उत्तम खेती मध्यम बान ।
निषिद चाकरी भीख निदान ॥

चार्ट नं० ६ Size 20" × 30"

पाँच पंच मिल कीजिय काज ।
हारे जीते न आवे लाज ॥

चार्ट नं० ७ Size 20″ × 30″

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥

चार्ट नं० ८ Size 20″ × 30″

जय रघु नंदन, जय सिय राम ।
गोपी वल्लभ, राधे श्याम ॥

चार्ट नं० ९ Size 20″ × 30″

रघु-कुल रीति सदा चलि आई ।
प्राण जाय पर वचन न जाई ॥

चार्ट नं० १०

Size 20″ × 30″

राम नाम की लूट है,

लूट सकै जो लूट।

अंत-काल पछतायगा,

जब तन जइहैं छूट॥

चार्ट नं० ११

Size 20″ × 30″

ढम ढमा ढम ब्याह गिलहरी

का है, सुनिये आज।

पोथी-पत्रा लेकर चलिये

पाँडे जी महाराज॥

चार्ट नं० १२ Size 20" × 30"

बूढ़ा बैल बेसा है,
झीना कपड़ा लेय ।
आपुन करै नसौनी,
दैवै दूषन देय ॥

चार्ट नं० १३ Size 20" × 30"

चित्र-कूट के घाट पर,
भइ संतन की भीर ।
तुलसि-दास चंदन घिसैं,
तिलक देत रघु-बीर ॥

चार्ट नं० १४ Size 20" × 30"

राम राम सब कोउ कहै,
दशरथ कहै न कोय।
एक बेर दशरथ कहै,
कोटि यज्ञ फल होय॥

चार्ट नं० १५ Size 20" × 30"

अजगर करै न चाकरी,
पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै,
सब के दाता राम॥

चार्ट नं० १६ Size 20" × 30"

राम राम सब कोउ कहै,
ठग ठाकुर औ चोर।
बिना प्रेम रीझै नहीं,
तुलसी नंद-किशोर॥

परिशिष्ट (स)

मात्रा चार्ट नं० १

द द	दादा	दादी
स ल	साला	साली
म म	मामा	मामी
क क	काका	काकी
न न	नाना	नानी
	ा	ी

लाठी 'आ' की मात्रा बनती, पूछो कल्लू गोपी से।
'ई' की मात्रा कैसे बनती, मिलकर लाठी टोपी से॥

मात्रा चार्ट नं० २

मर	मार	मोर	मौर
तल	ताल	तोल	तौल
लट	लाट	लोट	लौट
चक	चाक	चोक	चौक
बर	बार	बोर	बौर
	ा	ो	ौ

लाठी एक पंखे से मिलकर, 'ओ' का शब्द बनाती है।
दो पंखे से मिलकर लाठी, 'औ' की धुन उपजाती है॥

मात्रा चार्ट नं० ३

बल	बेल	बैल
दव	देव	दैव
सर	सेर	सैर
बद	बेद	बैद
मल	मेल	मैल
	े	ै

"ए" ध्वनि पंखा एक उठाती।
"ऐ" ध्वनि पंखे दो डुलवाती॥

मात्रा चार्ट नं० ४

दख	देख	देखा	देखो
खल	खेल	खेला	खेलो
घर	घेर	घेरा	घेरो
खद	खेद	खेदा	खेदो
ठल	ठेल	ठेला	ठेलो
	े	ा	ो

'ए' का पंखा चौहो साथी।
'ओ' की मात्रा पंखा लाठी॥

मात्रा चार्ट नं० ५

गैर	गौर
जैन	जौन
बैर	बौर
सैर	सौर
पैन	पौन
ै	ौ

'ऐ' देखो दो पंखे लाया।
'औ' ने लाठी और लगाया॥

मात्रा चार्ट नं० ६

सर	सिर	सीर
दन	दिन	दीन
मल	मिल	मील
भड़	भिड़	भीड़
रस	रिस	रीस
	ि	ी

दोनों लाठी टोपी लावें, पर आपस में भेद बतावें।
छुटकी बायें रहती है, बड़की दायें झुकती है॥

मात्रा चार्ट नं० ७

सत	सुत	सूत
सर	सुर	सूर
दर	दुर	दूर
चर	चुर	चूर
फट	फुट	फूट
	ु	ू

जब 'उ' की मूँछें ऊपर जातीं।
तब 'ऊ' अपनी स्वयं गिराती ॥

परिशिष्ट (द)

मिलावट चार्ट नं० १

ग् + वाल = ग्वाल

ख् + याल = ख्याल

स् + वाद = स्वाद

श् + याम = श्याम

प् + याज = प्याज

लाठी वाले अक्षर मिलने
अगर किसी से जाते हैं।
सब से पहले अपनी लाठी
जाकर कहीं छिपाते हैं॥

मिलावट चार्ट नं० २

दफ्	+	तर	=	दफ्तर
सुक्	+	ख़ू	=	सुक्ख़ू
मुफ्	+	त	=	मुफ्त
हुक्	+	म	=	हुक्म
ज्	+	वार	=	ज्वार

दुमदार अक्षरों से मिलावट में
उनकी दुम कट जाती है।

मिलावट चार्ट नं० ३

पट्	+	ठा	=	पट्ठा
लड्	+	डू	=	लड्डू
कद्	+	दू	=	कद्दू
टट्	+	टू	=	टट्टू
पड़्	+	खा	=	पड़्खा

ऊटपटांग अक्षरों से मिलावट में
वे ज्यों के त्यों मिल जाते हैं ॥

मिलावट चार्ट नं० ४

उर्	+	द	=	उर्द
मर्	+	द	=	मर्द
कर्	+	म	=	कर्म
दर्	+	द	=	दर्द
धर्	+	म	=	धर्म

'र' यदि पहले आता है।
तो सिर पर चढ़ जाता है॥

मिलावट चार्ट नं० ५

भ्	+	रम	=	भ्रम
प्	+	रण	=	प्रण
वज्	+	र	=	वज्र
उग्	+	र	=	उग्र
ग्र	+	ह	=	ग्रह

'र' जब पीछे आवेगा।
नीचे टाँग अड़ावेगा॥